नामक चित्रकार ने लगभग सन् 1620 में बनाया। यह एक प्रतीकात्मक चित्र है जिसमें जहाँगीर के दैवी रुझान को दिखाया गया है। जहाँगीर जिसके सिर के चारों ओर सूरज जैसा आभामण्डल है, वह रेतघड़ी जैसे आसन पर बैठा है। उसके दोनों ओर यूरोपीय शैली की परियाँ हैं। वे किसी सूफी सन्त को एक पुस्तक भेंट में दे रहे हैं जबकि औटोमान सुल्तान, इंग्लैंड के राजा और बिचित्र खुद इन्तजार में खड़े हैं। यहाँ यह जताया गया है कि जहाँगीर खुद तो कालजयी हैं और वे बादशाहों को नहीं, सूफियों और ईश्वर के भक्तों को प्राथमिकता देते हैं।

विभिन्न तरह के प्रतीकों व अतिशयोक्तियों के बावजूद इस चित्र में जो लोग दर्शाए गए हैं उनका चित्रण बहुत यथार्थ है और उनके व्यक्तिगत हुलिए स्पष्ट हैं।

क्या आपको लगता है कि कलाकारों को हमेशा हू–ब–हू यथार्थवादी चित्र बनाने चाहिए? कारण सहित अपने विचार दीजिए।

क्या आपने किसी प्रसिद्ध कलाकार द्वारा बनाया गया चित्र या मूर्ति देखी है? अगर हाँ तो उसके बारे में अपनी कक्षा में बताएँ। क्या वह कलाकार यथार्थवादी था? उसने आप पर क्या प्रभाव छोड़ा? नए शक्तिशाली राजा, बादशाह, पोप, व्यापारी आदि यथार्थवादी कला को क्यों प्रोत्साहित कर रहे होंगे?

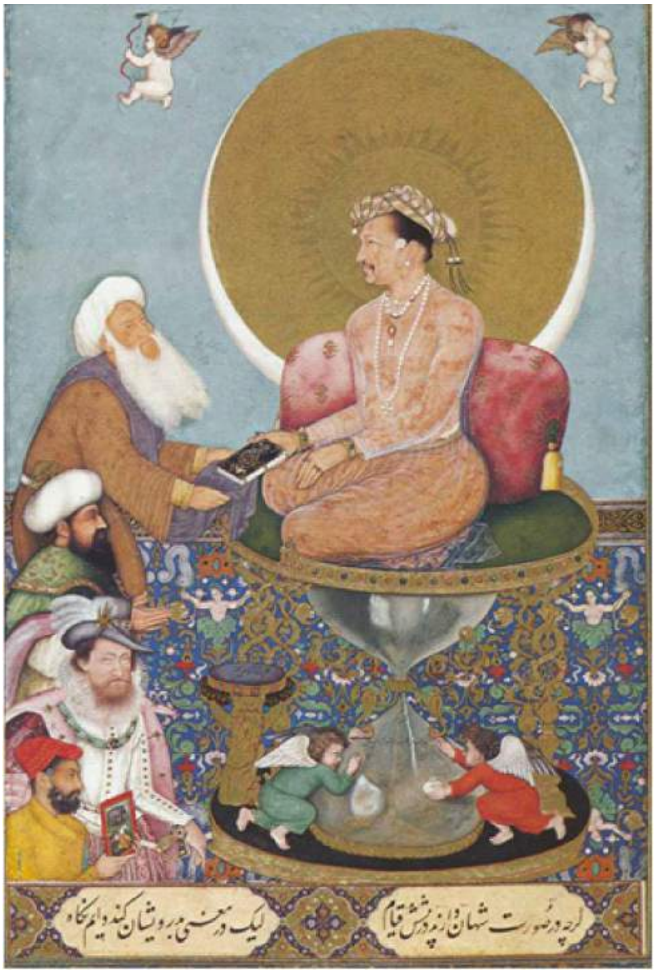

चित्र 6.21 : बिचित्र द्वारा बनाया गया जहाँगीर और समकालीन राजाओं का चित्र। वैसे बिचित्र ने तुर्की या इंग्लैंड के राजा को देखा नहीं था। लेकिन उसने उनका चित्र कैसे बनाया होगा?

6.3 वैज्ञानिक क्रान्ति

मध्यकालीन यूरोप, इस्लामी देश तथा भारत में ईश्वरवाद का व्यापक प्रभाव था। ईश्वरवादी लोगों को यह शिक्षा दे रहे थे कि अन्तिम सत्य तो ईश्वर ही है जो सर्वशक्तिमान है और उसने पूरे ब्रह्माण्ड की रचना की है। मनुष्य को इस लोक में सुख प्राप्ति की जगह परलोक में ईश्वर के निकट स्थान प्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिए। इस विचारधारा के चलते भौतिक दुनिया के अध्ययन को बहुत कम महत्व दिया गया और यहाँ तक माना गया कि ऐसा करना धार्मिक व्यवस्था के विरुद्ध है। इस कारण मध्यकाल में वैज्ञानिक अध्ययन प्रभावित हुआ। फिर भी यह वैज्ञानिक चिंतन पूरी तरह समाप्त नहीं हुई। मध्यकाल में विशेषकर इस्लामिक देशों में वैज्ञानिक खोज चलता रहा।

हमने पहले देखा था कि किस प्रकार अरब दार्शनिकों ने चीन और भारत के वैज्ञानिक और गणितीय साहित्य का अध्ययन और अनुवाद किया था। भारतीय गणित को और खासकर स्थानीयमान आधारित संख्या पद्धति को उन्होंने अपनाया था। चीन के कुछ महत्वपूर्ण आविष्कार, जैसे– बारूद, छापाखाना और चुम्बक को भी उन्होंने अपनाया। अरब विचारकों ने चीनी और भारतीय खगोलशास्त्रियों द्वारा की गई तारों, ग्रहों आदि के चलन की गणना को आगे बढ़ाया। उनके द्वारा रचे ग्रन्थ विभिन्न तरीकों से यूरोप के वैज्ञानिकों तक पहुँचे। इस तरह अरबी वैज्ञानिकों ने भारतीय और चीनी विज्ञान को यूरोप तक पहुँचाने का काम किया।

जब यूरोप में प्राचीन यूनानी और लैटिन साहित्य का अध्ययन फिर से प्रारम्भ हुआ तो उन्होंने यूनान के वैज्ञानिक साहित्य के अध्ययन के साथ अरब ग्रन्थों का भी अध्ययन किया। उन्हीं दिनों यूरोप के नाविक भारत और चीन पहुँचने के नए समुद्री मार्ग खोज रहे थे। इसके लिए समुद्र में दूर तक यात्रा करने की जरूरत थी। समुद्र में तारों व ग्रहों की स्थिति के अवलोकन से ही यात्रा की जा सकती थी। समुद्र में रास्ता निर्धारित करने के लिए चुम्बकीय दिक्‌सूचकों का भी उपयोग किया जाने लगा। उन्हीं दिनों समुद्र में दूर तक देखने के लिए दूरबीन का आविष्कार हुआ। दूरबीन काँच के लेंस से बनाई जाती थी। इसी तरह उन दिनों युद्ध में तोपों का बहुत उपयोग होता था। तोप चलाने वालों के लिए यह जानना जरूरी था कि तोप को किस कोण से दागने पर गोला कितनी दूर जाकर गिरेगा। गोले के वजन, तोप के व्यास आदि का भी अध्ययन जरूरी था। इन सबका वास्ता वैज्ञानिक अध्ययन से था। अतः व्यापारियों व राजाओं की विशेष रुचि वैज्ञानिक खोजों में बनी।

मध्यकालीन यूरोप में कुछ वैज्ञानिक हुए, जैसे– इंग्लैंड में बारहवीं सदी में रॉजर बेकन जिसने प्रयोगों के आधार पर निष्कर्ष निकालने पर जोर दिया था। उन दिनों किसी भी प्रश्न का उत्तर आभास या अनुमान के आधार पर दिया जाता था। प्रयोग करके वास्तविकता के अवलोकन से निष्कर्ष निकालने की प्रथा नहीं थी। धीरे–धीरे बेकन के आग्रह पर कई लोग आगे बढ़े।

जैसे कि हम पहले चर्चा कर चुके हैं, रेनासाँ काल में मानव शरीर तथा दृष्टि (परिप्रेक्ष्य) की ज्यामिति समझ पर काफी शोध हुआ था। खगोलशास्त्र एक और महत्वपूर्ण अध्ययन का क्षेत्र था। मध्यकालीन विद्वानों का मानना था कि पृथ्वी ब्रह्माण्ड के केन्द्र में है और बाकी तारे, सूर्य, चन्द्रमा और ग्रह पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं। यह धारणा मूलतः प्राचीन यूनानी दार्शनिक अरस्तू की दी हुई थी। साथ में यह भी माना गया था कि पृथ्वी सपाट है। कई मध्यकालीन खगोलशास्त्रियों ने आसमान में ग्रहों की चाल का अवलोकन किया और पाया कि इन सिद्धान्तों में कुछ समस्याएँ हैं क्योंकि ग्रहों की चाल इन धारणाओं के अनुरूप नहीं थी। इनमें से प्रमुख था पोलैंड देश का निकोलस कोपरनिकस (जन्म सन् 1473, मृत्यु सन् 1543)। कोपरनिकस ने अपने जीवन के अन्त में एक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें उसने कहा कि ऐसी ढेर सारी समस्याओं का निदान हो सकता है यदि हम यह मानें कि ब्रह्माण्ड के केन्द्र में पृथ्वी नहीं बल्कि सूर्य है और पृथ्वी सहित सारे ग्रह उसकी परिक्रमा करते हैं।

कोपरनिकस के ये विचार उन दिनों काफी क्रान्तिकारी थे। लोग यह मानने के लिए तैयार नहीं थे कि पृथ्वी जो हमें स्थिर लगती है वह वास्तव में सूर्य की परिक्रमा करती है। चर्च के अनुसार ईश्वर ने पृथ्वी को ब्रह्माण्ड के केन्द्र में बनाया था ताकि मनुष्य उस केन्द्र में रहे। इस कारण चर्च ने भी इन विचारों का विरोध किया। लेकिन फिर भी कई लोग इन विचारों को जाँचने के लिए आसमान में तारों व ग्रहों की चाल का बारीकी से अध्ययन करने लगे। इनमें से प्रमुख था टाईको ब्राहे जिसने डेनमार्क देश में एक वेधशाला स्थापित की थी। वहाँ नए वैज्ञानिक तरीकों से अवलोकन करके ग्रहों की चाल की गणना की जाती थी। इन गणनाओं का गहन अध्ययन एक खगोलशास्त्री, केपलर (जन्म सन् 1571, मृत्यु सन् 1630) ने किया और पाया कि इसे समझने के लिए यह मानना ही होगा कि सूर्य के इर्द–गिर्द पृथ्वी सहित सारे ग्रह परिक्रमा करते हैं, जैसा कि कोपरनिकस ने कहा था। लेकिन कोपरनिकस ने माना था कि ग्रह एक गोलाकार पथ में परिक्रमा करते हैं जबकि केपलर की गणनाओं के अनुसार वे गोलाकार पथ में नहीं बल्कि अण्डाकार पथ में घूमते हैं।

चित्र 6.22 : निकोलस कोपरनिकस का एक समकालीन चित्र

केपलर ने यह स्थापित किया कि भौतिक जगत के बारे में हम केवल विश्वासों, धर्मग्रन्थों व मान्यताओं के आधार पर नहीं, बल्कि बारीक अवलोकन और गणना से समझ सकते हैं। इसी बात को इटली के वैज्ञानिक गैलीलियो (जन्म सन् 1564, मृत्यु सन् 1642) ने आगे बढ़ाया। गैलीलियो की विशेषता यह थी कि उसने कई महत्वपूर्ण सवाल पूछे और उनके उत्तर जानने के लिए प्रयोग किए और उनके आधार पर निष्कर्ष निकाले। उसने बारीक मापन और गणना को अत्यधिक महत्व दिया। यही सब आधुनिक विज्ञान के मूल सिद्धान्त बने।

चित्र 6.23 : गैलीलियो की एक पुस्तक का मुखपृष्ठ – इस पर उसका चित्र बना हुआ है। ऊपर एक तरफ एक परी दूरबीन से देख रही है और दूसरी ओर की परी कुछ ज्यामितीय उपकरणों से नपाई कर रही है।

गैलीलियो ने नाविकों के एक नए आविष्कार– टेलिस्कोप का उपयोग ग्रहों को देखने के लिए किया। उसने पाया कि बृहस्पति और शनि जैसे ग्रहों के चारों ओर कई चन्द्रमा परिक्रमा करते हैं। पर सवाल था कि ये ग्रह व चन्द्रमा कैसे घूमते हैं, उन्हें धक्का कौन देता है? यह समझने के लिए कि चीजें क्यों चलती हैं या रुकती हैं, उसने कई प्रयोग किए, जैसे– भारी और हल्की चीजों को ऊँचाई से गिराकर देखना कि क्या उनके गिरने के समय में कोई फर्क है या वे एक साथ गिरती हैं? किसी चीज को धागे पर लटकाकर हिलाकर देखना, गेंदों को लुढ़काकर देखना कि किस कोण में और कैसे फर्श पर वे सबसे अधिक लुढ़कती हैं। इन सबके आधार पर गैलीलियो ने कोपरनिकस के सूर्य केन्द्रित सिद्धान्त को सही पाया और उसने इस बात को एक पुस्तक में प्रकाशित किया।

पृथ्वी की जगह सूर्य को ब्रह्माण्ड के केन्द्र में रखना चर्च को पसन्द नहीं आया और गैलीलियो की पुस्तक पर प्रतिबन्ध लगाया गया और उस पर दबाव डाला गया कि वह अपने कथनों को वापस ले। गैलीलियो ने इस शर्त को स्वीकार तो कर लिया किन्तु अपने प्रयोगों को गोपनीय तरीकों से जारी रखा और उन देशों में प्रकाशित किया जहाँ पोप की सत्ता खत्म हो गई थी।

गैलीलियो के विरुद्ध यह मुकदमा विश्व इतिहास में धर्मान्धता और विज्ञान की मुठभेड़ के रूप में प्रसिद्ध है जिसमें धार्मिक अतिवाद ने वैज्ञानिक खोज में रुकावट डालने का प्रयास किया। इसे सत्ता या निजी स्वार्थ बनाम मनुष्य की खोजी प्रवृत्ति के रूप में भी देखा जाता है।

केपलर और गैलीलियो की खोजों के आधार पर अँग्रेजी वैज्ञानिक आईज़ेक न्यूटन (जन्म सन् 1642, मृत्यु सन् 1727) ने गुरुत्वाकर्षण और खगोलीय पिण्डों की गति का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। न्यूटन के काम से एक नया युग प्रारम्भ हुआ जिसमें विज्ञान को शीर्ष स्थान मिला।

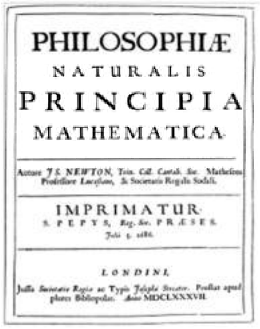
PHILOSOPHIÆ NATURALIS PRINCIPIA MATHEMATICA

IMPRIMATUR

LONDINI

चित्र 6.24 : सन् 1741 में बना आईज़ेक न्यूटन का चित्र तथा सन् 1687 में प्रकाशित न्यूटन की महान पुस्तक, 'प्रिंसिपिया मैथेमेटिका' का मुखपृष्ठ।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि किस तरह पूर्व–आधुनिक काल में धार्मिक पूर्वाग्रह से मुक्त होकर नए विज्ञान की शुरुआत हुई। इस नए विज्ञान ने केवल पूर्व–मान्यताओं पर आधारित न होकर प्रयोग और गणितीय प्रमाण को अपना आधार बनाया। रेनासाँ युग की शुरुआत में यह माना गया

था कि ज्ञान विज्ञान के बारे में अरस्तु के विचार और तरीके ही प्रमाणिक हैं लेकिन वैज्ञानिक क्रान्ति के चलते यह स्थापित हो गया था कि अरस्तु के कई मूल सिद्धान्त और अध्ययन के तरीके गलत हैं।

पृथ्वी सूर्य का चक्कर लगा रही है– यह मानने में एक सामान्य व्यक्ति को क्या–क्या कठिनाईयाँ हो सकती हैं?

57ZGH2

6.3.1 समुद्री यात्राएँ और भौगोलिक खोज

जिस समय कोपरनिकस, गैलीलियो जैसे वैज्ञानिक अपनी खोज में लगे हुए थे, उसी समय यूरोप के नाविक दूर–दराज के महाद्वीपों तक पहुँचने के लिए समुद्री रास्ते खोज रहे थे। उन दिनों लोग किनारे–किनारे तो समुद्र में यात्रा करते थे लेकिन गहरे समुद्र में कम ही यात्रा करते थे। इसका मुख्य कारण था समुद्र का कोई नक्शा न होना जिसकी मदद से रास्ता पता कर सकें। इस कारण समुद्र में यात्रा करने के लिए एक ही उपाय था– तारों व ग्रहों का अवलोकन और उनकी मदद से पृथ्वी पर अपनी स्थिति पता लगाना और रास्ता निर्धारित करना।

समुद्री यात्रा करने वाले नाविक धन की खोज में निकलते थे। कई नाविक इस उद्देश्य से निकलते थे कि नए देशों में ईसाई धर्म को फैलाएँगे और इससे उन्हें श्रेय और पुण्य मिलेगा। तत्कालीन राजाओं ने भी नाविकों की सहायता की ताकि समुद्र में दूर तक यात्रा करके नए देश, खासकर भारत और चीन तक पहुँचने के नए रास्ते खोज सकें। इन नाविकों का अनुमान था कि अफ्रीका महाद्वीप का चक्कर लगाकर भारत पहुँचा जा सकता है। यदि दुनिया चपटी न होकर गेंद की तरह गोल है तो पूर्वी देशों तक पहुँचने के लिए पश्चिमी समुद्री मार्ग से भी यात्रा की जा सकती है। अर्थात् अटलांटिक महासागर को पार करके चीन के पूर्वी भागों में पहुँचा जा सकता है। पुर्तगाली नाविक वास्कोडिगामा सन् 1498 में अफ्रीका का चक्कर लगाते हुए केरल के कालीकट पहुँचा। इससे पहले क्रिस्टोफर कोलम्बस सन् 1492 में अटलांटिक महासागर पार करके मध्य अमेरिका के द्वीप समूहों पर पहुँचा था। कोलम्बस को यह पता नहीं चला कि वह एक नए महाद्वीप पर पहुँचा था। वह यही सोचता रहा कि यह भारत का कोई हिस्सा है और इसे वह इंडीज़ और वहाँ के निवासियों को इंडियन मानता रहा। बाद में एक पुर्तगाली नाविक, अमेरिगो वेसुपिक्की ने यह स्थापित किया कि यह एक नया महाद्वीप है। उसी के नाम से इस महाद्वीप का नाम अमेरिका पड़ा। इसके कुछ वर्ष बाद एक और नाविक, मैगेलन ने तय किया कि वह जहाज से पूरी दुनिया का चक्कर लगाकर यह सिद्ध करेगा कि पृथ्वी गोलाकार है। वह इस यात्रा को पूरी नहीं कर पाया और रास्ते में उसकी मृत्यु हो गई लेकिन उसके अन्य साथियों ने यात्रा पूरी की।

केरल के गणितज्ञ (14वीं से 16वीं सदी)

भारत के केरल प्रान्त में चौदहवीं से सोलहवीं सदी के बीच गणितज्ञों की एक विशिष्ट परंपरा थी। इस परंपरा के प्रमुख गणितज्ञ माधव, नीलकण्ठ सोमयाजी, परमेश्वर, नारायण भट्टत्री आदि थे। इन गणितज्ञों ने खगोलशास्त्र और गणित से सम्बन्धित कई नई खोज की। इनकी प्रमुख खोजों में कैल्कुलस के प्रारम्भिक सिद्धान्त सम्मिलित थे जिन्हें बाद में आईजेक न्यूटन ने फिर से यूरोप में खोजा और उसने गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त को स्थापित करने के लिए इनका उपयोग किया। लेकिन किन्हीं कारणों से केरल के इन गणितज्ञों का काम आगे बढ़ नहीं सका और न ही उनकी खोजों का प्रसार हो पाया।

अभ्यास

1. मध्यकाल के अन्त में ऐसी क्या बातें हुईं जिनके कारण समाज में बदलाव सम्भव हुआ?
2. केन्द्रीकृत राज्य से क्या आशय है? मध्यम वर्ग के बनने में इनकी क्या भूमिका रही होगी?
3. व्यापार और शहरीकरण ने मध्यम वर्ग के बनने में किस प्रकार सहायता की होगी?

4. व्यापार और युद्ध ने किस प्रकार विभिन्न देशों के बीच ज्ञान–विज्ञान के आदान–प्रदान में मदद की होगी?
5. यूरोप के प्राचीन साहित्य की क्या विशेषताएँ थीं? मध्यकाल में उनका अध्ययन क्यों लुप्त हो गया था?
6. भारत में बुद्धिजीवियों के विकास पर जाति व्यवस्था का क्या प्रभाव रहा होगा?
7. यूरोप के मानववाद के विज्ञान में इस्लामी देशों के विद्वानों का क्या योगदान था?
8. यूरोपीय मानववाद और भारतीय मध्यम वर्ग के साहित्यिक अध्ययन में क्या समानता व अन्तर थे?
9. मानववाद ने चर्च को किस प्रकार की चुनौती दी?
10. यूरोप के रेनासाँ की चित्रकला और मूर्तिकला मध्यकालीन कला से किस तरह से भिन्न थी?
11. कला में यथार्थवाद से क्या तात्पर्य है? आप किन हिन्दी फिल्मों को यथार्थवादी मानते हैं? कारण सहित समझाएँ।
12. क्या आप मुगल चित्रकला को यथार्थवादी कला मान सकते हैं? यदि हाँ तो क्यों? और न तो क्यों नहीं।
13. मुगलकालीन चित्रकला की आप क्या विशेषताएँ पहचान पा रहे हैं– चित्रों में जो दिख रहा है, उसके आधार पर बताएँ।
14. यूरोपीय रेनासाँ वास्तुकला को इस्लामी वास्तुकला की क्या देन थी?
15. नवजागरण वास्तुकला अपने दर्शकों पर क्या प्रभाव छोड़ना चाहती थी?
16. मध्यकाल में विज्ञान का अध्ययन यूरोप और भारत दोनों में लुप्त हो गया था। इसके क्या कारण रहे होंगे?
17. यूरोप के विज्ञान के विकास में चीन, भारत और अरब देशों का क्या योगदान था?
18. विज्ञान में प्रयोग, अवलोकन और गणना के महत्व को किस प्रकार स्थापित किया गया। इनके बिना भी क्या वैज्ञानिक ज्ञान का निर्माण किया जा सकता है?
19. यूरोप के नाविक किस उद्देश्य से समुद्री यात्रा कर रहे थे और उनके काम में विज्ञान का क्या महत्व था?

परियोजना कार्य

1. यूरोपीय रेनासाँ की चित्रकला के नमूनों का एक एलबम बनाएँ और विभिन्न चित्रकारों की कृतियों पर दो–दो वाक्य लिखें।
2. छपाई से पहले भारत में किताबों की प्रतियाँ कैसे तैयार होती थी और उसमें क्या समस्याएँ आती थीं? इस पर जानकारी तथा कुछ तत्कालीन पुस्तकों के चित्र एकत्र करें।
3. प्रसिद्ध मानववादी एरासमस या मैक्यावेली के जीवन और काम के बारे में जानकारी एकत्र करें।
4. गैलीलियो के जीवन और वैज्ञानिक खोज के बारे में पता करें और एक सचित्र निबन्ध तैयार करें।

XYN8VV

**

7

धर्मसुधार और प्रबोधन (सन् 1300–1800)

पिछले अध्याय में हमने देखा कि किस तरह मध्यकाल के अन्त में नई सोच और कलाबोध का विकास हो रहा था। हमने यह भी देखा कि किस प्रकार विभिन्न संस्कृतियों के आपस में मेल–मिलाप से सीखना–सिखाना शुरू हो गया था। धर्म इन सब बातों से कैसे अछूता रह जाता? मध्यकाल के अन्त में हम व्यापक पैमाने पर लोगों के धर्म और विश्वासों में बदलाव देख पाते हैं। यह भारत और इस्लामी देशों में क्रमशः भक्ति आन्दोलन और सूफी आन्दोलन के रूप में हुआ। यूरोप में रेनासाँ और वैज्ञानिक क्रान्ति के साथ–साथ एक और महत्वपूर्ण आन्दोलन, ईसाई धर्म में सुधार लाने का चल रहा था।

इन सबके बाद यूरोप में एक नया वैचारिक आन्दोलन चला जिसे *'प्रबोधन'* कहते हैं जिसके अन्तर्गत तर्क और आलोचनात्मक दृष्टिकोण का विकास और वैज्ञानिक सोच का प्रसार हुआ। इसका प्रभाव भारत जैसे देशों पर भी पड़ा। इन सब बातों को हम इस अध्याय में समझने का प्रयास करेंगे।

XYX4XI

7.1 धर्म सम्बन्धी वाद–विवाद और धर्मसुधार

मध्यकाल के बारे में यह सामान्य धारणा है कि तब लोग धर्मभीरु थे और धर्माचार्यों एवं धर्मग्रन्थों के प्रति अन्धश्रद्धा रखते थे। आधुनिक काल में लोगों ने धर्मान्धता से निकलकर तार्किकता और वैज्ञानिक विचारों को स्वीकार किया। इस अध्याय में हम इन कथनों का परीक्षण करेंगे।

7.1.1 भारत में धार्मिक विविधता

यदि हम चौथी सदी के बाद के भारत को देखें तो पता चलता है कि यहाँ कई धर्मों, पन्थों तथा दर्शनों का चलन था। न केवल विभिन्न प्रदेशों में धार्मिक विविधता थी बल्कि एक क्षेत्र में भी लोगों के धार्मिक विश्वास अलग–अलग थे। यही नहीं, हम यह भी देखते हैं कि लोग एक–दूसरे के विचारों को सुनकर व समझकर अपने विचारों व विश्वासों को लगातार बदल रहे थे और नए विचारों को स्वीकार करने के लिए तैयार थे।

हर क्षेत्र में एक ओर वहाँ के जनजातीय समाज के लोग थे जो अपने पारम्परिक रीति–रिवाज़ों के अनुसार देवी–देवताओं की उपासना करते थे। दूसरी ओर वैदिक धर्म को मानने वाले लोग थे जिनमें ब्राह्मण अग्रणी थे। इनमें से कई लोग वेदों को तो मानते थे मगर उसमें वर्णित कर्मकाण्डों या देवी देवताओं की जगह शिव, विष्णु आदि की उपासना करते थे। वैदिक ब्राह्मणों में भी कई लोग थे जो वैदिक कर्मकाण्ड की जगह देवताओं की मूर्ति स्थापित करके पूजा–पाठ करते थे या फिर घर–गृहस्थी त्यागकर ब्रह्म का ध्यान करने में विश्वास रखते थे। इन सब लोगों ने अपने–अपने विचारों के समर्थन में ग्रन्थ लिखे, एक–दूसरे से शास्त्रार्थ किए और अपने अनुयायियों को अपने विचार व आचरण सिखाए। इनमें से प्रमुख थे वैशेषिक, मीमांसावादी और वेदान्ती। (जो लोग वेदों के अन्तिम भाग यानी

चित्र 7.1 : दो विद्वानों के बीच वाद–विवाद
खजुराहो मन्दिर में बना शिल्प (लगभग सन् 1000 ई.)

उपनिषद के विचारों को अपना आधार मानते थे उन्हें वेदान्ती कहते हैं।) बाद में जाकर वेदान्त मार्ग के लोगों का प्रभाव बढ़ा लेकिन उनमें भी अनेक शाखाएँ बनीं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण विचारक थे आठवीं सदी के आदि शंकराचार्य। उनके विचार में अन्तिम सत्य एक ही है जिसे उन्होंने 'ब्रह्म' कहा। उनके अनुसार बाकी सब मिथ्या है और सत्य तक पहुँचने के लिए हमें संसार त्यागकर ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। अपने विचार के समर्थन में उन्होंने अनेक ग्रन्थ रचे। फिर भी बहुत से वेदान्ती उनसे सहमत नहीं थे। उनमें से एक थे बारहवीं सदी के रामानुजाचार्य जिनका मानना था कि अन्तिम सत्य तो ईश्वर है जो दुनिया की सृष्टि, पालन और विनाश करता है। इसके अलावा जीव भी हैं जो उस ईश्वर में लीन होने के लिए आतुर है और यह भक्ति के माध्यम से हो सकता है। इसके बाद सदियों तक इन दोनों विचारकों के अनुयायियों के बीच वाद–विवाद चलता रहा और इस बीच नए–नए विचार उत्पन्न हुए। यह तो हुई बात वैदिक ब्राह्मणों की एक शाखा की। इनके अलावा वैदिक परम्परा में शिव को पूजने वाले शैव, शक्ति को पूजने वाले शाक्त, विष्णु को पूजने वाले वैष्णव आदि हुए। इनका भी आपस में वाद–विवाद चलता रहा कि कौन सब से बड़े ईश्वर हैं, उस तक कैसे पहुँचें आदि। इनमें से प्रत्येक में भी अनेक शाखाएँ थीं।

एक ही देवता की भक्ति के लिए इतने अलग–अलग मार्ग कैसे और क्यों बनते होंगे, इस पर कक्षा में चर्चा करें।

आप जिस धर्म को मानते हैं उसकी विभिन्न शाखाओं के बारे में कक्षा में बताएँ।

वैदिक परम्परा से बाहर भी अनेक धर्म और सम्प्रदाय थे, जैसे– बौद्ध, जैन, आजीविक आदि। पहली सदी से ही ईसाई धर्म का आगमन केरल और तमिलनाडु में होने लगा था। सातवीं सदी के बाद इस्लाम को मानने वालों की आबादी गुजरात से केरल और उत्तर भारत में बनीं। ये वेदों और ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को नहीं मानते थे। इनमें से कई ऐसे थे (जैसे– जैन मत या बौद्ध मत) जो ईश्वर को भी नहीं मानते थे। इनमें से प्रत्येक की कई शाखाएँ और उपशाखाएँ थीं।

ग्यारहवीं सदी में उत्तरी भारत में तुर्कों का राज्य बना जो इस्लाम धर्म को मानते थे। उसी समय मध्य एशिया के इस्लामी प्रदेशों पर मंगोल कबीलों का आक्रमण हुआ। मंगोल कबीले चीन और इस्लामी देशों के बीच के मैदानों में रहने वाले पशुपालक थे जिन्होंने तेरहवीं शताब्दी में पूरे इस्लामी राज्यों पर आक्रमण करके उन्हें ध्वस्त कर दिया था। उनके प्रकोप से बचने के लिए अनेक इस्लामी विद्वानों और सूफी सन्तों ने भारत में शरण ली। इस्लाम में भी कई शाखाएँ थीं, जैसे– सुन्नी और शिया। इनमें भी आपस में वाद–विवाद और शास्त्रार्थ चलता रहा और विभिन्न विचारों के पक्ष में अनेक ग्रन्थ रचे गए।

इस्लामी सन्तों व शासन के प्रभाव में भारत में कई लोगों ने इस्लाम धर्म को स्वीकार किया। जिन्होंने इस्लाम धर्म को स्वीकार किया उन्होंने भी अपने पुराने धर्म और रीति–रिवाज़ों के कई तत्वों को बनाए रखा। इन बातों का एक प्रबल उदाहरण है पीरों की (इस्लामी सन्त) दरगाहों के प्रति श्रद्धा। अरब और ईराक जैसे देशों में पीरों की मज़ारों के प्रति अधिक आस्था नहीं देखी जाती। लेकिन भारत में जो प्रमुख सूफी सन्त थे, (जैसे– ख्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती और हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया) उनकी दरगाहों पर लोग ज़ियारत (तीर्थ यात्रा) करने लगे। उन दरगाहों के बारे

में यह मान्यता बनी कि वहाँ उनकी बरकत (कृपा) बनी हुई है और उनके आशीर्वाद से हमारी मनोकामनाएँ पूरी हो सकती हैं। इस तरह के विश्वास न केवल मुसलमानों में बने, बल्कि उन लोगों में भी बने जो मुसलमान नहीं थे। वे भी इन मज़ारों में प्रार्थना करने लगे। अक्सर वे इन सन्तों के विचारों को भी धीरे–धीरे अपनाने लगे कि ईश्वर एक ही है और वह निराकार है, उसके सतत् स्मरण और प्रेमभाव से उस तक पहुँच सकते हैं।

आम लोगों के धार्मिक विश्वासों में भी काफी विविधता थी। इनमें समय के साथ लगातार बदलाव आ रहे थे। हर समुदाय के अपने–अपने देवी–देवता और उपासना के तरीके थे। जब ये समुदाय एक–दूसरे के करीब आए और साथ–साथ रहने लगे तो वे एक–दूसरे के देवी–देवताओं को भी अपनाने लगे।

हम आम लोगों के धार्मिक विश्वासों में अक्सर कई धर्मों के प्रभावों को देख सकते हैं। क्या आप इसके कुछ उदाहरण दे सकते हैं?

मध्यकालीन भारत के धर्म में बहुत विविधता थी। इन विविध सम्प्रदाय व पन्थों को मानने वालों में आपस में बहस और विवाद भी होते रहते थे। लोग एक–दूसरे की बातों को मानते भी थे पर कभी–कभी लड़ाई झगड़े भी होते थे। इसके बावजूद विविधता बनी रही। इसका सबसे महत्वपूर्ण कारण यह था कि इन धर्मों में कोई एक अधिकारिक केन्द्र नहीं बना। किसी एक केन्द्र या संस्था या व्यक्ति को यह अधिकार नहीं था कि वह सबको बताए कि सही क्या है और गलत क्या है। हर व्यक्ति या पन्थ अपने स्तर पर सही गलत तय करने के लिए स्वतंत्र था। हर व्यक्ति अपनी ज़रूरत, अनुभव, रुचि के अनुरूप अपना पन्थ चुन सकता था, लेकिन धार्मिक लचीलेपन के साथ सामाजिक रूढ़िवादिता जुड़ी हुई थी। मध्यकाल में जाति व्यवस्था लगभग पूरे भारत में प्रभावशाली होती गई जिसके कारण धर्मग्रन्थों का अध्ययन, मन्दिरों में पूजा और प्रवेश जाति और जन्म से निर्धारित होने लगा। आमतौर पर दलित जातियों व महिलाओं को धर्मग्रन्थों का अध्ययन करने, मन्दिरों में पूजा करने या यज्ञ आदि कर्मकाण्ड करने पर पाबन्दी थी। जातिगत सीमाओं को लाँघने पर दण्ड दिया जाता था।

चित्र 7.2 : दरगाह पर मन्नत माँगते लोग

मध्यकालीन भारतीय समाज में जातिगत भेदभाव के साथ–साथ धन और सत्ता के आधार पर भी अत्यधिक सामाजिक असमानताएँ थीं। सल्तनत और मुगल शासन का प्रयास था शक्ति और संसाधन का केन्द्रीकरण करना। इसके फलस्वरूप उनके अधिकारी जिन्हें मनसबदार और जागीरदार कहते थे, दमनकारी और शोषणकारी होते गए।

उसी समय चाहे वह मुगल शासन हो या विजयनगर जैसे क्षेत्रीय राज्य, उनकी नीति में धार्मिक सहिष्णुता महत्वपूर्ण होती जा रही थी। राजा व बादशाह यह समझने लगे कि एक बहुधर्मी देश पर शासन करने के लिए लोगों की धार्मिक स्वतंत्रता का सम्मान करना ज़रूरी है। राज्य को धर्म के आधार पर भेदभाव यथासम्भव नहीं करना चाहिए। इसी नीति को मुगल बादशाह अकबर और उसके सलाहकार अबुल फज़ल ने 'सुलह कुल' की नीति कहा। अकबर का कहना था कि बादशाह ईश्वर का प्रतिनिधि है और जिस तरह ईश्वर अपनी कृपा (वर्षा और धूप

चित्र 7.3 : मीर मीराँ द्वारा बनाए गए सत्रहवीं सदी के एक चित्र में कबीर और अन्य भक्तगण।

के रूप में) हर धर्म के मनुष्यों पर समान रूप से बरसाता है, उसी तरह बादशाह को भी किसी से धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं करना चाहिए। उसकी ज़िम्मेदारी है कि राज्य में जितने लोग हैं वे शान्ति से रहें और समृद्धि पाएँ। यानी बादशाही किसी एक धर्म के लोगों के लिए नहीं बल्कि सभी धर्मों के लोगों के लिए है। अकबर एक तरह का बुद्धिवादी था जो परम्परागत अन्धविश्वासी धर्म को स्वीकार नहीं करना चाहता था। वह चाहता था कि हर धर्म की अच्छाई को हम अपनी बुद्धि द्वारा पहचानकर स्वीकार करें और जो गलत लगता है, उसे छोड़ दें। कुछ इसी तरह की भावना तत्कालीन भक्ति सन्तों में देखी जा सकती है।

इसी सामाजिक असमानता, भेदभाव, धार्मिक विविधता और वैचारिक टकरावों के बीच कबीर, रैदास, दादू दयाल, मीरा, तुलसीदास, सूरदास, गुरुनानक आदि संत हुए। इनमें से कई लोग ऐसे थे जिन्होंने उस काल के विभिन्न धर्मों की रूढ़िवादिता को नकारा और यह बताने का प्रयास किया कि ईश्वर एक है और उन तक पहुँचने के लिए किसी कर्मकाण्ड या मन्दिर या मस्ज़िद की ज़रूरत नहीं है, केवल उनके प्रति असीम प्रेम और दूसरे मनुष्यों की पीड़ा को दूर करने के प्रयास की ज़रूरत है।

इस तरह के विचारों को नए उभर रहे सामाजिक तबकों, जैसे– कारीगर, छोटे व्यापारी, किसान आदि ने उत्साह के साथ अपनाया। इनमें से कुछ जैसे– नानक पन्थ, दादू पन्थ और कबीर पन्थ विशिष्ट पन्थ बने। इनके विचार जनसामान्य के बीच उनके गीतों के माध्यम से पहुँच रहे थे। जनसामान्य में से कुछ जो उन विचारों से अधिक प्रभावित थे, इन पन्थों में शामिल हुए और विशेष आचरण, वेशभूषा आदि के माध्यम से अपने पन्थ की पहचान बनाई। ऐसा ही एक पन्थ सतनामियों का आज के हरियाणा राज्य में था। उन्होंने जात–पात के भेदभाव तथा धार्मिक कर्मकाण्डों को समाप्त करने का प्रयास किया। यही नहीं, उन्होंने मुगल शासन के दमनकारी अधिकारियों का भी पुरजोर विरोध किया। इस सम्प्रदाय की शुरुआत सन् 1657 में नारनौल में हुई थी। वे एक सृष्टिकर्ता ईश्वर में विश्वास करते थे और उसकी उपासना के लिए मन्दिर या मूर्तिपूजा की जगह सामूहिक भजन गायन करते थे। कहा जाता है कि वे कबीर और नानक के भजन गाते थे। वे घर बार त्यागने की जगह किसानी और गृहस्थ जीवन बिताते हुए ईश्वर का ध्यान करने का आग्रह करते थे। छत्तीसगढ़ में भी धर्म सुधार/सामाजिक सुधार में कबीर पंथ (दामाखेड़ा) एवं सतनाम पंथ (गुरु घासीदास, गिरोदपुरी) ने प्रभावी कार्य किया।

आपने कबीर और गुरु घासीदास के विचारों के बारे में पढ़ा होगा। उनके धार्मिक विचारों में क्या विशेषता थी और क्या नया था– पता करें और कक्षा में चर्चा करें।

तीन महिला भक्त

मध्यकाल में सभी धार्मिक संस्थाओं पर पुरुषों का ही एकाधिकार था और महिलाओं को धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन से दूर रखा जाता था। धर्माचार्य पुरुष ही होते थे और वे पुरुषों को ही सम्बोधित करते थे। इस कारण उन्होंने अक्सर महिलाओं को धार्मिक मार्ग में बाधा के रूप में देखा।

लेकिन उसी समय कई ऐसी भी महिलाएँ थीं जो घर–गृहस्थी छोड़कर स्वतंत्र धार्मिक जीवन व्यतीत करने लगीं। कई धार्मिक सम्प्रदाय ऐसे भी हुए जिन्होंने महिला भक्तों को महत्वपूर्ण स्थान दिया। उदाहरण के लिए कर्नाटक के नए भक्ति सम्प्रदाय– वीरशैवों ने अक्कमादेवी (जन्म सन् 1130, मृत्यु सन् 1160) को अपना महत्वपूर्ण गुरु माना। आज भी उनके भक्ति वचनों को वहाँ घर–घर में गाया जाता है।

अक्कमादेवी ने अपने पति व परिवार को त्यागकर और यहाँ तक कि समाज द्वारा स्थापित स्त्रियोचित व्यवहार की सीमाओं को लाँघकर जीवन जिया। वे स्वच्छन्द विचरण करतीं, अन्य भक्तों के साथ ईश्वर भक्ति के सम्बन्ध में चर्चा करतीं और भजन करतीं। उनके वचनों में बाह्य–आडम्बर, मूर्तिपूजा, मन्दिर, कर्मकाण्ड आदि की कटु आलोचना है और ईश्वर के प्रति असीम प्रेम की भावना है।

इसी तरह कश्मीर में लल्ल दद (जन्म सन् 1320, मृत्यु सन् 1390) हुईं जिन्होंने शैव सम्प्रदाय की होते हुए भी सूफी सन्तों (जिन्हें ऋषि कहा जाता था) के साथ मिलकर एक ईश्वर का विचार लोगों के सामने रखा। बाल विवाह से त्रस्त लल्ल घर–परिवार त्यागकर सन्यासिनी बन गईं और गाँव–गाँव विचरण करते हुए उन्होंने अपने लोकप्रिय गीतों के माध्यम से लोगों को कर्मकाण्ड रहित ईश्वर प्रेम का पैगाम दिया।

मध्यकालीन महिला भक्तों में से सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं मीरा जो राजस्थान के एक सामन्तवादी राजपूत परिवार में ब्याही थी और छोटी उम्र में ही विधवा हो गई थीं। श्रीकृष्ण के प्रति अपार प्रेम और भक्ति के कारण वे सन्त रैदास की शिष्या बन गईं। मीरा अन्य भक्तों के साथ भजन करती, नाचती व गाती थीं। इससे क्रुद्ध होकर राजा ने मीरा को मार ड़ालने का प्रयास किया और उन्हें राजमहल से निकाल दिया। आज भी मीरा के पद पूरे देश में गाए जाते हैं। मीरा न केवल भक्ति का प्रतीक बन गईं हैं बल्कि पुरुषप्रधान, जातिवादी, सामन्ती सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह की प्रतीक बन गईं हैं।

7.1.2 इस्लामी समाजों में धार्मिक विविधता

हमने पिछली कक्षाओं में पढ़ा है कि किस तरह अरब में इस्लाम धर्म की शुरुआत हुई। पैगम्बर मोहम्मद साहब ने आपस में झगड़ने वाले अरब कबीलों के बीच एकेश्वरवाद, ईश्वर की सब सन्तानों के बीच भाईचारा, उनके समक्ष सबकी समानता आदि बातों को फैलाया और उनमें एकता की भावना जगाई। साथ–साथ उन्होंने मूर्तियों व प्रतीकों की आराधना, कर्मकाण्ड और पुजारियों का सख्त विरोध किया और सरल तरीके से सामूहिक प्रार्थना के द्वारा ईश्वर तक पहुँचने की बात कही। इन विचारों की प्रेरणा से इस्लाम धर्म शीघ्र ही मध्य एशिया से लेकर ईरान, ईराक, मिस्र, उत्तरी अफ्रीका, स्पेन, और तुर्की तक फैल गया। इस्लाम के साथ–साथ इन सारे देशों ने अरबी भाषा को साहित्यिक, और धार्मिक भाषा के रूप में अपनाया। इस कारण उस काल की इस्लामी सभ्यता को अरब सभ्यता भी कहा जाता है।

सन् 1300 तक बंगाल से लेकर स्पेन तक इस्लामी राज्य फैले हुए थे। भारत को छोड़कर अधिकांश देशों में इस्लाम ही लोगों का प्रमुख धर्म था और ईसाई या यहूदी अल्पसंख्यक समुदाय थे। लेकिन हम पाते हैं कि इस्लाम में भी बहुत विविधता थी। हालाँकि इन सभी इस्लामी सम्प्रदायों ने कुरान शरीफ को ईश्वर का पैगाम माना और मोहम्मद नबी को उनका पैगाम पहुँचाने वाला पैगम्बर माना, फिर भी 'इस्लाम का मतलब क्या है', 'कुरान का असली मतलब और निहितार्थ क्या है', 'हमें क्या करना है,' 'कैसे जीवन बिताना है,' 'ईश्वर का स्वरूप क्या है' इस तरह के सवालों को लेकर बहुत मतभेद थे। एक बुनियादी मतभेद तो शिया और सुन्नी मुसलमानों में बना। पैगम्बर के बाद क्या दैवीय सत्ता उनके परिवार के उत्तराधिकारियों में भी है? शिया मानते थे कि पैगम्बर के वंशजों को मुसलमानों के इमाम या रहनुमा माना जाना चाहिए। लेकिन यह सुन्नियों को स्वीकार नहीं था और वे किसी परिवार या व्यक्ति को विशेष दर्जा देने के पक्ष में नहीं थे। बाद में शिया और सुन्नी दोनों के अन्दर कई विभेद होते चले गए।

चित्र 7.4 : गीत और संगीत के द्वारा ईश्वर की आराधना – ईरानी चित्र

आगे चलकर और गहरे मतभेद उभरे, खासकर उन लोगों के कारण जिन्होंने यूनानी दर्शन का अध्ययन किया था। इन्हें मोतज़ला सम्प्रदाय कहते हैं। इनके अनुसार मनुष्य कर्म करने के लिए स्वतंत्र है, यानी उसका काम पूरी तरह ईश्वर की इच्छानुसार नहीं होता है। अगर उसे यह स्वतंत्रता नहीं होती तो उसे उसके काम के लिए पुरस्कार या दण्ड नहीं दिया जा सकता है। एक और विचार था कि ईश्वर सर्वशक्तिमान नहीं हो सकता है क्योंकि वह गलत काम या अन्याय नहीं कर सकता है। उनका यह भी मानना था कि दैवी चमत्कार या अप्राकृतिक घटनाएँ असम्भव हैं क्योंकि हर एक पदार्थ के अपने गुण होते हैं जो कभी बदल नहीं सकते। उनका यह भी कहना था कि कुरान शरीफ का महत्व ईश्वर के समान नहीं हो सकता है क्योंकि वह ईश्वर का बनाया हुआ है। यानी ईश्वर की बाकी सृष्टि की तरह उसकी भी स्वतंत्र व्याख्या की जा सकती है। उनका मानना था कि ईश्वर ने मनुष्य को बुद्धि दी है ताकि वह भलाई और बुराई में अन्तर कर सके। इस कारण मनुष्य को किसी ग्रन्थ के कथन से बढ़कर अपने विवेक का उपयोग करना चाहिए।

इस तरह के तर्कों को लेकर इस्लाम में बहुत वाद–विवाद हुआ और यहाँ तक कि कुछ विचारों को इस्लाम विरुद्ध माना गया। मोतज़ला सम्प्रदाय के खिलाफ करामी सम्प्रदाय का उदय हुआ और अश्अरी सम्प्रदाय ने दोनों के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया। लेकिन इस्लाम में ऐसा कोई प्रावधान नहीं था कि कोई मौलवी या खलीफा या सुल्तान यह दावा करे कि वह सब की ओर से इस्लाम की आधिकारिक व्याख्या कर सकता है। विभिन्न लोग केवल अपने विचार रख सकते थे और दूसरों से आग्रह कर सकते थे कि उसे ही सच्चा इस्लाम मानें। लेकिन उनके विचार माने ही जाएँ ऐसा ज़रूरी नहीं था।

इस्लाम की व्याख्या के विकास में यूनानी दार्शनिक और वैज्ञानिक साहित्य और आध्यात्मवादी सूफी सन्तों का यह प्रभाव महत्वपूर्ण रहा। जिन विद्वानों ने यूनानी ग्रन्थों का अध्ययन किया वे तार्किक सोच, वैज्ञानिक अन्वेषण आदि पर ज़ोर देते थे और संकीर्ण धार्मिक सोच से हटना चाहते थे। उनके प्रयास से मानव शरीरशास्त्र, चिकित्सा शास्त्र, गणित, खगोलशास्त्र तथा कीमियागिरी (रसायनों का अध्ययन जिसमें लोग लोहे या अन्य धातुओं को सोना बनाने की विधि खोजते और प्रयोग करते थे) को बहुत बढ़ावा मिला। उन्होंने यूनानी ग्रन्थों के अलावा चीन और भारत के वैज्ञानिक और गणितीय साहित्य का भी अध्ययन किया और अनुवाद किया। इनमें प्रमुख थे अलबरूनी जिन्होंने लगभग एक हज़ार साल पहले भारत में कई वर्ष बिताकर यहाँ के ग्रन्थों को पढ़ा और अरबी में अनुवाद किया। एक और व्यक्ति थे इब्न सीना (जन्म सन् 980, मृत्यु सन् 1037), जो उस काल के प्रमुख वैद्य और दार्शनिक थे। चिकित्सा और दर्शन के बारे में उनकी पुस्तकों का यूरोपीय भाषाओं में अनुवाद हुआ और आधुनिक काल की शुरुआत तक इसे चिकित्सकों को पढ़ाया जाता रहा। यूरोपीय चिन्तन पर प्रभाव छोड़ने वाले इस्लामी दार्शनिकों में ईरान के गणितज्ञ अल ख्वारिज़्मी (जन्म सन् 780, मृत्यु सन् 850) तथा स्पेन के अल रुश्द (जन्म सन् 1126, मृत्यु सन् 1198) के नाम अग्रणी हैं। अल रुश्द प्रसिद्ध चिकित्सक थे उन्होंने अरस्तू (एरिस्टोटल) व अफलातून (प्लैटो) की पुस्तकों पर टीका भी लिखी। इसके अलावा उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि मनुष्य को अपने आसपास की दुनिया का अध्ययन करना चाहिए और यह धर्म विरोधी नहीं है। उनका मानना था कि दर्शन (तार्किक सोच) और विज्ञान की मदद से हम ईश्वर को भी समझ सकते हैं। यह विचार परम्परावादी मौलवियों व सूफियों के विचारों के विपरीत था। अल रुश्द जैसे इस्लामी दार्शनिकों की पुस्तकों का अनुवाद यूरोपीय भाषाओं में हुआ। ये अनुवाद यूरोपीय वैचारिक क्रान्ति का एक कारक बने। सूफी सन्तों के विचार इन दार्शनिकों से भिन्न थे। सूफी सन्त यह मानते थे कि मनुष्य जीवन का ध्येय ईश्वर को प्राप्त

करके उसमें समा जाना है। यह ईश्वर से गहरे प्रेम के द्वारा ही हो सकता है। उन्होंने माना कि तार्किक सोच, दर्शन या फिर बाहरी कर्मकाण्ड आदि इसमें बाधक होंगे। उनका मानना था कि मनुष्य विशेष साधनाओं, जैसे– ध्यान, जाप आदि से चरण–दर–चरण ईश्वर तक पहुँच सकता है। कुछ सूफी तो यहाँ तक मानते थे कि मनुष्य और ईश्वर में कोई दूरी या अन्तर नहीं हो सकता है। कई सूफियों ने बौद्ध और योग के ग्रन्थों को फारसी में अनुवाद किया और उनका गहन अध्ययन किया। इस तरह के दार्शनिकों और सूफियों के विचारों से परम्परावादी मुसलमान असहमत थे। उन्होंने उनका पुरज़ोर विरोध किया और उन्हें यातनाएँ भी दीं लेकिन इन विचारों को मिटाया नहीं जा सका और वे विकसित होते गए।

महिलाओं पर अल रुश्द के विचार

अल रुश्द दुनिया के ऐसे विचारकों में से थे जिन्होंने महिलाओं को समान दर्ज़ा देने की वकालत की थी। उनका मानना था कि महिलाएँ पुरुषों के बराबर की क्षमता रखती हैं और पुरुषों के स्वार्थ के कारण उन्हें पुरुषों की सेवा तक सीमित रखा गया है। इससे समाज को हानि पहुँचती है क्योंकि समाज सार्वजनिक क्षेत्र में महिलाओं के योगदान से वंचित रह जाता है। अपने कथनों के पक्ष में उन्होंने अनेक महिला शासकों का उदाहरण दिया जिन्होंने मौका मिलने पर न केवल अच्छा प्रशासन दिया बल्कि युद्ध में भी सफल सेनापति साबित हुईं।

इस्लाम में किन सवालों को लेकर धार्मिक मतभेद उभरे थे?

दार्शनिकों और सूफियों के विचारों में क्या अन्तर थे?

7.1.3 यूरोप में कैथोलिक चर्च और धार्मिक सुधार

जैसा कि हम जानते हैं ईसाई धर्म की शुरुआत पश्चिमी एशिया के फिलिस्तीन प्रदेश में पहली सदी में हुई थी। तब यह रोमन साम्राज्य का हिस्सा था। तीसरी सदी तक यह नया धर्म रोमन साम्राज्य में फैल गया और आठवीं सदी तक पूरे यूरोप के लगभग सारे लोग इसे अपना चुके थे।

लगभग चौथी सदी से ईसाई धर्म चर्च पर केन्द्रित था। रोम में स्थित चर्च का दावा था कि हर ईसाई को अनिवार्य रूप से चर्च का सदस्य बनना होगा और धार्मिक विषयों पर चर्च की ही बातों को स्वीकार करना होगा। इसे रोमन कैथोलिक चर्च (कैथोलिक यानी सार्वभौमिक) कहा जाता था। चर्च का ढाँचा मोहल्ले या गाँव से शुरू होकर क्षेत्रीय और विश्व स्तर पर नियोजित था। हर क्षेत्र के लिए एक बिशप और उनसे ऊपर कार्डिनल नामक पादरी नियुक्त होते थे और सबसे ऊपर पोप जो चर्च के उच्चतम अधिकारी होते थे।

उस समय की राजनैतिक व्यवस्था भी कुछ ऐसी थी कि राजाओं को पोप की धार्मिक सत्ता को स्वीकार करना पड़ा। एक तरह से राज्य और धर्म के अधिकारी संयुक्त रूप से शासन चलाते थे। ऐसे में धार्मिक विश्वासों की विविधता या धार्मिक सहिष्णुता या व्यक्ति द्वारा अपना धार्मिक रास्ता चुनने के अधिकार का सवाल ही नहीं था। यह माना गया था कि एक अच्छे ईसाई का जीवन जीने और मुक्ति पाने के लिए पादरियों और उनके द्वारा संचालित कर्मकाण्डों की परम आवश्यकता है। धर्म का आधार–ग्रन्थ 'बाईबल' था जो लैटिन भाषा में था, जिसे प्रायः सामान्य लोग नहीं समझते थे। इस कारण धर्म की व्याख्या पर पादरियों का एकाधिकार स्थापित हुआ। चर्च एक न्यायालय के रूप में भी काम करता था जिसके शीर्ष पर पोप होता था।

चर्च के पास अपार भू सम्पत्ति थी जिसे वह सामन्ती भूस्वामी की तरह संचालित करता था। इसके अलावा हर ईसाई व्यक्ति से उसकी आय का दसवाँ हिस्सा धार्मिक टैक्स के रूप में वसूल किया जाता था। राजकीय सत्ता, धर्म, न्याय, और अपार धन पर नियंत्रण के कारण कैथोलिक चर्च का वर्चस्व था। उसके विरुद्ध आवाज़ उठाना राजद्रोह के बराबर माना जाता था। इन बातों का पादरियों पर भी असर पड़ा और मध्यकाल के अन्त तक वे विशेष वैभव और विलास में जीने लगे।

रेनासाँ काल में चर्च विशाल भवनों का निर्माण करवा रहा था और साथ में उनकी शानो–शौकत बढ़ रही थी। इस कारण बढ़ते खर्च को पूरा करने के लिए चर्च ने नए तरीके अपनाए। वह श्रद्धालुओं को माफीनामा (क्षमापत्र)–यह

चित्र 7.5 एक विशाल भवन का नक्शा देखते हुए एक पोप

कहकर बेचने लगा कि "अगर तुमने कोई पाप किया हो तो उसके लिए चर्च को एक राशि देकर माफी पा सकते हो; पोप इस पैसे के बदले माफीनामा देंगे। ईश्वर के सामने जब पहुँचोगे तो इसे दिखाकर माफी पा सकते हो।"

हमने पिछले अध्याय में पढ़ा था कि किस तरह एरासमस जैसे मानववादी बुद्धिजीवियों ने चर्च के कई सिद्धान्तों व व्यवहार की आलोचना की थी। इन्हें ईसाई मानववादी कहते हैं। वे चर्च के विरुद्ध किसी बगावत की बात नहीं कर रहे थे बल्कि उसमें आन्तरिक सुधार की माँग कर रहे थे। इसी दौर में चर्च विरोधी आन्दोलन भी प्रबल हो रहे थे जिसमें गरीब तबके के लोग, किसान और कारीगर अधिक संख्या में शामिल हो रहे थे। वे बाह्य कर्मकाण्ड का विरोध कर रहे थे और आन्तरिक आस्था और निष्ठा पर ज़ोर देते थे। इस बीच उत्तरी यूरोप में राष्ट्रवाद की धारा उभरने लगी थी जिसके चलते चर्च की सत्ता को चुनौती दी जाने लगी थी। इंग्लैण्ड, जर्मनी आदि देशों के शासक पोप की सत्ता से स्वतंत्र होना चाहते थे। उनकी नज़र चर्च की अपार सम्पत्ति पर भी थी। इसी पृष्ठभूमि में मार्टिन लूथर ने कैथोलिक चर्च के विरुद्ध आंदोलन शुरू किया।

7.1.4 मार्टिन लूथर और धर्मसुधार

मार्टिन लूथर जर्मनी के एक पादरी थे जो इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि बाह्य कर्मकाण्डों के द्वारा मोक्ष पाना असम्भव है। इसे दैवीय कृपा और अन्तःकरण की निजी आस्था या विश्वास से ही प्राप्त किया जा सकता है। उन्होंने सन् 1517 में पोप द्वारा जारी माफीनामा के विरुद्ध 95 विचार बिन्दु जारी किए और कहा कि न ही पाप से इस तरह मुक्ति पाई जा सकती है और न ही ऐसे बाह्य कर्मों से मोक्ष पाया जा सकता है। देखते–देखते लूथर का दस्तावेज़ छपाई की मदद से दूर–दूर तक फैल गया। जन साधारण से लेकर शासकों ने भी उनका समर्थन किया। पोप ने सन् 1520 में लूथर को धर्म से बाहर कर दिया और उन्हें अधार्मिक करार दिया। उसी वर्ष लूथर ने तीन पुस्तकें प्रकाशित करके अपने विचारों को जनसामान्य के बीच फैलाया। बाद में इस विचार ने प्रोटेस्टेंट सम्प्रदाय का रूप लिया। लूथर के पक्ष में व्यापक जनसमर्थन को देखते हुए राजाओं द्वारा भी उनके खिलाफ कोई कदम नहीं उठाया जा सका। जर्मनी की कई छोटी रियासतों ने अपने कैथोलिक सम्राट पर दबाव डाला और सन् 1555 में प्रजा को अपना धर्म प्रोटेस्टेन्ट या कैथोलिक चुनने का अधिकार दिया गया। प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदाय दरअसल एक सम्प्रदाय नहीं था, उसमें लूथर, कैल्विन, ज्विंगली आदि के विचारों से प्रेरित अनेक धाराएँ थीं।

अब प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदाय की मुख्य विशेषताओं पर विचार करें। हालाँकि प्रोटेस्टेन्टवाद में अनेक धाराएँ सम्मिलित थीं, फिर भी उनमें कुछ समानताएँ हम पहचान सकते हैं। पहला तो यह कि वे मानते हैं कि मोक्ष किसी बाह्य कर्मकाण्ड से नहीं मगर ईश्वरीय कृपा और आन्तरिक विश्वास से प्राप्त हो सकता है। इसका यह भी मतलब था कि मनुष्यों को किसी पादरी या उसके द्वारा किए गए कर्मकाण्ड की ज़रूरत नहीं है। वे यहाँ तक मानते थे कि हर ईसाई खुद एक पादरी बनकर ईश्वर से सम्पर्क कर सकता है।

प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदायों ने यह भी माना कि धर्म की व्याख्या के लिए पादरी वर्ग पर निर्भर न होकर हर ईसाई को खुद बाईबल का अध्ययन करके अपनी निजी व्याख्या करनी चाहिए। इसे सम्भव बनाने के लिए उन्होंने बाईबल का

चित्र 7.6 : मार्टिन लूथर, एक समकालीन चित्र

प्रादेशिक भाषाओं में अनुवाद किया और छापाखानों की मदद से जन–जन तक पहुँचाया। सन् 1522 में लूथर ने बाईबल का जर्मन भाषा में अनुवाद किया।

इन सब बातों का प्रभाव कैथोलिक चर्च पर भी पड़ा। चर्च में आन्तरिक सुधार का एक अभियान चला जिसे 'प्रतिधर्मसुधार' कहते हैं।

असीसी के संट फ्रांसिस – चर्च में गरीबी की वकालत

एक तरफ चर्च अथाह सम्पत्ति, शान और शौकत का प्रतीक बन रहा था तो दूसरी तरफ ऐसे कई धार्मिक व्यक्ति हुए जिन्होंने ईसा मसीह के मूल सन्देशों को जीवन में उतारने का प्रयास किया। सेन्ट फ्राँसिस (मृत्यु सन् 1226) ऐसे ही एक सन्त थे। वे इटली के असीसी शहर के एक धनी व्यापारी परिवार में पैदा हुए थे मगर युवावस्था में उन्हें अहसास हुआ कि गरीब बनकर ही ईश्वर तक पहुँचा जा सकता है। वे अपना सब कुछ गरीबों को बाँटने लगे जिस पर क्रुद्ध होकर उनके पिता ने उन्हें घर से बाहर कर दिया। तब से उन्होंने शहर के सबसे गरीब लोगों के बीच रहकर खुद माँगकर खाने वाले और मज़दूरी करने वाले का जीवन जिया। यही नहीं, उन्होंने यह भी माना कि प्रकृति के सारे जीवों, जैसे– पक्षियों व जानवरों–से प्रेम करना चाहिए। यह माना जाता है कि वे पक्षियों व जानवरों के साथ बात कर सकते थे। उन्होंने यह भी प्रयास किया कि इस्लामी सुल्तान और ईसाईयों के बीच सुलह हो। पोप की अनुमति के साथ उन्होंने ऐसी महिलाओं व पुरुषों का समूह स्थापित किया जो गरीबी में रहने और गरीबों की सेवा में विश्वास रखता था।

कुल मिलाकर धर्मसुधार आन्दोलन का परिणाम केवल कैथोलिक धर्म की कुछ कुरीतियों का खात्मा करना नहीं था। उसका सबसे युगान्तरकारी परिणाम यह हुआ कि यूरोप की धार्मिक एकरूपता और चर्च का धर्म पर एकाधिकार समाप्त हुआ। शुरू में इंग्लैंड जैसे देशों में यह प्रयास ज़रूर किया गया कि देश में एक राष्ट्रीय चर्च हो। मगर समय के साथ धार्मिक सम्प्रदायों की बहुलता पर अंकुश लगाना असम्भव हो गया। कालान्तर में धर्म और राज्य के आपसी जुड़ाव को समाप्त किया गया। यह व्यक्तियों के अपने धर्म चुनने की स्वतंत्रता और शासन में पन्थ–निरपेक्षता लाने में सहायक हुआ।

मध्यकालीन भारत अरब एवं यूरोप में धर्म की स्थिति में आपको क्या समानताएँ और अन्तर नजर आ रहे हैं?

कैथोलिक चर्च की किन बातों से प्रोटेस्टेन्ट असहमत थे?

आपको भारत के भक्ति आन्दोलन, सूफी आन्दोलन और प्रोटेस्टेन्ट आन्दोलन के बीच क्या समानता व अन्तर दिखते हैं?

क्या आपको यह लगता है कि धार्मिक ग्रन्थ आम लोगों की समझ में आने वाली भाषा में ही होने चाहिए? अपना तर्क दें।

क्या आपको लगता है कि हर व्यक्ति को खुद अपने लिए अपने धर्म की व्याख्या करनी चाहिए?

7.2 प्रबोधन (Enlightenment)

XZ5EAC

अठारहवीं सदी वह युग था जिसमें यह लगने लगा था कि तर्क, विज्ञान और उद्यम की मदद से जीवन में सुधार आ सकता है और मनुष्य अज्ञान से ज्ञान की ओर जा सकता है। लेकिन ऐसी प्रगति तब ही सम्भव होगी जब तर्क और विज्ञान किसी के वर्चस्व या सत्ता के आगे झुके या रुके नहीं। यानी ऐसी सामाजिक व्यवस्था हो जिसमें किसी का प्रभुत्व या वर्चस्व न हो और लोग अपने तर्क और ज्ञान के आधार पर निर्णय कर पाएँ। ये विचार *'प्रबोधन'* नामक वैचारिक आन्दोलन के माध्यम से यूरोप में फैले। ये विचार इतने प्रभावी थे कि वे अमरीकी व फ्राँसीसी क्रान्तियों के प्रेरक बने तथा आज भी आधुनिक मानव की सोच पर हावी हैं। ऐसा नहीं है कि इन विचारों का विरोध नहीं हुआ या इनकी आलोचना नहीं हुई। हम आगे प्रबोधन की आलोचनाओं पर भी विचार करेंगे।

प्रबोधन के विचारों को विकसित करने में मुख्य भूमिका फ्राँस के विचारकों की थी। इनमें प्रमुख थे वॉल्तेयर (जन्म सन् 1694, मृत्यु सन् 1778) और दिदेरो (जन्म सन् 1713, मृत्यु सन् 1784)। इनके अलावा स्काटलैंड के दार्शनिक डेविड ह्यूम (जन्म सन् 1711, मृत्यु सन् 1776) और अर्थशास्त्र के जनक एडम स्मिथ (जन्म सन् 1723, मृत्यु सन् 1790) को भी इसी श्रेणी में रखा जाता है। जर्मनी में प्रबोधन के प्रमुख दार्शनिक थे इमानुवेल कान्ट (जन्म सन् 1724, मृत्यु सन् 1804)। इन विचारों को फैलाने का श्रेय जाता है फ्रेंच भाषा में एम. दिदेरो द्वारा सम्पादित व संकलित विश्वकोश को जिसमें आज के खोजों व विचारों को सरल भाषा में प्रस्तुत किया गया था। आगे हम प्रबोधन के मुख्य विचारों के बारे में पढ़ेंगे।

7.2.1 विकास की अवधारणा

प्रबोधन के चिन्तकों का मानना था कि समय के साथ दुनिया पहले से बेहतर होती जाती है। वर्तमान भूतकाल से कहीं अधिक बेहतर है और मनुष्य विज्ञान, सूझबूझ और उद्यमिता के सहारे आने वाले दिनों में और तरक्की पा सकता है। तरक्की से उनका तात्पर्य था कि मनुष्य विज्ञान और तकनीक की मदद से पहले से कहीं अधिक प्रकृति को नियंत्रित कर सकता है। इमानुवेल कान्ट का मानना था कि विकास का यह मतलब नहीं है कि लोग सुखी या खुश होंगे क्योंकि मनुष्य इतिहास के किसी भी दौर में सुखी या दुखी हो सकता है। उनका मानना था कि विकास का वास्तविक मानदण्ड है मनुष्य की स्वतंत्रता में वृद्धि और जीवन में विकल्पों की प्रचुरता। आधुनिक काल उन्नत इसलिए है क्योंकि मनुष्य पहले से अधिक स्वतंत्र है और वह विभिन्न जीवन–शैलियों के बीच चुनाव कर सकता है।

क्या आपको लगता है कि आज का मनुष्य सौ साल के पहले के मनुष्य से अधिक विकसित है। किन मायनों में आज मनुष्य का जीवन सौ साल पहले के जीवन से बेहतर है और किन मायनों में बदतर है?

प्रगति से आप क्या समझते हैं – समृद्धि, सुख, खुशी, स्वतंत्रता। इनमें से कौन से शब्द को आप प्रगति के सबसे अधिक निकट पाते हैं?

7.2.2 तर्क या बुद्धि का युग

प्रबोधन के विचारकों का मानना था कि इस युग में तार्किक चिन्तन धीरे–धीरे मनुष्य के निर्णयों को निर्धारित करता है, न कि अन्धविश्वास, धर्म या किसी कुलीन व्यक्ति का कहना। उनका मानना था कि तर्क की मदद से मनुष्य न केवल किसी आधिकारिक व्यक्ति या संस्था पर सवाल उठा सकता है और उनकी छानबीन कर सकता है बल्कि उसकी मदद से मनुष्य विवेकशील और सुखमय जीवन भी जी सकता है। बुद्धि ही मनुष्य को सही रास्ता दिखा सकती है इसलिए प्रबोधन का मुख्य मकसद लोगों में तर्क शक्ति जागृत करना और उसमें विश्वास जगाना है। तत्कालीन विचारक होलबाक के शब्दों में 'हम मनुष्यों में हिम्मत बान्धें, उनमें अपनी ही बुद्धि में विश्वास जगाएँ और सत्य की लालसा जगाएँ ताकि वह अपने ही अनुभवों के आधार पर निर्णय लेना सीखें और किसी दूसरे के द्वारा प्रेरित कोरी कल्पनाओं से ठगे न जाएँ।'

किसी के द्वारा प्रदत्त ज्ञान की जगह अपनी ही बुद्धि व तर्कशक्ति पर निर्भर होने के लिए हिम्मत की क्यों ज़रूरत है?

7.2.3 विज्ञान

प्रबोधन ने माना कि वैज्ञानिक ज्ञान ही सही ज्ञान है। विज्ञान से उनका तात्पर्य था ऐसे निष्कर्ष जिन पर अवलोकनों व प्रयोगों के आधार पर तार्किक रूप से पहुँचा गया हो और जिनका स्पष्ट प्रमाण हो। किसी दैवीय सन्देश या आध्यात्मिक ज्ञान की प्रमाणिकता को स्वीकार नहीं करना चाहिए। उनके विचार में विज्ञान के तरीकों में वह ताकत है जिसकी मदद से हम दुनिया के बारे में सब कुछ पूरी तरह से जान सकते हैं। इसके लिए किसी धर्मग्रन्थ या तथाकथित ज्ञानी के उपदेशों की नहीं बल्कि प्रयोग, अवलोकन और तर्क की ज़रूरत है। प्राचीन काल तथा मध्यकाल में ज्ञान के सम्बन्ध में यह माना जाता था कि वह केवल चीज़ों का व्यवस्थित वर्गीकरण है। प्रबोधन के वैज्ञानिकों के अनुसार ज्ञान का उद्देश्य सूची बनाना नहीं बल्कि चीज़ों के कारणों को समझना है। अब क्यों व कैसे जैसे सवाल कहीं

अधिक महत्वपूर्ण हो गए। वे मानते थे कि इस ज्ञान की मदद से हम नई तकनीकों को विकसित कर सकते हैं जिनसे जीवन अधिक सुखमय हो सकता है।

प्रबोधन के विज्ञान और उसके पहले के विज्ञान में क्या मुख्य अन्तर था?

7.2.4 विज्ञान बनाम धर्म

प्रबोधन के समर्थकों के विचार में धर्म मनुष्य को अन्धविश्वासी, डरपोक और गुलाम बना देता है। उनका मानना था कि धर्म के नाम पर लड़ाईयाँ होती हैं और मनुष्य का खून बहाया जाता है। वे खास तौर से धर्म पर कैथोलिक चर्च के एकाधिकार के खिलाफ थे। उनका मानना था कि चर्च के एकाधिकार के कारण मनुष्य अपनी बुद्धि पर विश्वास न कर पुजारियों की चमत्कारिक कहानियों पर विश्वास करने लगे और उनकी कठपुतली बने। अधिकांश प्रबोधन चिन्तक नास्तिक नहीं थे बल्कि उनका प्रयास था कि ईश्वर का विज्ञान और स्वतंत्रता सम्मत आधार खोजें। उन्हें डर था कि नास्तिकता मनुष्य को नैतिकता से दूर ले जा सकती है। विज्ञान की मदद से विश्व के बारे में जो जानकारी प्राप्त हो रही है, वह इस बात का प्रमाण है कि सृष्टिकर्ता ईश्वर कितना महान है। लेकिन वे ईश्वर और धर्म को किसी व्यवस्था, संगठन या पुजारियों के हाथ नहीं सौंपना चाहते थे।

क्या किसी धर्म को न मानकर केवल ईश्वर को मानना सम्भव है?

किन परिस्थितियों में धर्म मनुष्यों को जोड़ता है और किन परिस्थितियों में धर्म के कारण लोग आपस में लड़ते हैं?

चित्र 7.7 : वोल्तेयर

7.2.5 स्वतंत्रता

प्रबोधन के समर्थक व्यक्तिगत स्वतंत्रता में गहरी आस्था रखते थे और उनका मानना था कि लोगों पर अगर कोई कानून लागू करना है तो वह उनकी सहमति से ही हो सकता है। इस कारण वे हर तरह की गुलामी, गैर–लोकतांत्रिक व्यवस्थाएँ और निरंकुशता के खिलाफ थे लेकिन इसके बावजूद प्रबोधन के कई चिन्तक तत्कालीन निरंकुश शासकों के निकट मित्र और सलाहकार थे। उनके प्रभाव से इन शासकों ने अपने राज्यों में सुधार लाने का प्रयास किया।

व्यक्तिगत स्वतंत्रता और विज्ञान के विकास में कोई सम्बन्ध देख सकते हैं? बताएँ।

7.2.6 प्रबोधन की आलोचना

जिस समय प्रबोधन आन्दोलन अपने चरम पर था उसी समय यूरोप में औद्योगीकरण के कारण प्रकृति का दोहन, प्रदूषण और मज़दूरों का शोषण हो रहा था। राजनैतिक क्रान्तियों के कारण पुरानी जीवन पद्धतियाँ नष्ट हो रही थीं। उसी समय अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, भारत आदि देशों में जनजातियों में सादगी और भाईचारे का जीवन उन्हें देखने को मिला। जो लोग औद्योगीकरण आदि से त्रस्त थे वे आधुनिक युग की आलोचना करने लगे और उसके साथ विज्ञान और बुद्धिवाद का भी विरोध करने लगे। इनमें रूमानी (रोमांटिसिस्ट) आन्दोलन के दार्शनिक (जैसे रूसो), कवि (लार्ड बॉयरन) और कलाकार प्रमुख थे। वे आधुनिक औद्योगिक युग की जगह एक कल्पित ग्रामीण जीवन जो प्रकृति के विनाश पर नहीं बल्कि उसके साथ सामंजस्य पर आधारित हो, की पैरवी कर रहे थे। वे तेज़ी से लुप्त हो रही लोक कला और संस्कृति को बचाना चाहते थे। जहाँ प्रबोधन ने दुनिया को समझने की विज्ञान की शक्ति का गुणगान किया वहीं रूमानियों (रोमांटिसिस्ट) ने उन बातों पर ध्यान आकर्षित किया जिन्हें भावनाओं व अहसासों से ही समझा जा सकता था। रूमानियों ने प्रबोधन के विकल्प में भारतीय, चीनी और जापानी संस्कृति और साहित्य को सराहा और उनके अध्ययन पर ज़ोर दिया। इसके फलस्वरूप कालिदास जैसे–संस्कृत कवियों की कृतियों का यूरोपीय भाषाओं

चित्र 7.8 : दिदेरो द्वारा संपादित विश्वकोश का मुखपृष्ठ तथा उसमें छपा एक धातु कारखाने का चित्र

चित्र 7.9 : सन् 1825 में फ्रांसीसी कलाकार डेलाक्रा द्वारा बनाया गया चित्र – बिजली से भयभीत घोड़ा। इस चित्र में प्रकृति को अजेय शक्ति के रूप में दर्शाने का प्रयास है। इसकी तुलना रेनासाँ के चित्रों से करें।

में अनुवाद किया गया। कालिदास के नाटक *शाकुन्तलम* ने रूमानी साहित्यकारों को बहुत प्रभावित किया। रूमानी कलाकारों ने रेनासाँ से शुरू हुए यथार्थवाद को त्याग दिया और स्पष्ट आकृतियों की जगह धुन्धलेपन, तूफानी वातावरण आदि पर जोर दिया। उनके द्वारा दर्शाए गए लोग भी भयभीत या अचम्भित लगते थे।

अभ्यास

XZ6ZZ6

1. मध्यकालीन भारत में परम सत्य के बारे में क्या–क्या कल्पनाएँ थीं?
2. भारत में धार्मिक विविधता का लोगों के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा होगा?
3. जाति व्यवस्था ने किस प्रकार लोगों की धार्मिक स्वतंत्रता को प्रभावित किया होगा?
4. अकबर की धर्मसहिष्णु नीति के बनने के पीछे क्या–क्या कारण रहे होंगे?
5. कबीर जैसे विचारकों ने किस प्रकार धर्मों के घेरे से निकलकर ईश्वर भक्ति की बात की?
6. महिला भक्तों की जीवनी में आपको क्या समानताएँ व भिन्नताएँ दिखती हैं?
7. परम्परावादी मुसलमान, दार्शनिक मुसलमान और सूफियों में क्या क्या भिन्नताएँ थीं?
8. मध्यकालीन इस्लामी दार्शनिकों ने किस प्रकार प्राचीन यूनानी दर्शन को आधुनिक विश्व तक पहुँचाया?
9. मध्यकालीन यूरोप में चर्च की भूमिका क्या थी ? इस भूमिका पर धर्मसुधार का क्या प्रभाव पड़ा?
10. मार्टिन लूथर ने किन बातों को लेकर कैथोलिक चर्च की आलोचना की?
11. धर्म सुधार आन्दोलन और धार्मिक स्वतंत्रता के बीच आप क्या सम्बन्ध देख पाते हैं?
12. प्रबोधन की मुख्य विशेषताएँ क्या थीं? उसका वैज्ञानिक क्रान्ति से क्या सम्बन्ध था?
13. रूमानी आन्दोलन किन बातों पर प्रबोधन से असहमत था?

परियोजना कार्य

1. प्रोटेस्टेंट धर्म और औद्योगिक क्रांति के बीच क्या संबंध थे– पता करें और एक संक्षिप्त निबंध लिखें।
2. वोल्तेयर की जीवनी और विचारों के बारे में पढ़े और कक्षा में चर्चा करें।

**

8

लोकतांत्रिक एवं राष्ट्रवादी क्रान्तियाँ सन् 1600–1900

XZEABZ

हांगकांग में लोकतंत्र के लिए मार्च

चित्र 8.1 : हांगकांग में लोकतंत्र के लिए मार्च

'राष्ट्रवाद' और 'लोकतंत्र' के बारे में आपने किताबों, भाषणों, अखबारों, टी. वी., रेडियो के समाचारों आदि में ज़रूर सुने होंगे। आप के विचार से इनका क्या आशय है। एक–दूसरे से चर्चा करें। राजाओं के शासन और लोकतंत्र में क्या–क्या अन्तर है, कक्षा में चर्चा करें।

सन् 1600 में दुनिया के अधिकांश इलाकों में राजा–महाराजाओं या सामन्तों का शासन था। वे अपने अधीन लोगों पर अपनी मर्ज़ी से शासन करते थे। लोगों पर मनमाने कर व शुल्क लगाना, विरोध करने वालों को प्रताड़ित करना, जेल में डालना या मार देना, लोगों की सम्पत्ति को मनमाने तरीके से ज़ब्त कर लेना, अपनी मर्ज़ी से कानून बनाना या बदलना, ये आम बात थी। कानून बनाने वाले, उसे लागू करने वाले तथा न्याय देने वाले सब राजा या सामन्त ही होते थे। इसलिए उन पर कोई रोक–टोक नहीं थी। राज्य चलाने का काम लोगों का नहीं, राजाओं का था, यानी राज्य लोकतांत्रिक नहीं थे। यही नहीं, राज्य बनाने का काम भी लोगों का नहीं, केवल राजाओं का था। राजा सेना के दम पर जितनी ज़मीन और लोगों पर हुकूमत जमा सकते थे, उससे राज्य बनते थे। इसमें राष्ट्र के लोगों की सोच, संस्कृति, ज़रूरतों और भावनाओं की कोई भूमिका नहीं थी। यानी राज्य तो थे पर वे राष्ट्रीय नहीं थे। इस कारण शासन के प्रति लोगों का भावनात्मक लगाव सीमित था।

इन परिस्थितियों में बदलाव लाने में सत्रहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी में हुई क्रान्तियों का महत्वपूर्ण योगदान है। आज दुनिया के अधिकांश देश लोकतांत्रिक तरीकों से शासित हैं, यानी सारे वयस्क लोग मिलकर अपना प्रतिनिधि चुनते हैं जो कानून बनाते हैं और शासन चलाते हैं। एक निश्चित समय के बाद फिर से चुनाव होता है और नए लोग चुनकर आते हैं। नागरिकों के अधिकार कानून के द्वारा संरक्षित होते हैं। यह बदलाव इंग्लैंड से शुरू हुआ जिसके बारे में हम आगे पढ़ेंगे।

8.1 इंग्लैंड राजा और संसद के बीच संघर्ष

विश्व के दीवार मानचित्र में इंग्लैंड और उसके पड़ोसी देशों को पहचानें। इन देशों के बारे में अगर आप कुछ जानते हैं तो एक–दूसरे को बताएँ।

सत्रहवीं सदी की शुरुआत में इंग्लैंड पर राजाओं का ही शासन था। उन दिनों इंग्लैंड में राजा की प्रजा से संवाद की एक व्यवस्था थी जिसे पार्लियामेंट कहते थे (आज हम पार्लियामेंट को हिन्दी में संसद कहते हैं)। जब कभी राजा को कर लगाने होते थे या कोई महत्वपूर्ण निर्णय लेना होता था, वे पार्लियामेंट को बुलाकर उसकी राय लेते थे। यह परम्परा बन गई थी कि बिना पार्लियामेंट की सहमति के कोई कर नहीं लगाया जा सकता था।

पार्लियामेंट दो सदनों में विभाजित था हाउस ऑफ लॉर्ड्स और हाउस ऑफ कॉमन्स। हाउस ऑफ लॉर्ड्स की सदस्यता गिरजाघर के उच्च पादरियों और कुछ वंशानुगत ज़मींदारों की थी। हाउस ऑफ कॉमन्स में चुने गए प्रतिनिधि होते थे जिन्हें गाँव व शहरों की सम्पत्ति वाले पुरुष मतदान द्वारा चुनते थे। महिलाओं, गरीब किसानों और मज़दूरों को मत देने का अधिकार नहीं था।

मध्यकालीन भारत में संसद जैसी कोई व्यवस्था नहीं थी। बादशाह और राजा अपनी मर्ज़ी से शासन चला सकते थे। वे अपने चहेतों और सलाहकारों से राय ज़रूर लेते थे लेकिन उनकी सलाह पर चलना उनके लिए अनिवार्य नहीं था। कर बढ़ाने या घटाने के निर्णय राजा अपनी समझ और सूझबूझ से करते थे। इसमें प्रजा की कोई कानूनी भूमिका नहीं थी।

क्या सत्रहवीं सदी के इंग्लैंड की संसद को आप लोकतांत्रिक मान सकते हैं? इस पर कारणों सहित चर्चा करें।

भारतीय राजा व बादशाह अपने चहेतों व मंत्रियों से राय–मशविरा करके निर्णय लेते थे। भारतीय और इंग्लैंड की व्यवस्था में क्या कोई अन्तर है?

सत्रहवीं सदी में इंग्लैंड के राजा और संसद के बीच का रिश्ता टूटने लगा। एक तरफ संसद राजकीय मामलों में अधिक भूमिका चाहती थी जबकि दूसरी ओर राजा संसद के प्रति जवाबदेही नहीं चाहता था। सन् 1603 में जेम्स प्रथम राजा बने। उनका मानना था कि राजा को उसकी शक्ति ईश्वर से मिलती है और वह केवल ईश्वर के प्रति उत्तरदायी हो सकता है। अतः संसद उसके काम पर सवाल नहीं उठा सकती। सन् 1625 में चार्ल्स प्रथम गद्दी पर आसीन हुआ। उसके और संसद के बीच मतभेद बढ़ने लगे। दोनों के बीच कर वसूलने के अधिकार को लेकर झगड़े शुरू हो गए। राजा ने संसद की अनुमति के बिना नया कर लगा दिया और ज़बरदस्ती व्यापारियों व भूस्वामियों से धन उधार लेना प्रारम्भ कर दिया। धन देने से इंकार करने वाले को जेल में डाल दिया जाता था। इस स्थिति के चलते संसद ने राजा को चेतावनी देने की कोशिश की। सन् 1628 में संसद ने राजा के सामने अधिकारों का एक ज्ञापन प्रस्तुत किया। उस में लिखा हुआ था कि

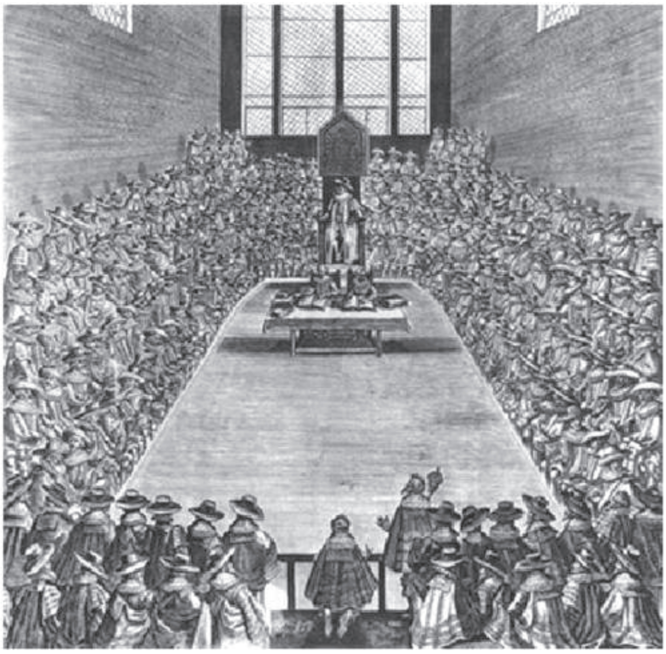

चित्र 8.2 : राजा जेम्स प्रथम के समय इंग्लैंड का पार्लियामेंट। सभा के बीच में ऊँचे आसन पर राजा बैठा हुआ है।

संसद विनम्रतापूर्वक निवेदन करती है कि

अब से किसी व्यक्ति से ज़बरदस्ती... ऋण न लिया जाए, तथा किसी प्रकार का कर... संसद की सम्मति के बिना न लगाया जाए। ...सिवाय कानूनी तरीकों से, किसी भी स्वतंत्र मनुष्य को जेल में नहीं डाला जाए या उसकी सम्पत्ति को ज़ब्त नहीं किया जाए।

(सन् 1628 के पिटीशन ऑफ राइट्स – अधिकारों का ज्ञापन – से कुछ पंक्तियाँ)

इसी संघर्ष के कारण चार्ल्स प्रथम ने 11 साल तक संसद की बैठक नहीं बुलाई। पर सन् 1640 में एक पड़ोसी देश के विरुद्ध युद्ध होने से राजा का खजाना खाली हो गया था। युद्ध के लिए नए कर लगाने थे जिसके लिए उसे संसद को बुलाना पड़ा। लेकिन संसद ने राजा और उसके मंत्रियों की तानाशाही पर नियंत्रण करने का फैसला किया और मंत्रियों तथा अधिकारियों को दण्ड सुना दिया। इसके साथ ही राजा के समर्थकों और संसद के बीच गृहयुद्ध शुरू हो गया जो पाँच वर्षों तक चला। इस गृहयुद्ध में ओलिवर क्रॉमवेल ने संसद का नेतृत्व किया और राजा के खिलाफ लोगों की एक सेना तैयार की। सन् 1649 में चार्ल्स पराजित हुआ और उसे संसद द्वारा मृत्युदण्ड दिया गया।

चार्ल्स की मृत्यु के बाद इंग्लैंड में गणतंत्र स्थापित किया गया जिसमें राजा के लिए कोई स्थान नहीं था। यह गणतंत्र केवल 11 वर्षों तक चला क्योंकि ओलिवर क्रॉमवेल खुद एक तानाशाह के रूप में काम करने लगा था। क्रॉमवेल के मरने के बाद संसद ने चार्ल्स प्रथम के बेटे चार्ल्स द्वितीय को राजा बनने के लिए आमंत्रित किया। चार्ल्स द्वितीय और उसके उत्तराधिकारी जेम्स द्वितीय ने फिर से निरंकुश शासन प्रणाली की ओर लौटने का प्रयास किया। संसद ने एक बार फिर राजा की बढ़ती तानाशाही को रोकने के लिए कोशिश शुरू की। सन् 1688–89 में संसद ने जेम्स द्वितीय की बेटी मेरी द्वितीय और उसके पति विलियम ऑफ ऑरेंज को इंग्लैंड की गद्दी सम्हालने के लिए न्योता दिया। साथ में संसद ने शासन व्यवस्था के बारे में कई शर्तें रखीं जिसे मेरी ने मान लिया, जैसे – कानून बनाना या रद्द करना संसद की सम्मति से ही हो, बिना संसद की सम्मति के कोई नया कर न लगे, न ही सेना का विस्तार हो, संसद सदस्यों के चुनाव में राजा हस्तक्षेप न करे तथा संसद में कहीं किसी बात के लिए किसी भी सदस्य को सजा न दी जाए, संसद की बैठकें नियमित रुप से हों। संसद की ऐसी शर्तों को मानकर मेरी द्वितीय इंग्लैंड की रानी बनी और विलियम राजा बना।

यह सब बदलाव बिना लड़ाई–झगड़े और खून बहाए हुआ इसलिए इस बदलाव को 'ग्लोरियस' या 'ब्लडलेस रेवोल्यूशन' (गौरवपूर्ण या रक्तहीन क्रान्ति) कहा गया। निरंकुश राज की जगह जो नई व्यवस्था बनी उसे संवैधानिक राजतंत्र (Constitutional Monarchy) कहते हैं। इस व्यवस्था में प्रजा को कई अधिकार दिए गए, जैसे– अभिव्यक्ति और संगठन की स्वतंत्रता, कानूनी प्रक्रिया के तहत ही गिरफ्तारी होना व सज़ा मिलना आदि। संवैधानिक राजतंत्र में किसी न किसी प्रकार से लोगों द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों की एक सभा होती है जो राजा के कामकाज की समीक्षा करती है और अन्य तरीकों से उसकी मनमानी पर रोक लगाती है। इसे हम लोकतंत्र की स्थापना की ओर एक चरण या पुरानी व नई व्यवस्थाओं के बीच एक समझौता मान सकते हैं।

सन् 1600 से सन् 1688 के बीच इंग्लैंड में संसद और राजा के बीच किन मुद्दों पर मतभेद हुए थे?

संसद सदस्यों के चुनाव में राजा हस्तक्षेप न करे – यह व्यवस्था क्यों बनाई गई होगी?

संसद में कुछ भी कहने का अधिकार (राजा के विरोध में भी) अगर न होता तो क्या होता?

क्या शासन केवल राजा की मर्जी से ही चलना चाहिए अथवा नहीं? इस पर कक्षा में चर्चा करें।

अपने भारत में लगभग उसी समय बादशाह अकबर और जहाँगीर का शासन था। अगर उस समय यहाँ भी इंग्लैंड की तरह संसद होती तो क्या स्थिति होती? चर्चा करें।

इंग्लैंड में लोकतंत्र के प्रयासों के दो महत्वपूर्ण पहलू थे। पहला, राजाओं के अधिकारों पर नियंत्रण और उनकी निरंकुशता की जगह चुने गए प्रतिनिधियों का शासन लाना। दूसरा पक्ष था, चुनाव की प्रक्रिया में सब लोगों की

भागीदारी। अठारहवीं सदी में धीरे–धीरे संसद के प्रति ज़िम्मेदार मंत्रिमण्डल की व्यवस्था बनी। उन्नीसवीं सदी के अन्त में वोट देने का अधिकार मज़दूरों को भी मिलने लगा। आगे चलकर बीसवीं सदी में महिलाओं को भी वोट देने का अधिकार मिला। इस तरह यह लोकतांत्रिक बदलाव पूरा होने में 250 वर्षों से भी अधिक समय लगा।

8.2 मध्यम वर्ग के लोग और उनके विचार

दिलचस्प सवाल केवल यह नहीं है कि लोकतंत्र को स्थापित होने में इतने साल क्यों लग गए? सवाल यह भी है कि इंग्लैंड में तथा बाद में यूरोप के अन्य देशों में ऐसी क्रान्तियाँ क्यों हुईं? इस संघर्ष में कौन लोग आगे आए तथा उन्हें इसकी प्रेरणा कहाँ से मिली?

इस संघर्ष में सबसे अहम भूमिका थी उसी नए मध्यम वर्ग की जिसकी हम चर्चा पिछले अध्यायों में कर चुके हैं। इंग्लैंड के इस मध्यम वर्ग में छोटे व बड़े व्यापारी थे जो देश–विदेश में व्यापार करके पैसे कमा रहे थे। इनके अलावा छोटे ज़मींदार भी थे जो अनाज आदि बेचकर मुनाफा कमाना चाहते थे। ये सब लोग राजाओं व सामन्तों की मनमानी से परेशान थे। वे ऐसा राज्य चाहते थे जो उनके व्यापारिक हितों की रक्षा करे और कम कर लगाए।

इनके अलावा कारीगर, किसान, मज़दूर आदि थे जो सामन्ती व्यवस्था से त्रस्त थे। वे न केवल राजा व सामन्तों की मनमानी खत्म करना चाहते थे बल्कि समाज में बुनियादी परिवर्तन भी लाना चाहते थे ताकि ऊँच–नीच का अन्तर मिट जाए। उनमें से कई लोग ऐसे थे जो गणतंत्र के पक्ष में थे और यह भी चाहते थे कि ज़मीन जैसे उत्पादक साधन पर सबका समान अधिकार हो और सब लोग मेहनत से अपनी आजीविका कमाएँ।

हम देख सकते हैं कि मध्यम वर्ग के विचारों तथा कारीगर व किसान आदि लोगों के विचारों में बहुत अन्तर था। चार्ल्स प्रथम को हराने में दोनों ने मिलकर प्रयास किया था। फिर भी 'ग्लोरियस रेवोल्यूशन' में गरीब तबकों को सत्ता से बाहर रखा गया।

सन् 1649 में प्रकाशित एक पर्चे में क्या दिखाया गया है, गौर कीजिए (चित्र 8.3)। इसमें लिखा है कि इंग्लैंड के लोग तब तक आज़ाद नहीं हो सकते जब तक गरीबों के पास ज़मीन न हो और उन्हें सामूहिक ज़मीन पर खेती करने का अधिकार न हो।

इंग्लैंड की नई अर्थव्यवस्था में व्यापार और उद्योग का महत्व बढ़ रहा था और इस कारण बदलाव–पसंद लोगों का महत्व भी बढ़ रहा था। राजा, सामन्त और बड़े भूस्वामी सत्रहवीं सदी में उतने ताकतवर नहीं रहे कि वे इन नए उभरते समूहों की आकांक्षाओं को रोक पाएँ।

चित्र 8.3 : इस चित्र में गरीब किसानों पर किस तरह के अत्याचार आप को दिख रहे हैं?

यूरोप का उभरता मध्यम वर्ग रेनासाँ, वैज्ञानिक क्रान्ति, धर्मसुधार व प्रबोधन आन्दोलनों के विचारों से बहुत प्रभावित था। इसी दौर में अनेक राजनैतिक विचारक हुए जिन्होंने निरंकुश राजशाही का विरोध किया और लोकतंत्र का समर्थन किया। इनमें प्रमुख थे इंग्लैंड के जॉन लॉक (जन्म सन् 1632, मृत्यु सन् 1704) तथा फ्रांस के जां जॉक रूसो। इनके विचारों की प्रेरणा से यूरोप और अमेरिका में लोकतंत्र के लिए आन्दोलन को बल मिला।

जॉन लॉक

लॉक विश्व के महान दार्शनिकों में गिने जाते हैं। उन्होंने निरंकुशता के विरोध में और लोकतंत्र के समर्थन में कई ग्रन्थ रचे। चार्ल्स और जेम्स द्वितीय की नीतियों के वे आलोचक थे। उन्हें उन दिनों स्वदेश छोड़कर हॉलैंड में रहना पड़ा। सन् 1688 में वे मेरी द्वितीय जो बाद में इंग्लैंड की रानी बनीं, के साथ स्वदेश लौटे। लॉक 'सामाजिक अनुबन्ध' (Social Contract) के सिद्धान्त को प्रतिपादित करने वालों में से थे। इस सिद्धान्त के अनुसार समाज के लोग मिलकर अपनी ज़रूरतों को पूरा करने तथा अपने अधिकारों की रक्षा के उद्देश्य से राज्य को स्थापित करते हैं। लोगों के हित और अधिकार इस कारण राज्य में सर्वोपरि हैं। राजा व मंत्रियों को लोगों से सत्ता मिलती है, इस कारण वे लोगों के प्रति उत्तरदायी हैं।

लॉक ने निरंकुशता से बचाव के लिए शासन के कार्यक्षेत्रों के विभाजन का सुझाव रखा। उनका सुझाव था कि शासन के तीन पक्ष – कानून बनाना, लागू करना तथा न्याय देना – इन्हें तीन स्वतंत्र क्षेत्रों में बाँटना चाहिए। उदाहरण के लिए, संसद कानून बनाए, राजा लागू करे और स्वतंत्र न्यायाधीश न्याय करें। इस तरह किसी एक के अत्यन्त शक्तिशाली और निरंकुश होने से बचा जा सकता है। इसी विचार को बाद में मॉन्तेस्क्यू (जन्म सन् 1689, मृत्यु सन् 1755) नामक फ्रेंच विचारक ने 'शक्ति विभाजन' (सेपरेशन ऑफ पावर्स) के सिद्धान्त के रूप में पेश किया।

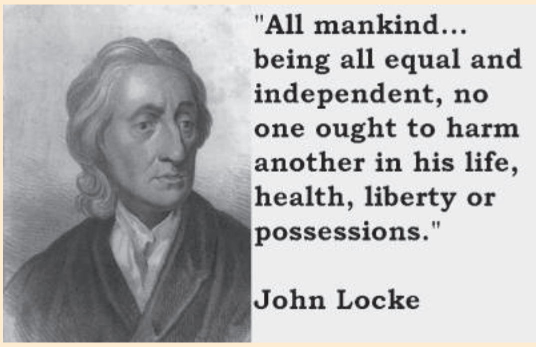

चित्र 8.4 : जॉन लॉक

"सभी मानव समान एवं स्वतंत्र हैं इसलिए किसी व्यक्ति को अन्य किसी व्यक्ति के जीवन, स्वास्थ्य, स्वतंत्रता और संपत्ति को हानि पहुँचाने का अधिकार नहीं है।"

जॉन लॉक के इस कथन का क्या आशय हो सकता है, कक्षा में चर्चा करें। इसे अपने घर में बोली जाने वाली भाषा में अनुवाद भी करें।

भारत के संविधान में भी राज्य की शक्तियों को विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच बाँटा गया है। क्या इससे हमें अपने देश में निरंकुशता से बचने में मदद मिली है?

जां जॉक रूसो (जन्म सन् 1712, मृत्यु सन् 1778)

रूसो ने अपने राजनैतिक विचार दो महत्वपूर्ण पुस्तकों में प्रकाशित किए, 'असमानता पर विमर्श' (सन् 1754) तथा 'सामाजिक अनुबन्ध' (सन् 1762)। रूसो का मानना था कि मनुष्य प्राकृतिक रुप से संयमी और नैतिक होता है और प्रकृति के साथ सामंजस्य में रहता है। प्रारम्भ में कोई निजी सम्पत्ति नहीं थी और ज़मीन और जंगल सबका होता था। सब लोग आवश्यकतानुसार सारे काम करते थे और अपने उत्पादन को मिलकर उपभोग करते थे। लोग समस्याओं का आपसी बातचीत से हल निकालते थे। लेकिन समय के साथ निजी सम्पत्ति, कार्य का विभाजन, असमानता और सभ्यता के विकास के साथ मनुष्य विकृत होता गया। धनी और ताकतवर लोग अपनी इच्छा बाकी लोगों पर थोपने लगे और उन्हें गुलामी में रखने लगे। मनुष्य के बीच असमानता को बनाए रखने के लिए लोगों के अधिकारों व स्वतंत्रता को नकारना ज़रूरी हो गया। रूसो का प्रसिद्ध कथन है, "मनुष्य स्वतंत्र जन्म लेता है, मगर सब तरफ वह जंजीरों से बन्धा हुआ है।" इसका हल यही हो सकता है कि सारे लोग मिलकर एक नया 'सामाजिक अनुबन्ध' (Social Contract) करें जिसके तहत वे अपने प्राकृतिक अधिकारों या इच्छाओं को प्राथमिकता न देकर 'सामुदायिक निश्चय' (General Will) को प्राथमिकता दें। यह निश्चय सब लोगों के साझे विचार–विमर्श और न्याय के सिद्धान्तों के आधार पर बनेगा। सामुदायिक निश्चय को प्राथमिकता देने पर कोई इन्सान किसी ताकतवर या धनी व्यक्ति की इच्छाओं से संचालित नहीं होगा। रूसो के ये सिद्धान्त आने वाले युग में लोकतांत्रिक आन्दोलनों के आधार बने।

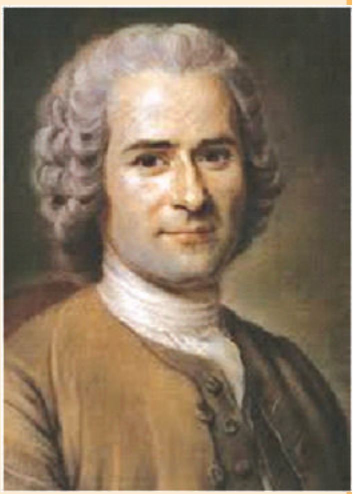

चित्र 8.5 : जां जॉक रूसो

History_8.pmd 129 1/11/2019, 3:27 PM

रूसो ने अपने समाज की बुराइयों व समस्याओं पर विचार करके उनसे निकलने के कुछ तरीके सुझाए। क्या आप भी कभी इन बातों पर सोचते हैं? अपने विचारों पर कक्षा में सबके साथ चर्चा करें।

क्या आज के सन्दर्भ में किसी देश, गाँव या शहर में 'सामुदायिक निश्चय' बन सकता है? अगर बनाना हो तो उसके लिए किस तरह की तैयारी की ज़रूरत होगी?

8.3 अमेरिका का स्वतंत्रता संग्राम (सन् 1775–1783)

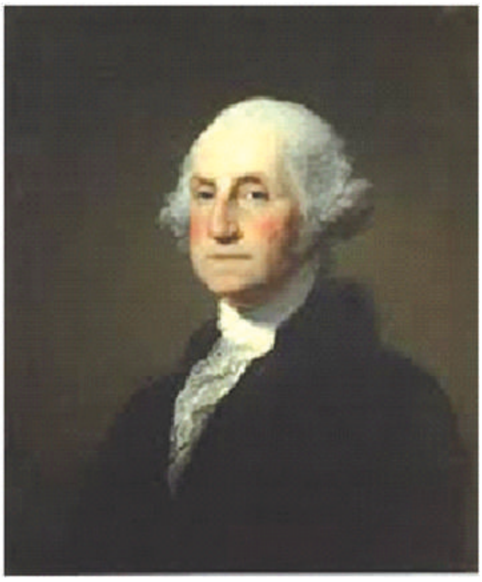

चित्र 8.6 : जॉर्ज वाशिंगटन

सत्रहवीं और अठारहवीं सदी में इंग्लैंड ने उत्तरी अमेरिका में अपने उपनिवेश स्थापित किए। ये 13 प्रान्तों में बँटे थे। इनमें इंग्लैंड से बहुत बड़ी संख्या में कृषक, कारीगर, व्यापारी आदि जाकर बसे। अठारहवीं सदी में इन अमेरिकी उपनिवेशों के लिए इंग्लैंड की संसद कानून बनाती थी परन्तु वहाँ के लोगों को इस संसद के लिए प्रतिनिधि चुनने का अधिकार नहीं था। संसद ने जो कर व शुल्क लगाए और कानून बनाए वे अमेरिकी उपनिवेश के निवासियों के हित में नहीं बल्कि इंग्लैंड के व्यापारियों व व्यवसायियों के हित में थे। अमेरिकी उपनिवेश के लोगों ने नारा लगाया–''बिना प्रतिनिधित्व के कोई कर नहीं'' (no taxation without representation)। सन् 1744 में सभी उपनिवेशों ने विरोध स्वरूप फिलाडेल्फिया में अपने प्रतिनिधियों की एक संयुक्त बैठक रखी जिसे कॉंग्रेस कहा गया। कॉंग्रेस ने इंग्लैंड के राजा जॉर्ज तृतीय से अनुरोध किया कि उपनिवेशों को अपने लिए कानून बनाने का अधिकार दिया जाए। राजा ने इसे बगावत माना और सन् 1775 में अमेरिका पर युद्ध की घोषणा कर दी।

अमेरिका में बसे लोगों ने इंग्लैंड से टक्कर लेने का फैसला किया। फिलाडेल्फिया में 13 उपनिवेशों के प्रतिनिधियों की तीसरी बैठक (कॉंग्रेस) हुई और 4 जुलाई सन् 1776 को उसने अमेरिका की स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। इस घोषणा के लेखक थॉमस जेफर्सन थे। हम भी यहाँ अमेरिकी स्वतंत्रता की उद्घोषणा के कुछ अंश पढ़ेंगे–

हम इन्हें स्वयंसिद्ध सत्य मानते हैं कि ईश्वर ने सारे मनुष्यों को समान बनाया है और उन्हें कुछ ऐसे अधिकार दिए हैं जिन्हें उनसे अलग नहीं किया जा सकता है, जैसे– जीने का, स्वतंत्रता का और अपनी खुशी की प्राप्ति के लिए प्रयास करने का अधिकार। ...हम यह भी मानते हैं कि इन अधिकारों की प्राप्ति के लिए मनुष्यों के बीच सरकार बनाई जाती हैं और इन सरकारों को उनकी सत्ता शासितों की स्वीकृति से प्राप्त होती है। ...जब कभी कोई सरकार इन उद्देश्यों को हानि पहुँचाती है तब यह उन लोगों का अधिकार बन जाता है कि वे उसे बदलें या खत्म कर दें और नई सरकार का गठन करें...

हम अमेरिका के संयुक्त राज्यों के प्रतिनिधि ...इन उपनिवेशों के रहने वाले अच्छे लोगों के नाम से और उनकी सत्ता के आधार पर यह घोषित करते हैं कि ये संयुक्त उपनिवेश स्वतंत्र व स्वशासी हैं।

सन् 1781 में अमेरिका ने फ्रांस की सैन्य मदद लेकर इंग्लैंड के खिलाफ युद्ध जीत लिया। जार्ज वाशिंगटन के नेतृत्व में अमेरिका ने युद्ध जीता था और उन्हें पहला राष्ट्रपति चुना गया। सन् 1781 में संयुक्त राज्य अमेरिका की राष्ट्रीय सरकार ने गणतांत्रिक संविधान ('गणतंत्र' जहाँ लोगों के द्वारा राष्ट्राध्यक्ष को चुना जाता है) का ऐलान किया। इसके निर्माताओं में से थामस जेफर्सन भी थे जिन पर लॉक और रूसो जैसे विचारकों का बहुत प्रभाव था। उनके प्रयासों से अमेरिका के संविधान में नागरिकों के अधिकार, संघीय शासन प्रणाली, शक्तियों के विभाजन (कार्यपालिका, विधायिका व न्यायपालिका के मध्य शक्ति विभाजन) आदि बातें सम्मिलित हुईं।

आपकी कक्षा में कितनी भाषाएँ बोलने वाले लोग हैं? हरेक भाषा में इस अँग्रेज़ी वाक्य का अनुवाद करें– "no taxation without representation."

अमेरिका के लोग स्वयं को इंग्लैंड राष्ट्र का हिस्सा क्यों नहीं महसूस कर पा रहे थे जबकि उनके पूर्वज इंग्लैंड से आए थे, उनकी भाषा भी अँग्रेज़ी ही थी और धर्म में भी समानता थी?

अमेरिकी स्वतंत्रता के घोषणा–पत्र में ऐसे कौन से विचार थे जो लॉक और रूसो के विचारों से मिलते थे?

क्या आप इस बात से सहमत हैं कि ईश्वर ने हरेक मनुष्य को जीवन, स्वतंत्रता और सुख प्राप्त करने का अधिकार दिया है'? चर्चा करें।

अमेरिका में उस समय महिलाओं को मताधिकार नहीं दिया गया था। उन दिनों अमेरिका के खेतों में काम करने के लिए अफ्रीका के लोगों को दास बनाकर लाया गया था। उन्हें भी मताधिकार नहीं दिया गया। महिलाओं और दासों को मताधिकार न देने के क्या कारण रहे होंगे? क्या आपको यह तर्कसंगत लगता है? अपने विचार बताएँ।

मिलकर एक नाटक तैयार करें – जिसमें दिखाएँ कि अमेरिका की स्वतंत्रता के घोषणा–पत्र के बाद इंग्लैंड के राजा और संसद ने क्या चर्चा की होगी और अमेरिका से युद्ध करने की तैयारियाँ कैसे की गई होंगी?

8.4 फ्रांसीसी क्रान्ति

इंग्लैंड की क्रान्ति और अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के बाद फ्रांस में सन् 1789–92 के बीच क्रान्ति हुई जिसे हम फ्रांसीसी क्रान्ति के नाम से जानते हैं। इसे विश्व को सर्वाधिक प्रभावित करने वाली घटनाओं में गिना जाता है।

सत्रहवीं सदी में फ्रांस में भी इंग्लैंड की तरह एक निरंकुश राजशाही स्थापित थी। पर वहाँ भी इंग्लैंड की तरह नए कर आदि लगाने के लिए राजा को अपनी प्रजा के प्रतिनिधियों से अनुमति लेने की प्रथा थी। इसके लिए एक सभा बुलाई जाती थी जिसे 'एस्टेट जेनरल' कहा जाता था। उस समय का फ्रांसीसी समाज तीन श्रेणियों या 'एस्टेट्स' में विभाजित था। पहला एस्टेट ईसाई चर्च के पादरियों का था। दूसरे एस्टेट में आभिजात्य वर्ग के भूस्वामी थे। तीसरे एस्टेट में बाकी सामान्य लोग थे जिनमें वकील, व्यापारी, कारीगर, किसान, मज़दूर आदि सम्मिलित थे। वैसे देखा जाए तो संख्या में पहले व दूसरे एस्टेट के लोग नगण्य थे (आबादी के कुल 2.5 प्रतिशत) जबकि अधिकांश लोग (97.5 प्रतिशत) तीसरे एस्टेट के ही थे। पहले और दूसरे एस्टेट के सदस्यों को कई कानूनी रियायतें मिली हुई थीं, जैसे – पहले एस्टेट के पादरी चर्च के लिए बाकी सब लोगों से 'टाईथ' नामक धार्मिक कर वसूलते थे। पहले दो एस्टेटों को राजा को कोई कर नहीं देना पड़ता था तथा उन्हें राजकीय काम के लिए बेगार नहीं करनी पड़ती थी। अधिकांश उच्च पादरी दूसरे एस्टेट के आभिजात्य परिवारों से ही थे जिस कारण पहले दो एस्टेट का रुख एक जैसा होता था।

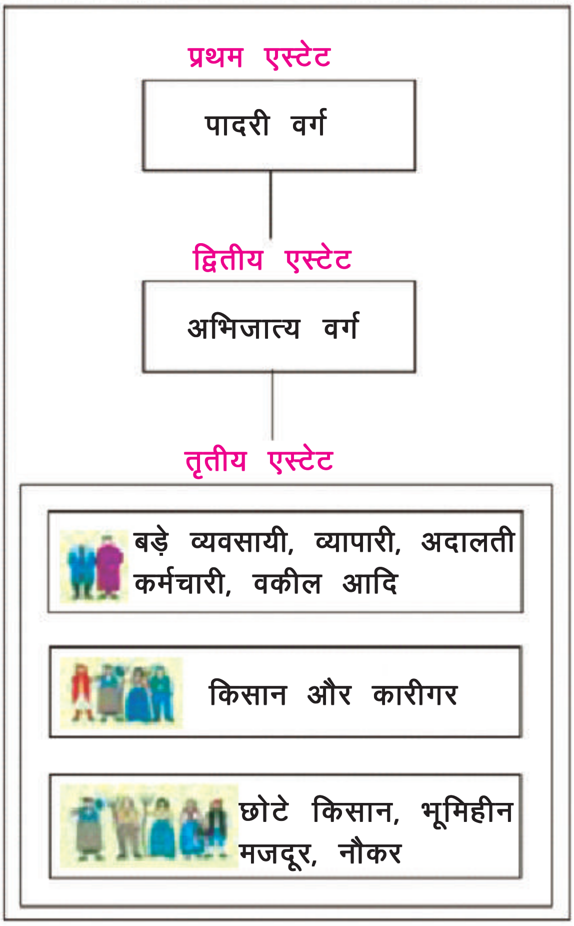

चित्र 8.7 : फ्रांस में एस्टेट व्यवस्था

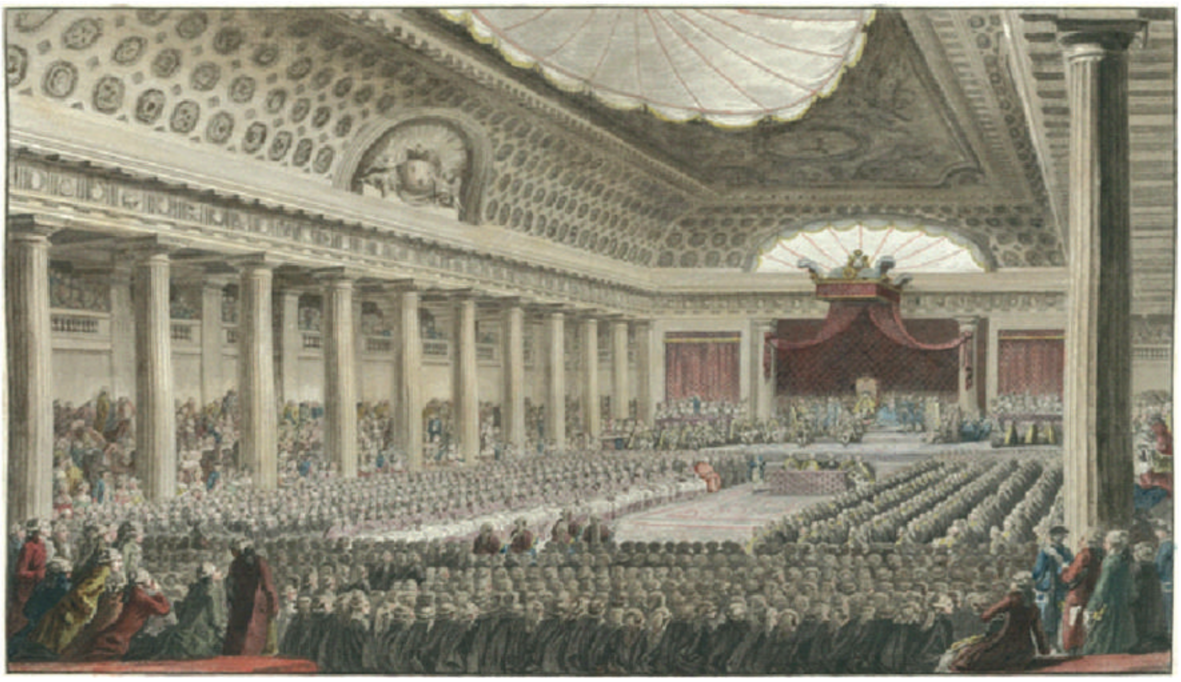

चित्र 8.8 : एस्टेट जेनरल की सभा का एक दृश्य मंच पर राजा सिंहासन पर बैठा है। उसके दाहिनी ओर चर्च के पादरी बैठे हैं और बाईं ओर आभिजात्य भूस्वामी। अन्त में उसकी ओर मुँह करते हुए खड़े हैं तीसरे एस्टेट के प्रतिनिधि। इसमें महिलाएँ अन्य दर्शकों के साथ बाजू की गैलरियों में बैठी हैं। इस चित्र की तुलना सत्रहवीं सदी के इंग्लैंड के संसद के चित्र 8.2 से करें।

जब राजा सलाह के लिए तीनों एस्टेटों को बुलाते थे तो हरेक एस्टेट को एक–एक मत का अधिकार था। इसका परिणाम यह था कि जो भी प्रस्ताव पहले दो एस्टेटों को स्वीकार्य होता था वही पारित हो सकता था। तीसरा एस्टेट जो 97 प्रतिशत आबादी का प्रतिनिधित्व करता था, वह बिना पहले दो एस्टेटों की अनुमति के कोई प्रस्ताव पारित नहीं कर सकता था। कानूनी रूप से करों का बोझ केवल तीसरे एस्टेट पर पड़ता था लेकिन इसका निर्णय पहले दो एस्टेट के हाथों में था।

फ्रांस की जनता अठारहवीं सदी के अन्त में निरंकुश राजा तथा कुलीनों व सामन्तों की मनमानी से त्रस्त थी। सामन्त किसानों से अत्यधिक लगान वसूलते थे, उनसे बेगारी करवाते थे और कई तरह की वसूली करते थे। राजा और उसके अधिकारी नए–नए कर लगाने की कोशिश करते थे और विभिन्न तरह के दैनिक उपयोग की चीज़ों पर कर लगाते थे। राजा अक्सर अपने अधिकारों का उपयोग करते हुए किसी उपयोग की वस्तु को बेचने का एकाधिकार अपने चहेतों को दे देता था। वे उस चीज की कीमत मनमाने ढँग से बढ़ाकर बेचते थे। फ्रांस का मध्यम वर्ग चाहता था कि फ्रांस में सामन्तशाही खत्म हो और ऐसी राजकीय व्यवस्था हो जो फ्रांस के व्यापार और उद्योगों के उनके हितों में कानून बनाए। वे लोग काफी हद तक लॉक, रूसो, दिदेरो जैसे विचारकों के लोकतांत्रिक सिद्धान्तों से प्रभावित थे। इस बीच अमेरिकी क्रान्ति हुई जिसमें फ्रांस के सैनिकों ने भाग लिया और इस कारण फ्रांस में अमेरिकी क्रान्तिकारियों के विचार फैले।

सन् 1774 में जब लूई सोलहवाँ फ्रांस की गद्दी पर बैठा तब उसे वित्तीय संकट का सामना करना पड़ा। फ्रांस द्वारा लड़े जा रहे युद्धों के कारण वित्तीय संकट उत्पन्न हो गया था। इससे निपटने के सारे उपाय असफल रहे तो राजा लूई सोलहवाँ के पास लोगों पर लगाए जाने वाले करों में वृद्धि करने के अलावा कोई और विकल्प नहीं बचा।

लूई सोलहवें ने 5 मई सन् 1789 को नए करों के प्रस्ताव के लिए तीनों एस्टेट की सभा–एस्टेट जेनरल की बैठक बुलाई। पहले और दूसरे एस्टेट ने इस बैठक में 300–300 प्रतिनिधि भेजे। तीसरे एस्टेट से 600 प्रतिनिधि आए जो समृद्ध एवं शिक्षित मध्यम वर्ग के थे। किसानों, औरतों और कारीगरों का सभा में प्रतिनिधित्व नहीं था। फिर भी गाँव–गाँव में सभाएँ हुईं और लगभग 40,000 शिकायत–पत्रों में कारीगरों, महिलाओं, किसानों ने अपनी समस्याएँ

प्रतिनिधियों के साथ भेजीं। एस्टेट जेनरल के नियमों के अनुसार प्रत्येक एस्टेट को केवल एक मत देने का अधिकार था। परन्तु तीसरे एस्टेट के प्रतिनिधियों ने माँग की कि इस बार पूरी सभा द्वारा मतदान कराया जाना चाहिए जिसमें प्रत्येक सदस्य को एक–एक मत का अधिकार होगा। यह एक लोकतांत्रिक सिद्धान्त था जिसे रूसो ने अपनी पुस्तक द *सोशल कॉन्ट्रैक्ट* (*The Social Contract*) में प्रस्तुत किया था। राजा ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। ऐसे में तीसरे एस्टेट के प्रतिनिधि विरोध जताते हुए सभा से बाहर चले गए।

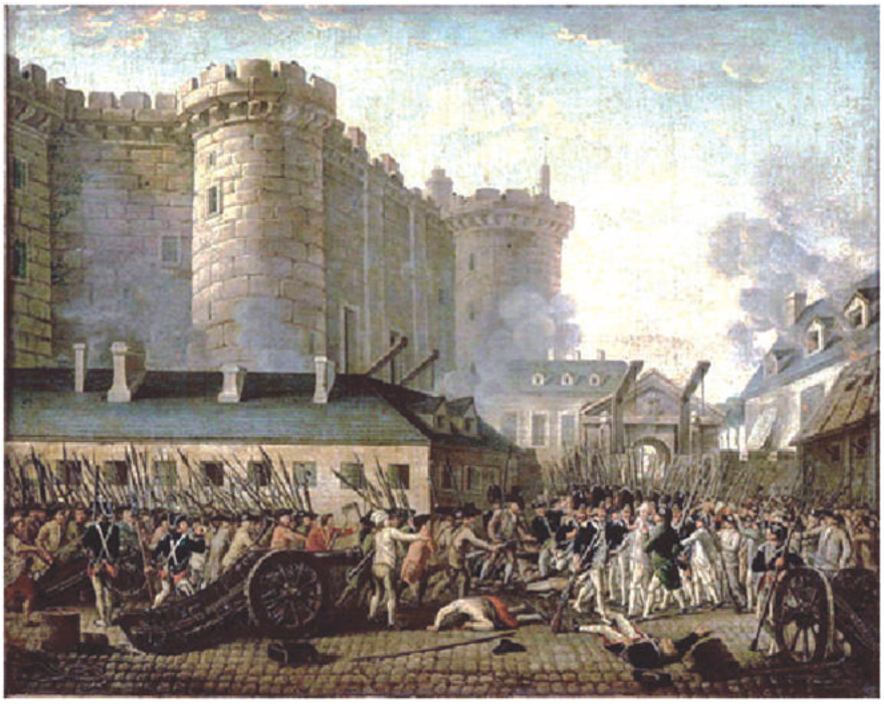

चित्र 8.9 : सन् 1789 में पेरिस की जनता द्वारा बास्ती किले पर हमला। इस किले पर जीत से शुरू हुई फ्रांसीसी क्रान्ति। क्या आप इसमें लोगों की सेना और राजकीय सैनिकों में अन्तर कर पा रहे हैं?

तीसरे एस्टेट के प्रतिनिधि खुद को सम्पूर्ण फ्रांसीसी राष्ट्र का प्रवक्ता मानते थे और उन्होंने अपने आप को नेशनल या राष्ट्रीय असेंबली घोषित किया। 20 जून सन् 1789 को ये प्रतिनिधि वर्साय शहर के 'इनडोर टेनिस कोर्ट' में जमा हुए और शपथ ली कि जब तक राजा की शक्तियों को कम करने वाला संविधान तैयार नहीं किया जाएगा तब तक असेंबली भंग नहीं होगी। जुलाई से यह राष्ट्रीय असेंबली संविधान असेंबली कहलाई क्योंकि वह फ्रांस के लिए नया लोकतांत्रिक संविधान बनाने में जुट गई। राजा भी फ्रांस में संवैधानिक राजतंत्र स्थापित करने के लिए तैयार हो गए लेकिन आभिजात्य वर्ग ने सामन्ती जमींदारी प्रथा को खत्म करने का विरोध किया। इसके चलते एसेम्बली में गतिरोध बना रहा।

उन्हीं दिनों खाने–पीने की चीज़ें लोगों की पहुँच से बाहर होने लगीं। ठण्ड के कारण फसल खराब हो गई थी और पाव–रोटी की कीमतों में भारी बढ़ोतरी हो गई। एक दिन पेरिस नगर में गुस्साई औरतों की भीड़ ने दुकानों पर धावा बोल दिया। लोगों को नियंत्रित करने के लिए राजा ने सेना को आदेश दे दिया। इससे क्रोधित भीड़ ने 14 जुलाई सन् 1789 को बास्ती किले की जेल पर हमला बोल दिया जो राजशाही का प्रतीक थी। वहाँ का कमांडर मारा गया और कैदियों को आज़ाद कर दिया गया। इस घटना से प्रेरणा लेकर फ्रांस के बहुत से शहरों में जनता ने विद्रोह कर दिया और सत्ता को अपने हाथों ले लिया। गाँवों में किसानों ने सामन्तों के खिलाफ बगावत कर दी। यह अफवाह फैल गई कि सामन्त किसानों व फसलों को तबाह करने के लिए अपनी सेना भेज रहे हैं। भय के मारे किसानों ने कुदाल और हँसिए लेकर सामन्तों के महलों पर आक्रमण कर दिया। विद्रोही किसानों ने ज़मींदारों के अन्न भण्डारों को लूट लिया और लगान सम्बन्धी दस्तावेजों को जलाकर राख कर दिया। कुलीन परिवार बड़ी संख्या में अपनी ज़मींदारी छोड़कर भाग गए। उनमें से अनेक ने पड़ोसी देशों में जाकर शरण ली।

किसान विद्रोह की तीव्रता को देखते हुए 4 से 11 अगस्त सन् 1789 के बीच संविधान असेंबली ने करों, कर्त्तव्यों और बन्धनों वाली सामन्ती व्यवस्था को जड़ से खत्म करने का आदेश पारित किया। इनमें से कई सामन्ती अधिकारों तथा चर्च द्वारा लिए जाने वाले करों को बिना किसी मुआवज़े के खत्म किया गया। कुछ महीने बाद चर्च की जमीन को सरकार ने अधिग्रहण करके नीलाम कर दिया। लेकिन किसानों को उनके द्वारा जोती जा रही जमीन

History_8.pmd 133 1/11/2019, 3:27 PM

के लिए सामन्ती जमींदारों को मुआवजे के रूप में भुगतान करने की बात कही गई। इससे किसान निराश हुए और जमींदारों के विरोध में उन्होंने अपना आंदोलन तीव्र कर दिया। इसी के साथ नए संविधान बनाने की प्रक्रिया शुरू कर दी गई। नागरिकों के अधिकारों की घोषणा इसका पहला कदम था। 26 अगस्त सन् 1789 को नेशनल असेंबली ने पुरुष एवं नागरिक अधिकार घोषणा–पत्र पारित किया। आइए देखें इसमें क्या था

पुरुष एवं नागरिक अधिकार घोषणा–पत्र

अहरणीय अधिकार वे अधिकार जिन्हें कोई भी छीन नहीं सकता।

अनुल्लंघनीय जिसे अमान्य नहीं किया जा सके।

1. पुरुष स्वतंत्र पैदा होते हैं, स्वतंत्र हैं और उनके अधिकार समान होते हैं।
2. हरेक राजनैतिक व्यवस्था का लक्ष्य पुरुष के नैसर्गिक एवं अहरणीय अधिकारों की रक्षा है। ये अधिकार हैं– स्वतंत्रता, सम्पत्ति, सुरक्षा एवं शोषण के प्रतिरोध का अधिकार।
3. समग्र सम्प्रभुता (राज करने का अधिकार) का स्रोत राष्ट्र (फ्रांस के लोगों) में निहित है। कोई भी समूह या व्यक्ति जनता की स्वीकृति के बिना अधिकार का प्रयोग नहीं करेगा।
4. स्वतंत्रता का आशय ऐसे काम करने की शक्ति से है जो औरों के लिए नुकसानदेह न हो।
5. कानून के पास केवल समाज के लिए हानिकारक कृत्य पर पाबन्दी लगाने का अधिकार है।
6. कानून सामुदायिक निश्चय की अभिव्यक्ति है। सभी नागरिकों को व्यक्तिगत रूप से या अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से इसके निर्माण में भाग लेने का अधिकार है। कानून की नज़र में सभी नागरिक समान हैं।
7. कानून–सम्मत प्रक्रिया के बिना किसी भी व्यक्ति को न तो दोषी ठहराया जा सकता है और न ही गिरफ्तार अथवा कैद किया जा सकता है।
8. प्रत्येक नागरिक बोलने, लिखने और छापने के लिए आज़ाद है। लेकिन ऐसी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करने पर कानून द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के तहत उस पर कार्यवाही की जा सकती है।
9. सेना तथा प्रशासन के खर्चे चलाने के लिए एक सामान्य कर लगाना अपरिहार्य है। सभी नागरिकों पर उनकी आय के अनुसार समान रूप से कर लगाया जाना चाहिए।
10. चूँकि सम्पत्ति का अधिकार एक पावन एवं अनुल्लंघनीय अधिकार है, अतः किसी भी व्यक्ति को इससे वंचित नहीं किया जा सकता है। परन्तु विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के तहत सार्वजनिक आवश्यकता के लिए सम्पत्ति का अधिग्रहण किया जा सकेगा। ऐसे मामले में न्यायसंगत अग्रिम मुआवज़ा ज़रूर दिया जाना चाहिए।

इसमें पुरुषों के लिए किस–किस तरह की स्वतंत्रता की बात की गई है?
किसी को लोगों पर शासन करने का अधिकार कौन दे सकता है?
कानून किन बातों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है?
कानून बनाने की प्रक्रिया क्या होगी?
किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता उससे किन परिस्थितियों में और किन तरीकों से छीनी जा सकती है?
फ्रांस में पहले कर के सम्बन्ध में क्या नियम थे और इस घोषणा–पत्र में क्या नया प्रावधान किया गया?

हम इस दस्तावेज़ के शीर्षक में देख सकते हैं कि यहाँ केवल पुरुषों की बात की गई है। उन्नीसवीं सदी तक लोकतांत्रिक चिन्तकों तथा आन्दोलनों में पुरुषों की स्वतंत्रता की ही बात की गई। वे मानते थे कि महिलाओं का कार्यक्षेत्र घर के अन्दर है और उन्हें सार्वजनिक जीवन में प्रवेश नहीं करना चाहिए। इस कारण सार्वजनिक क्षेत्र के अधिकार को केवल पुरुषों के लिए रखा गया। इसी धारणा के चलते फ्रांसीसी क्रान्ति में भी महिलाओं को मताधिकार नहीं दिया गया और उन्हें 'पुरुष और नागरिक अधिकारों' के दायरे के बाहर रखा गया। इस विचारधारा का विरोध सन् 1791 में ही शुरू हो गया था जब कई महिलाओं ने इस बात का विरोध किया। उन्होंने महिलाओं व नागरिकों के अधिकार नाम का एक घोषणा–पत्र प्रस्तुत किया लेकिन राष्ट्रीय असेंबली ने इसे अस्वीकार कर दिया। तब से महिलाओं के लगातार संघर्ष के कारण बीसवीं सदी की शुरुआत में महिलाओं को मताधिकार जैसे नागरिक अधिकार मिल सके हैं।

सन् 1791 का नया संविधान

इसके तहत फ्रांस के राजा की शक्तियों को सीमित किया गया। राजा की केन्द्रीकृत शक्तियों को विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका में विभाजित किया गया। इस प्रकार फ्रांस में संवैधानिक राजशाही की नींव पड़ी। इस संविधान में चर्च के पादरियों को नागरिकों द्वारा चुने जाने की बात कही गई। पहले इनकी नियुक्ति पोप द्वारा होती थी। नए संविधान से असहमत होते हुए भी राजा ने विवश होकर सितंबर सन् 1791 में इसे अपनी स्वीकृति दे दी।

इस संविधान में कहा गया कि सारी सत्ता का स्रोत नागरिक ही होंगे। लेकिन नागरिक कौन होंगे?

फ्रांस के सभी निवासियों को फ्रांस का नागरिक माना गया परन्तु मत का अधिकार सभी के पास नहीं था। वे निष्क्रिय और सक्रिय नागरिक, दो श्रेणियों में विभाजित थे। सक्रिय नागरिकों को ही मताधिकार प्राप्त थे। ये थे 25 वर्ष से अधिक उम्र वाले पुरुष, जो कम–से–कम तीन दिन की मज़दूरी के बराबर प्रतिवर्ष कर चुकाते थे।

निष्क्रिय नागरिकों को नागरिक अधिकार तो प्राप्त थे मगर मताधिकार प्राप्त नहीं थे। ये ऐसे गरीब थे जो न्यूनतम कर भी अदा करने की स्थिति में नहीं थे या फिर महिलाएँ व बच्चे थे। लगभग 30 लाख पुरुष, सभी महिलाओं और 25 वर्ष से कम उम्र वाले व्यक्तियों को मताधिकार प्राप्त नहीं था।

इस तरह देश के अधिकांश लोगों को मताधिकार न दिए जाने को लेकर व्यापक असंतोष था। उधर राजा और आभिजात्य वर्ग के लोग भी इस संविधान को असफल बनाने के प्रयास में लग गए। वे दूसरे देशों के राजाओं से अपनी ही जनता के विरुद्ध मदद मांगने लगे।

फ्रांस की क्रान्ति में महिलाओं और पुरुषों दोनों ने ही हिस्सा लिया। फिर क्यों महिलाओं को पुरुषों के बराबर अधिकार नहीं दिए गए?

अगर आभिजात्य वर्ग और गरीब जनता दोंनों को सन् 1791 का संविधान स्वीकार नहीं था तो वह किसे स्वीकार्य रहा होगा?

सन् 1792–1794 के दौरान

सन् 1791 के संविधान से बहुसंख्यक फ्रांसीसी खुश नहीं थे क्योंकि उसमें केवल सम्पत्तिवालों को सक्रिय नागरिक माना गया था। उस समय लोग राजनीतिक क्लबों में एकत्र होकर विभिन्न मुद्दों पर चर्चा करते थे। ये क्लब आज की राजनैतिक पार्टियों के प्रारम्भिक रूप थे। इनमें से जैकोबिन क्लब सबसे लोकप्रिय था। इस क्लब के सदस्य समाज के कम समृद्ध तबकों से आते थे। इनमें छोटे दुकानदार, कारीगर, नौकर और दिहाड़ी मज़दूर शामिल थे। इनका नेता मैक्समिलियन रोबेस्प्येर था।

चित्र 8.10 : रोबेस्प्येर

History_8.pmd 135 1/11/2019, 3:27 PM

सन् 1792 में पड़ोसी देशों ने राजा लूई सोलहवें के समर्थन में फ्रांस पर हमला बोल दिया। इससे क्रुद्ध होकर तथा महंगाई एवं अभाव से नाराज़ पेरिस–वासियों ने एक विशाल हिंसक विद्रोह शुरू कर दिया। 10 अगस्त सन् 1792 की सुबह उन्होंने राजसी महल पर धावा बोल दिया। राजा के रक्षक मारे गए और राजा को बन्दी बनाकर जेल में डाल दिया गया। नए चुनाव कराए गए। इस चुनाव में 21 वर्ष से अधिक उम्र वाले सभी पुरुष, चाहे उनके पास सम्पत्ति हो या नहीं, को मताधिकार दिया गया लेकिन महिलाओं को अभी भी वंचित रखा गया। नवनिर्मित असेंबली को कन्वेंशन का नाम दिया गया जिसने 21 सितम्बर सन् 1792 को राजतंत्र का अन्त करने की घोषणा कर दी। फ्रांस को गणतंत्र घोषित किया गया (गणतंत्र का अर्थ है जहाँ सरकार के प्रमुख का चुनाव जनता करती है)। लूई सोलहवाँ और बाद में उसकी पत्नी मेरी को देशद्रोह के अपराध में मौत की सजा सुना दी गई।

फ्रांस की गरीब जनता जिन्हें ''सां कुलात'' कहा जाता था अब राजनैतिक रूप से सक्रिय हो गई। वे लोग आभिजात्य वर्ग और मध्यम वर्ग के दबाव से मुक्त होकर मांग करने लगे कि सब लोगों के बीच राजनैतिक और आर्थिक समानता हो तथा निजी संपत्ति और मुनाफे की अधिकतम सीमा हो। उन्होंने सरकार पर दबाव डाला कि गरीबों के हित में सरकार कीमतों पर नियंत्रण करे। वे चाहते थे कि चुने गए जन–प्रतिनिधि लोगों के प्रति उत्तरदायी हों और अगर लोग चाहें तो उन्हें हटा पाएँ। साथ में वे चाहते थे कि सारा राजकीय काम प्रतिनिधियों पर न छोड़ा जाए और नागरिक राजकाज चलाने में सक्रिय भूमिका निभाएँ। सन् 1792 से 1794 तक ''सां कुलात'' का प्रभाव चरम पर था। इसी दौर में वे भारी मात्रा में सेना में भर्ती हुए। उन्होंने क्रांति की रक्षा के लिए पड़ोसी देशों के साथ लड़ाईयाँ लड़ीं और फ्रांस को विजयी बनाया।

सन् 1793 में कन्वेंशन ने निर्णय लिया कि किसान को अपनी जमीन पर पूरा अधिकार पाने के लिए सामन्तों को किसी प्रकार का मुआवजा देने की जरूरत नहीं है। इस बीच दूसरे देशों में शरण लिए जमींदारों की जमीन को छोटे टुकडों में बांटकर छोटे किसानों को बेच दिया गया। इस प्रकार अधिकांश छोटे और मध्यम किसानों को जमीन और उस पर मालिकाना हक मिला। सन् 1794 में गरीबों के लिए सामाजिक सुरक्षा, वृद्धों और निशक्तों को पेंशन, निराश्रित माताओं व विधवाओं को बच्चे पालने के लिए भत्ता, बीमारी में निःशुल्क इलाज आदि की व्यवस्था की गई।

सन् 1793 से 1794 तक ''कमिटी ऑफ पब्लिक सेफ्टी'' को शासन चलाने का ज़िम्मा दिया गया जिसके अध्यक्ष रोबेस्प्येर था। इस काल को 'आतंक का युग' कहा जाता है। जैकोबिन क्लब के नेता रोबेस्प्येर ने सख्ती से नियंत्रण एवं दण्ड की नीति अपनाई। उसने गणतंत्र के अनेक शत्रुओं– कुलीन एवं पादरी वर्ग एवं अन्य असहमति रखने वाले सदस्यों– को गिरफ्तार कर मृत्युदण्ड दिया।

रोबेस्प्येर ने गरीबों की आजीविका और ज़रूरतों को ध्यान में रखते हुए मज़दूरी और ब्रेड, आटा आदि की कीमतें निर्धारित कीं और उसे न मानने वालों को कठोर दण्ड दिया।

रोबेस्प्येर ने अपनी नीतियों को इतनी सख्ती से लागू किया कि उसके समर्थक भी उससे परेशान हो गए। अन्ततः जुलाई सन् 1794 में न्यायालय ने उसको मौत की सजा दे दी। रोबेस्प्येर की सरकार के पतन के बाद सत्ता धनी वर्ग के पास आ गई। उन्होंने गरीब वर्ग के पुरुषों का मताधिकार फिर से समाप्त कर दिया।

राजा लूई सोलहवाँ और उसकी पत्नी मेरी को मौत के घाट क्यों उतारा गया?

यूरोप के राजाओं के खिलाफ फ्रांस का अभियान और पराजय

क्रान्ति के बाद पड़ोसी राज्य फ्रांस के राजपरिवार की मदद करने की कोशिश में लग गए थे। इस खतरे को देखते हुए सन् 1792 से ही फ्रांस की क्रान्तिकारी सरकार ने यह ऐलान किया था कि वह पूरे यूरोप से राजशाही को समाप्त करने और लोकतांत्रिक राष्ट्रों की स्थापना में मदद करेगी। फ्रांस की सेना ने पूरे यूरोप में विजयी अभियान शुरू कर दिया था और हर देश में वहाँ की जनता ने उसका स्वागत किया था। सन् 1799 में नेपोलियन नाम के एक महत्वाकांक्षी सेनापति ने फ्रांस की सत्ता अपने हाथ में ली और सन् 1804 में अपने आप को सम्राट घोषित किया। वह एक ताकतवर शासक के रूप में सामने आया। उसने यूरोप के कई राज्यों से युद्ध किया और उनके इलाकों को अपने साम्राज्य में मिला लिया। इससे यूरोप के लोगों का फ्रांस से मोहभंग हो गया। नेपोलियन को हराने के लिए इंग्लैंड के नेतृत्व में

पुराने राजघरानों का एक गठबन्धन बना जो सन् 1815 में नेपोलियन को हराने में सफल हुआ। इस गठबन्धन ने यूरोप के देशों में पुरानी सामन्ती व्यवस्था को पुनः कायम किया। अब पुराने राजघराने और भूस्वामी फिर से शासन करने लगे और हर तरह के लोकतांत्रिक विचार को दबाने का प्रयास करने लगे। इस तरह के संघर्षों का दौर चलता रहा और अन्ततः सन् 1871 में फ्रांस में गणतंत्र स्थापित हो सका।

8.5 यूरोप में नई चेतना और राष्ट्रवाद की लहर

फ्रांसीसी क्रान्ति (सन् 1789–1804) के बाद पूरे विश्व में एक नई चेतना फैली जिसे हम लोकतांत्रिक राष्ट्रवादी चेतना कह सकते हैं। इसके पीछे यह मान्यता थी कि नागरिक मिलकर राष्ट्र बनाते हैं, अतः राष्ट्र की इच्छानुसार राज्य चले। ऐसे राज्यों को राष्ट्र–राज्य कहा जाता है। यूरोप में मध्यम वर्ग के युवा क्रान्तिकारी विचारों को फैलाने में लग गए थे। उन्होंने गुप्त संगठन बनाकर अपनी कोशिशें जारी रखीं क्योंकि उनकी सरकार इन विचारों के खिलाफ थीं। उन दिनों इटली (जहाँ इतालवी भाषा बोली जाती थी) और जर्मनी (जहाँ जर्मन भाषा बोली जाती थी) कई छोटे–छोटे राज्यों में बँटे हुए थे। दूसरी ओर ऑस्ट्रिया, रूस और ओटोमान जैसे विशाल साम्राज्यों के अन्तर्गत आने वाले कई लोग अपने छोटे राष्ट्र–राज्य बनाना चाहते थे, जैसे– ग्रीस और पोलैंड। इन क्षेत्रों में जब राष्ट्रवादी भावना जगी तो वहाँ के युवा आन्दोलनकारी यह चाहने लगे कि उनके राष्ट्र का एकीकरण हो (जैसे इटली और जर्मनी में) या उनका अलग राज्य बने।

चित्र 8.11 : मेत्सिनी द्वारा सन् 1833 में यंग यूरोप नामक क्रान्तिकारी राष्ट्रवादी संगठन की स्थापना

लोगों में इन राष्ट्रवादी भावनाओं की लोकप्रियता को देखते हुए शासकों को यह स्पष्ट हो चला कि राजनैतिक बदलाव से बचा नहीं जा सकता है। उन्होंने यह प्रयास शुरू कर दिया कि बदलाव हो लेकिन उस पर आभिजात्य वर्ग का नियंत्रण बना रहे। उन्होंने अब राष्ट्र निर्माण का नेतृत्व अपने हाथों में लेने का निश्चय किया। वे राष्ट्रवाद को लोकतंत्र से अलग करना चाहते थे और उसे भाषा, संस्कृति और धर्म से जोड़ना चाहते थे। वे राष्ट्रवाद का उपयोग राज्य के सशक्तीकरण के लिए करना चाहते थे। कुछ सालों में कई लड़ाइयों और अभियानों के चलते यूरोप का नक्शा बदलने लगा और पुराने छोटे–बड़े राज्यों की जगह इटली, जर्मनी, ग्रीस जैसे नए राष्ट्र–राज्य बन गए। इनमें ज्युसेपे मेत्सिनी, ज्युसेपे गैरीबॉल्डी, ऑटो वॉन बिस्मार्क, कावूर, कैसर विलियम प्रथम, विक्टर इमानुएल द्वितीय आदि की भूमिका महत्वपूर्ण थी। इनके प्रयासों से इटली और जर्मनी संगठित राज्य के रूप में स्थापित हुए। इस नए जर्मन राज्य के सम्राट कैसर विलियम प्रथम और इटली के राजा विक्टर इमानुएल द्वितीय बने। हम इन लोगों के प्रयासों के बारे में विस्तार से जानने की कोशिश कर सकते हैं। पर अब हम एशिया में राष्ट्रवादी विचारों के फैलने की कुछ झलक देखेंगे।

8.6 एशिया में राष्ट्रवाद

8.6.1 जापान

आमतौर पर यह माना जाता है कि जापान पहला एशियाई देश है जहाँ राष्ट्र–राज्य स्थापित हुआ। रोचक बात यह है कि जर्मनी की तरह यहाँ भी यह काम राजा के हाथों से हुआ।

जापान में सम्राट का शासन था लेकिन बारहवीं सदी के बाद असली सत्ता 'शोगुन' कहलाने वाले सेनापतियों के हाथ में आ गई थी। सन् 1603 से 1867 के समय में तोकुगावा परिवार के लोग शोगुन पद पर आए। जापान उस समय 250 सामन्ती प्रदेशों में बँटा था जिन पर सामन्त शासन करते थे। सम्राट नाममात्र के शासक थे।

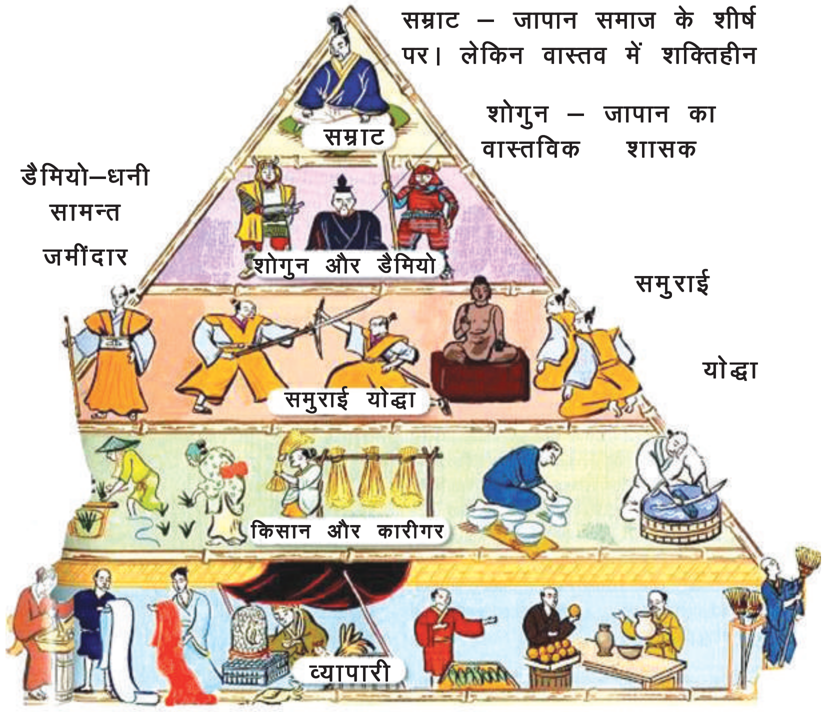

चित्र 8.12 : जापानी समाज का ढांचा

सामन्त किलों में रहते थे और उनके पास युद्ध लड़ने के लिए समुराई नामक योद्धा होते थे। इन्हें गुज़ारे के लिए सामन्त की ओर से चावल मिलता था। उन्हें कई कानूनी विशेषाधिकार भी प्राप्त थे।

किसान आसपास के गाँवों में सामन्त की ज़मीन जोतते थे और उपज का बहुत बड़ा हिस्सा उसे लगान के रूप में देते थे। वे बिना अनुमति अपने खेत छोड़कर कहीं जा नहीं सकते थे। उन्हें उत्पादन का लगभग 80 प्रतिशत लगान के रूप में देना पड़ता था और ऊपर से राजकीय कार्यों के लिए बेगारी भी करनी पड़ती थी। अधिकांश किसान व्यापारियों से उधार लेकर गुज़ारा करते थे और सूदखोर उनकी ज़मीन पर अधिकार जमाने लगे थे। उन्नीसवीं सदी में जापान में किसानों के विद्रोह भी होने लगे और सामन्ती राज्य की नींव हिलने लगी।

उन दिनों एक और महत्वपूर्ण वर्ग था व्यापारियों का जो धनी था और कई सामन्त और यहाँ तक कि शोगुन भी ज़रूरत पड़ने पर उनसे धन उधार लेते थे। लेकिन समाज में उनकी हैसियत कम थी।

दिए गए चित्र की तुलना फ्रांस के चित्र 8.7 से करें और बताएँ कि उनमें क्या समानताएँ और अन्तर हैं।

समुराई वर्ग में से कई लोग कुशल प्रशासक और बुद्धिजीवी बने। कई समुराई तो यूरोपीय व्यापारियों की संगत में आकर यूरोपीय भाषा और विज्ञान आदि सीखने लगे। यही वह तबका था जिसने जापान में बदलाव का बीड़ा उठाया।

शोगुनों को हटा कर सम्राट मेईजी की पुनःस्थापना

अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में चीन और भारत में पश्चिमी देशों का आधिपत्य स्थापित हो रहा था। अपने देश जापान को इस अंजाम से बचाने के लिए शोगुनों ने सन् 1824 में यह फैसला लिया कि वे किसी पश्चिमी देश से व्यापार नहीं करेंगे और कोशिश करेंगे कि वे उनके सम्पर्क में न आएँ। लेकिन यह बहुत देर तक नहीं चल सका। सन् 1853 में अमेरिका ने अपने नौसेना प्रमुख कोमोडोर पैरी को जापान सरकार से एक समझौता करने के लिए भेजा। मामूली युद्ध के बाद जापान को अमेरिका के साथ एक समझौता करना पड़ा।

पैरी के आने से जापान के लोगों का शोगुनों से असन्तोष बढ़ गया। सन् 1868 में समुराई वर्ग ने शोगुन को हटाने के लिए कई सामन्तों तथा धनी व्यापारियों की मदद से एक सशस्त्र आन्दोलन चलाया। वे सफल रहे और उन्होंने सम्राट मेईजी को जापान की सत्ता सौंप दी। उनकी अपेक्षा थी कि सम्राट के नेतृत्व में जापान एक एकजुट राष्ट्र के रूप में उभरेगा और पश्चिमी देशों की चुनौती का सामना करेगा।

नई सरकार ने कई क्रान्तिकारी कदम उठाए मगर कुछ इस तरह कि पुराने सामन्त वर्ग को ज़्यादा नुकसान न हो। इस समय तक सामन्त अपने–अपने क्षेत्रों में स्वायत्त शासन कर रहे थे। यह व्यवस्था खत्म कर दी गई। अब कर्मचारियों के माध्यम से जापान में एक केन्द्रीय शासन प्रारम्भ हुआ। इसमें पहले के सामन्तों व उनके साथ के लोगों को जगह

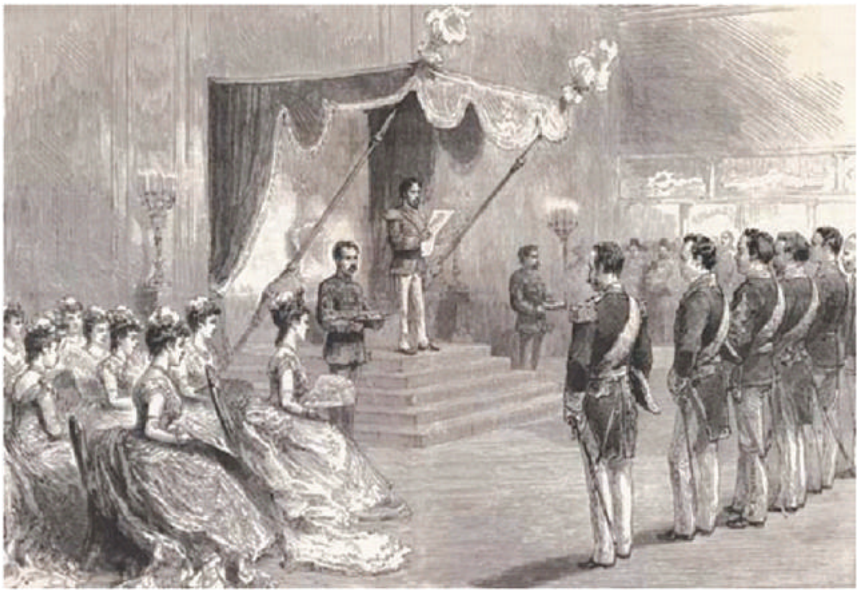

चित्र 8.13 'मेईजी संविधान' का ऐलान करते हुए जापान का सम्राट। आप इस तस्वीर में यूरोपियन संस्कृति का जापान पर प्रभाव देख सकते हैं।

दी गई। सामन्तों का किसानों से लगान लेने के अधिकार का खात्मा दूसरा महत्वपूर्ण कदम था। अब राज्य सीधे किसानों से लगान वसूल करने लगा। लेकिन सामन्तों को इसकी भरपाई नगदी पेंशन के माध्यम से की गई। जापान का सामन्त वर्ग अपनी पुरानी सत्ता तो खो बैठा लेकिन वे लोग इस नए युग में एक आर्थिक ताकत के रूप में उभरे क्योंकि उनको पेंशन की मोटी रकम मिलती थी। उनके पास राजकीय नौकरी थी और धन भी था जिसे वे व्यापार और उद्योगों में निवेश कर सकते थे। जापानी राज्य ने अब तेज़ी से औद्योगीकरण का कार्यक्रम शुरू किया ताकि जापान एक औद्योगिक देश के रूप में विकसित हो सके। एक और महत्वपूर्ण कदम था सारी प्रजा में कानूनी समानता का ऐलान। इसके तहत समुराई जैसे वर्गों के विशिष्ट अधिकार समाप्त कर दिए गए।

जापान को आधुनिक राष्ट्र–राज्य बनाने के लिए सामन्तों की स्वायत्तता खत्म करना क्यों ज़रूरी था?

क्या आपको लगता है कि इससे किसानों की स्थिति में सुधार आया होगा?

जापान के एक दल ने सन् 1882 में यूरोप और अमेरिका के संविधानों के अध्ययन के लिए वहाँ के देशों का भ्रमण किया और एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। इसके बाद एक गुप्त समिति ने संविधान के लिए सुझाव तैयार करके सम्राट के सामने प्रस्तुत किया। इस समिति ने अपने काम के दौरान कोई सार्वजनिक चर्चा नहीं की और न ही जनता से कोई संवाद किया। यह संविधान मूल रूप से विस्मार्क द्वारा निर्मित जर्मन संविधान पर आधारित था। सन् 1889 में नए संविधान का ऐलान हुआ जिसे ''मेईजी संविधान'' कहा जाता है। इसमें स्पष्ट रूप से कहा गया कि सर्वोच्च सत्ता सम्राट की है और सम्राट अपनी इच्छा से यह संविधान अपनी प्रजा को दे रहा है। (यानी सत्ता लोगों से नहीं मगर सम्राट से आई है)। इस संविधान में सम्राट और उसके द्वारा नियुक्त मंत्रिमण्डल को अत्यधिक अधिकार दिए गए। यह भी कहा गया कि सम्राट इसी संविधान के अनुरूप कार्य करेगा। एक संसद का भी गठन किया गया जिसके लिए केवल सम्पत्ति वाले लोग मत दे सकते थे। इस संसद की भूमिका भी सीमित थी। मेईजी संविधान में जापान की प्रजा को भी कुछ अधिकार दिए गए, जैसे– कानून के समक्ष सबकी समानता, धार्मिक स्वतंत्रता, संवैधानिक उपचार, विधि द्वारा ही दण्ड दिया जाना आदि। लेकिन स्वतंत्रता के ये अधिकार बहुत सीमित थे।

8.6.2 भारत में राष्ट्रवादी आन्दोलन

भारत ब्रिटेन के अधीन था और यहाँ के राष्ट्रवाद का विकास अँग्रेज़ी शासन के खिलाफ हुआ था। सन् 1857 में भारतीय सैनिकों व पुराने शासकों ने अँग्रेज़ों को भगाने का पुरज़ोर प्रयास किया लेकिन वे विफल रहे। वे लोग मूलतः पुरानी शासन प्रणाली वापस लाना चाहते थे। भारत में एक आधुनिक लोकतांत्रिक राष्ट्र बनाने की लड़ाई की शुरुआत सन् 1880 के बाद हुई जिसका सूत्रपात भारत में उभरते नए मध्यम वर्ग ने किया। जापान के राष्ट्र निर्माण में जिस तरह राजा की महत्वपूर्ण भूमिका रही, भारत के राष्ट्र निर्माण में किसी राजा की वैसी भूमिका नहीं रही।

भारत के नए मध्यम वर्ग की खासियत यह थी कि इसमें भारत के हर प्रान्त से और हर धर्म और जाति के लोग सम्मिलित थे। इसमें दादाभाई नौरोजी और फिरोजशाह जैसे बुद्धिजीवी, बालगंगाधर तिलक और गोखले जैसे नेता, बदरुद्दीन तय्यबजी और रहमतुल्लाह सयानी, पण्डिता रमाबाई, लाला लाजपत राय, जी. सुब्रमण्यम अय्यर और रामस्वामी मुदलियार, वामनराव लाखे, पं. सुन्दरलाल शर्मा, राश बिहारी बोस... आदि कई देशभक्त शामिल थे। यहाँ तक कि भारत में रहने वाले कई अँग्रेज़ (जैसे – ए.ओ. ह्यूम व एनी बेसेन्ट) भी इस प्रक्रिया में सम्मिलित थे। हम देख सकते हैं कि इनमें पारसी, मुस्लिम, दलित, ब्राह्मण आदि विविध सामाजिक वर्गों तथा देश के सभी भागों के लोग शामिल थे। अर्थात् यह मध्यम वर्ग एक तरह से पूरे भारत का और उसके विभिन्न समुदायों का प्रतिनिधित्व करता था। इस वर्ग की विशेषता यह थी कि उन लोगों ने अँग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त की थी और यूरोप के लोकतांत्रिक और राष्ट्रवादी विचारों से अवगत थे और उनके प्रति आस्था रखते थे। वे मानते थे कि भारत को एक आधुनिक विकसित राष्ट्र बनना है तो उसे पुरातनपन्थी या सामन्ती रास्ते पर नहीं बल्कि लोकतंत्र, विज्ञान और औद्योगीकरण के रास्ते पर जाना होगा। इन्होंने मिलकर सन् 1885 में अखिल भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना की जो हर साल मिलकर देश की दशा और उसकी ज़रूरतों पर विचार–विमर्श करती थी और ब्रिटिश शासन को सुधार के लिए ज्ञापन देती थी।

दादाभाई नौरोजी ने अँग्रेज़ी शासन में भारत की आर्थिक स्थिति की व्याख्या प्रस्तुत की और बताया कि किस प्रकार इसकी वजह से भारत दिन–ब–दिन गरीब बनता जा रहा है। इस तरह के लेखन ने लोगों में राष्ट्रवाद के बीज बोए। सन् 1905 के बाद यह व्यापक जन आन्दोलन बनने लगा जिसमें हर प्रान्त के लाखों लोग अँग्रेज़ी शासन के विरुद्ध प्रदर्शन करने लगे। इनमें कई गुप्त क्रान्तिकारी संगठनों के लोग भी थे जो हिंसात्मक क्रान्ति को अँग्रेज़ों को भगाने का सबसे अच्छा तरीका मानते थे। वे कई दमनकारी अँग्रेज़ अफसरों की हत्या करने का प्रयास करते थे। ऐसे क्रान्तिकारियों में चापेकर बंधु और खुदीराम बसु अग्रणी थे।

सन् 1905 से 1920 के मध्य का दौर 'लाल–बाल–पाल' (लाला लाजपत राय, बालगंधर तिलक और बिपिनचन्द्र पाल) के नेतृत्व का युग था। इनके नेतृत्व में हुए आंदोलनों के कारण भारतीय लोगों में राष्ट्रवादी भावनाओं का विकास हुआ।

अँग्रेज़ों की नीतियों से प्रभावित किसान, मज़दूर, आदिवासी, दलित और महिलाएँ अपने–अपने स्तर पर शासन के खिलाफ संघर्ष करने लगे थे। जगह–जगह ऐसे लोगों के विद्रोह एवं आन्दोलन चलने लगे। उल्लेखनीय बात यह थी कि वे न केवल अँग्रेज़ों के खिलाफ लड़ रहे थे बल्कि भारतीय समाज की कुरीतियों का भी पुरज़ोर विरोध करने लगे थे। वे चाहते थे कि भारत में ज़मींदारी, बेगारी आदि शोषणकारी व्यवस्थाएँ खत्म हों और महिलाओं, दलितों आदि के खिलाफ भेदभाव समाप्त हो। कई आन्दोलन जाति व्यवस्था और उसमें निहित असमानताओं के विरोध में चले।

राष्ट्रीय आन्दोलन में गाँधी जी की भूमिका

सन् 1915 में गाँधीजी दक्षिण अफ्रीका के शासन के विरुद्ध संघर्ष कर रहे थे, भारत लौटे। उन्होंने राष्ट्रवादी आन्दोलन और अन्य आन्दोलनों के बीच जुड़ाव बनाया और किसानों, आदिवासियों, मज़दूरों, महिलाओं व दलितों की समस्याओं को राष्ट्रवादी आन्दोलन के तहत उठाया। इससे इन सब लोगों को उस वृहद आन्दोलन में शमिल होने का मौका मिला। यही नहीं गाँधी जी ने ऐसे स्वराज की कल्पना की जिसमें भेदभाव और असमानताएँ न हों और यह कहा कि हमारा उद्देश्य केवल अँग्रेज़ों को हटाना नहीं है बल्कि भारत में सामाजिक बदलाव लाना है। वे इसके लिए हिंसात्मक आन्दोलन के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने एक नए तरह के आन्दोलन की पैरवी की जिसे सत्याग्रह नाम दिया। इस आन्दोलन के द्वारा विरोधियों को अपने उद्देश्यों को सच्चाई और दृढ़ता से मनवाना था।

इस तरह के आन्दोलनों ने भारत में राष्ट्रवाद को बहुत मज़बूत बनाया। अब साधारण जन अपने आपको एक देश का हिस्सा समझने लगे थे। उनकी अलग भाषा, संस्कृति, वेशभूषा होते हुए भी एक भावना पनप गई कि हम एक राष्ट्र का हिस्सा हैं और इसने उनको एक सूत्र में बाँधने का काम किया। यह एकता की भावना लोक–कथा, गीत, चित्रों आदि के द्वारा भी बनाई गई। अँग्रेज़ों की कई कोशिशों के बावजूद न तो यह राष्ट्रवादी भावना दबाई जा सकी और

History_8.pmd 140 1/11/2019, 3:27 PM

चित्र 8.14 : दाण्डी यात्रा

न ही लोगों को किसी भी तरह का समझौता करके अँग्रेज़ों के अधीन रहने को तैयार किया जा सका। लोग पूर्ण स्वराज की माँग पर अड़ गए। सन् 1942 में **"अँग्रेज़ों भारत छोड़ो"** के नाम से एक विशाल आन्दोलन किया गया।

गाँधी जी के नेतृत्व में चल रहे राष्ट्रीय आन्दोलन से कई लोग असहमत थे। उनमें से कुछ यह मानते थे कि यह बहुत धीमी गति से चल रहा है या इसमें देश में व्याप्त असमानताओं को दूर करने की बात नहीं हो रही है। इस तरह के कई नौजवान मानते थे कि भारत को आज़ाद करने के लिए सशस्त्र क्रान्तिकारी आन्दोलन की ज़रूरत है।

इन्हीं सब के बीच भारत अगस्त सन् 1947 में भारत और पाकिस्तान दो अलग राष्ट्रों में बँटकर आज़ाद हुआ। स्वतंत्र भारत का संविधान बनाने के लिए एक सभा बैठी और उस सभा की ओर से एक कमेटी बनी जिसके अध्यक्ष डॉ. बी. आर अम्बेडकर थे। लगभग तीन साल के विचार–विमर्श के बाद जनवरी सन् 1950 में संविधान बना जिसमें भारत को एक लोकतांत्रिक गणराज्य घोषित किया गया जो भारत के लोगों में समानता, स्वतंत्रता, न्याय और बन्धुत्व हासिल करने के उद्देश्य को लेकर काम करेगा। इसमें वयस्क नागरिक मताधिकार द्वारा चुनी गई संसद को सर्वोपरि माना गया। संसद को कानून बनाने व कर लगाने का अधिकार था और कार्यपालिका उसके ही प्रति उत्तरदायी बनी। संविधान के तहत हर नागरिक को कई प्रकार की स्वतंत्रताएँ और अधिकार दिए गए। इस तरह भारत एक आधुनिक लोकतांत्रिक राष्ट्र राज्य बना।

भारत जैसे विशाल और विविधता भरे देश में लोग एक राष्ट्रीय भावना के तहत एकजुट हुए, इसके पीछे क्या कारक दिखाई देते हैं– चर्चा कीजिए।

अभ्यास

1. इंग्लैंड की संसद ने ऐसे कौन से कदम उठाए जिससे निरंकुशवाद समाप्त किया जा सका?
2. अमेरिका के संविधान के मुख्य लेखक कौन थे? इस संविधान की विशेषताओं का उल्लेख अपने शब्दों में कीजिए।

3. आपने इंग्लैंड, अमेरिका, फ्रांस के बारे में पढ़ा है। इन देशों के सन्दर्भ में निम्नांकित को पहचानें।

   (अ) जहाँ राजा के कुछ अधिकार क्रान्ति के बाद भी बने रहे।

   (आ) वह देश जिसने नारा दिया– 'no taxation without representation'।

   (इ) पुरुष एवं नागरिक अधिकार घोषणा–पत्र

4. तोकुगावा शोगुनों और जापानी राजा के सम्बन्धों के बारे में मुख्य बातें बताएँ।
5. सत्याग्रह से आप क्या समझते हैं – उसको अपने शब्दों में लिखें।
6. कर लगाने पर इंग्लैंड की संसद का नियंत्रण किस प्रकार राजशाही पर अंकुश लगा सकता था?
7. रूसो मानता था कि सम्पत्ति के कारण मानव समाज विकृत हुआ और इससे मनुष्य की स्वतंत्रता खत्म हुई। आपको इसके पीछे क्या तर्क दिखाई देते हैं?
8. अमेरिका के स्वतंत्रता संघर्ष के पीछे क्या कारण थे? अपने शब्दों में बताइए।
10. फ्रांस के घोषणा–पत्र की बातें अमेरिका की स्वतंत्रता की घोषणा से किस तरह समान हैं?
11. पुरुष एवं नागरिक अधिकार घोषणा–पत्र, यह पढ़ कर आप क्या समझ पाए कि वे लोग महिलाओं के बारे में क्या सोचते थे?
12. आज हम भारत में जिन मौलिक अधिकारों की बात करते हैं, उनकी शुरुआत फ्रांसीसी क्रान्ति से किस प्रकार हुई लगती है?
13. अलग–अलग देशों में हुई लोकतांत्रिक क्रान्तियों में गरीब तबकों, विशेषकर किसानों की क्या भूमिका थी?
14. जापान और भारत के राष्ट्रवाद में क्या फर्क था? अपने शब्दों में लिखिए।
15. मेईजी वंश की पुनःस्थापना से जापान में क्या बदलाव आए? विस्तार से बताइए।
16. गाँधी जी के आने के बाद भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में गति आने के मुख्य कारण आपके अनुसार क्या रहे होंगे? चर्चा करें।
17. नीचे दी गई सूची में आपने भारत और अन्य देशों में मताधिकार के बारे में क्या फर्क महसूस किया बताइए?

    सभी वयस्कों को मताधिकार कहाँ–कब मिला, निम्नलिखित तालिका में देखें।

देश	पुरुष	महिला
इंग्लैंड	1918	1928
अमेरिका	1862	1920
फ्रांस	1875	1944
जर्मनी	1871	1919
इटली	1912	1945
जापान	1925	1946
भारत	1950	1950

XZFW1T

**

9

औद्योगिक क्रान्ति और सामाजिक बदलाव (सन् 1750–1900)

XZN6DM

आपने अपने क्षेत्र में स्थापित कारखानों के बारे में सुना व देखा होगा। आपके आस–पास के कारखानों में आपके परिचित या रिश्तेदार भी कार्य कर रहे होंगे। हमारे प्रदेश में अनेक छोटे–छोटे कारखाने हैं जिनमें चावल, कोसा वस्त्र आदि का उत्पादन होता है। कुरूद, महासमुन्द, तिल्दा–नेवरा, नवापारा, राजिम, भाटापारा, धमतरी आदि स्थानों पर चावल की मिलें हैं। हमारे प्रदेश में बड़े कारखाने भी हैं, जैसे– भिलाई का स्टील प्लांट (जहाँ लोहा–इस्पात का निर्माण होता है), कोरबा में एल्यूमिनियम का कारखाना और बलौदाबाजार जिले में सीमेंट के कारखाने। पिछले कुछ दशकों से छत्तीसगढ़ में नए–नए कारखाने लग रहे हैं और गाँव से लोग आजीविका के लिए खेती छोड़कर इन कारखानों में काम करने जा रहे हैं। प्रदेश के बाज़ारों में हम कारखानों में बनी चीज़ों की भरमार देख सकते हैं। हमने सातवीं कक्षा के सामाजिक विज्ञान विषय के विभिन्न अध्यायों में उद्योगों एवं उनके प्रकार तथा उनमें निर्मित होने वाली वस्तुओं के बारे में पढ़ा है।

आप जिन कारखानों या उद्योगों के बारे में जानते हैं, उनके बारे में कक्षा में सबको बताएँ।

कारखानों का लगना, लोगों का कृषि से कारखानों में काम करने जाना तथा औद्योगिक उत्पादनों का दैनिक जीवन में खपत आदि को हम औद्योगीकरण कहते हैं। वास्तव में हम सब अपने प्रदेश के औद्योगीकरण के गवाह हैं। इससे हमारे जीने व सोचने के तरीकों में तथा हमारे परिवेश में भी बुनियादी अन्तर आ जाते हैं। औद्योगिक उत्पादन हमेशा से नहीं था। यह ब्रिटेन में अठारहवीं सदी में शुरू हुआ।

9.1 औद्योगिक क्रान्ति

ब्रिटेन में सन् 1780 से सन् 1850 के बीच उद्योग और अर्थव्यवस्था का जो रूपान्तरण हुआ उसे 'प्रथम औद्योगिक क्रान्ति' के नाम से जाना जाता है। इस परिवर्तन को क्रान्ति का दर्ज़ा इस कारण दिया गया था क्योंकि इससे कुछ ही दशकों में ब्रिटेन की अर्थव्यवस्था और समाज में बुनियादी अन्तर आ गए। मनुष्य की उत्पादन क्षमता में अभूतपूर्व वृद्धि हुई जिससे उसके जीवन के हर पहलू में परिवर्तन आया। इस क्रान्ति का ब्रिटेन पर दूरगामी प्रभाव पड़ा। बाद में, जर्मनी और संयुक्त राज्य अमेरिका में ऐसे ही परिवर्तन हुए और उन परिवर्तनों का उन देशों तथा शेष विश्व के समाज और अर्थव्यवस्था पर भी काफी प्रभाव पड़ा। ब्रिटेन में औद्योगिक विकास का यह चरण नई मशीनों और तकनीकों से गहराई से जुड़ा है। इन मशीनों तथा तकनीकों ने पहले के हस्तशिल्प और हथकरघा उद्योगों की तुलना में भारी पैमाने पर माल के उत्पादन को सम्भव बनाया। औद्योगीकरण की वजह से कुछ लोग समृद्ध हो गए, पर इसके प्रारम्भिक दौर में लाखों लोगों को खराब एवं बदतर परिस्थितियों में काम करना पड़ा। इनमें स्त्रियाँ और बच्चे भी शामिल थे। इसके कारण विरोध भड़क उठा और सामाजिक परिवर्तन के लिए आन्दोलन शुरू हो गए। फलस्वरूप सरकार को श्रमिकों के काम की परिस्थितियों के निर्धारण के लिए कानून बनाने पड़े।

9.1.1 आरम्भिक औद्योगीकरण

दरअसल इंग्लैंड, यूरोप और भारत में सत्रहवीं व अठारहवीं सदी में कारखानों की स्थापना से भी पहले अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार के लिए बड़े पैमाने पर औद्योगिक उत्पादन होने लगा था। लेकिन यह उत्पादन कारखानों में नहीं होता था। इतिहासकार औद्योगीकरण के इस चरण को 'आरंभिक–औद्योगीकरण' (proto-industrialisation) का नाम देते हैं। देश–विदेश में बढ़ते व्यापार को देखते हुए शहरों में रहने वाले सौदागर कपड़े, लोहे के औज़ार आदि चीज़ों का उत्पादन बढ़ाने में जुट गए। वे गाँव के किसानों और कारीगरों को अग्रिम पैसा देते थे और उनसे अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार के लिए उत्पादन करवाते थे। वे कारीगरों को विवश करते थे कि वे निश्चित समय पर माल तैयार करके उन्हें ही बेचें। सौदागर शहरों में रहते थे लेकिन उनके लिए काम ज़्यादातर देहात में चलता था। यह आरंभिक–औद्योगिक व्यवस्था व्यापार नेटवर्क का हिस्सा था। इस पर सौदागरों का नियंत्रण था और चीज़ों का उत्पादन कारखानों की बजाय कारीगरों के घरों में होता था। हर सौदागर के अधीन सैकड़ों मज़दूर काम करते थे। इस तरह बहुत बड़ी संख्या में लोग औद्योगिक उत्पादन, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और पैसों के लेन–देन के ताने–बाने से जुड़ गए।

सातवीं कक्षा की सामाजिक अध्ययन की पाठ्यपुस्तक में इससे मिलती–जुलती व्यवस्था के बारे में हमने पढ़ा था। उसे याद कीजिए और कक्षा में उसकी विशेषताओं की चर्चा कीजिए। क्या यहाँ भी गाँव के कारीगर एक बड़ी बाज़ार व्यवस्था से जुड़े हुए हैं?

9.1.2 ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति

इंग्लैंड में सबसे पहले सन् 1730 के दशक में कारख़ाने खुले लेकिन उनकी संख्या में तेज़ी से वृद्धि अठारहवीं सदी के आखिर में ही हुई। गाँव के बिखरे उत्पादन की जगह शहरों में एक छत के नीचे उत्पादन होने लगा। कारखानों में उत्पादन का मतलब है बहुत अधिक मात्रा में उत्पादन। इसे सम्भव बनाने के लिए पूँजी, मज़दूर और उन चीज़ों की बाज़ार में माँग ज़रूरी है। ब्रिटेन में धनी व्यापारी थे जो पूँजी लगा रहे थे। वे अपने माल के लिए बढ़ती माँग को लेकर आश्वस्त थे। काम करने के लिए गाँव व शहरों में मज़दूर उपलब्ध थे। अब अधिक उत्पादन को कम समय में करने के लिए नई मशीनों का आविष्कार हुआ।

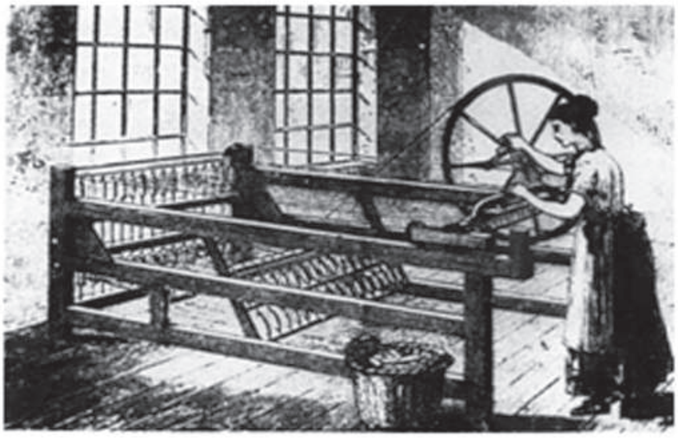

चित्र 9.1 : 'स्पिन्निंग जेन्नी' तेज़ी से सूत कातने के लिए एक नया आविष्कार था। इसमें एक साथ कई सारी तकलियाँ चल रही हैं। इसे किसकी उर्जा से चलाया जा रहा है?

आविष्कार और कारखाना

अठारहवीं शताब्दी में लगभग 26,000 आविष्कारों का पंजीकरण या पेटेंट किया गया जिन्होंने उत्पादन प्रक्रिया के प्रत्येक चरण की कुशलता बढ़ा दी। प्रति मज़दूर उत्पादन बढ़ गया और पहले से बेहतर माल भी बनने लगा। यह परिवर्तन कपड़ा उद्योग में सबसे तेज़ी से हुआ। सूत कातने–बुनने से लेकर कपड़े को अन्तिम रूप देने तक के लिए मशीनें बन गईं। इसके बाद रिचर्ड

चित्र 9.2 : कारखानों में उत्पादन प्रक्रिया पर निगरानी, गुणवत्ता का ध्यान और मज़दूरों पर नज़र रखी जा सकती थी।

आर्कराइट ने सूती कपड़ा मिल की रूपरेखा सामने रखी। अभी तक कपड़ा उत्पादन गाँवों में फैला हुआ था। यह काम लोग अपने–अपने घरों में करते थे। लेकिन अब कारखाने में सारी प्रक्रियाएँ एक छत के नीचे और एक मालिक के हाथों में आ गई थी। इसके चलते उत्पादन प्रक्रिया पर निगरानी, गुणवत्ता का ध्यान रखना और मज़दूरों पर नज़र रखना सम्भव हो गया था। जब तक उत्पादन गाँवों में हो रहा था तब तक ये सारी बातें सम्भव नहीं थीं।

क्या आपने अपने राज्य के किसी लोहा–इस्पात कारखाने को देखा है? वहाँ उत्पादन कैसे होता है, पता करें और कक्षा में सबको बताएँ।

कारखाने स्थापित करने के लिए उत्तम किस्म के लोहे की क्यों ज़रूरत थी?

पत्थर कोयले और लकड़ी कोयले में क्या–क्या अन्तर होते हैं?

नई मशीनों के उपयोग के कारण कारखाने स्थापित करना क्यों ज़रूरी हो गया था?

कारखाने स्थापित करने के लिए 'आरंभिक औद्योगीकरण' किस प्रकार सहायक रहा होगा?

लोहा–इस्पात

मशीनों के व्यापक उपयोग में कई बाधाएँ थीं। अगर मशीनों से भारी मात्रा में काम लेना था तो उसके लिए मज़बूत लोहे की ज़रूरत थी। इंग्लैंड इस मामले में सौभाग्यशाली था क्योंकि वहाँ मशीनीकरण में काम आने वाली मुख्य सामग्रियाँ, कोयला और लौह–अयस्क बहुतायत मात्रा में उपलब्ध थे। इसके अलावा वहाँ उद्योग में काम आने वाले अन्य खनिज, जैसे–सीसा, ताँबा और राँगा भी खूब मिलते थे। किन्तु अठारहवीं शताब्दी तक वहाँ मशीनों में इस्तेमाल योग्य लोहे का उत्पादन नहीं होता था। लोहा गलाने के लिए लकड़ी के कोयले का उपयोग किया जाता था पर इसमें कई समस्याएँ थीं, जैसे– यह पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं था और यह उच्च तापमान पैदा नहीं कर सकता था। इस कारण घटिया किस्म के लोहे का ही उत्पादन होता था।

चित्र 9.3 : कोलब्रुकडेल औद्योगिक क्षेत्र का चित्र: लोहे की धमनभट्ठियाँ और काठकोयले की भट्ठियाँ। घोड़ों द्वारा खींची गई रेलपटरी पर चलने वाली गाड़ी। (एफ. वाइवेर्स द्वारा की गई चित्रकारी सन् 1758)

ऐसे में इंग्लैंड का एक लोहार परिवार जिसका नाम अब्राहम डर्बी था, वर्षों के प्रयोग से लोहा गलाने में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने में सफल हुआ। उसके आविष्कारों में सबसे महत्वपूर्ण था लकड़ी कोयले की जगह पत्थर कोयले का उपयोग जिसे धमनभट्ठी में उपयोग किया गया। इन भट्ठियों से जो पिघला हुआ लोहा निकलता था वह पहले की अपेक्षा अधिक बढ़िया था और उससे लम्बी ढलाई की जा सकती थी। इस कारण लोहे से अनेकानेक उत्पाद बनाना सम्भव हो गया। चूँकि लोहे में टिकाऊपन अधिक था इसलिए इसे मशीनें, रेल पटरियाँ और अन्य वस्तुएँ बनाने के लिए लकड़ी से बेहतर सामग्री माना जाने लगा। लकड़ी तो कट–फट या जल सकती थी लेकिन लोहे के भौतिक और रासायनिक गुण–धर्म को नियंत्रित किया जा सकता था। इस तरह औद्योगिक क्रान्ति जो कपड़ा उद्योग से शुरू हुई,

अब लोहा–इस्पात के मशीन–निर्माण पर केन्द्रित होने लगी। लौह अयस्क और कोयले का उत्खनन तेज़ी से बढ़ा और इन खानों के पास ही नए कारखाने लगने लगे। लेकिन औद्योगिक क्रान्ति को स्थिरता प्रदान करने के लिए दो और महत्वपूर्ण क्षेत्रों में बदलाव की ज़रूरत थी।

ऊर्जा के स्रोत

सत्रहवीं सदी में मशीनों को चलाने के लिए मनुष्यों या जानवरों की ताकत लगती थी या फिर नदियों के बहते पानी का उपयोग होता था। इसे पनचक्की भी कहते हैं। लेकिन इनसे भारी मशीनों को सालभर चलाना सम्भव नहीं था। इस क्षेत्र में भाप की शक्ति के उपयोग ने क्रान्ति ला दी। यूँ तो भाप की शक्ति का पता पहले से था, मगर जेम्स वाट (जन्म सन् 1736, मृत्यु सन् 1819) ने एक ऐसी मशीन विकसित की जिससे भाप का इंजन एक 'प्राइम मूवर' यानी प्रमुख चालक के रूप में काम देने लगा। इससे कारखानों में मशीनों को चलाने के लिए ऊर्जा मिलने लगी। अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक जेम्स वाट के भाप इंजन ने जानवरों और बहते पानी की शक्ति का स्थान लेना शुरू कर दिया।

आजकल कारखाने किस ऊर्जा के स्रोत से चलते हैं? वह ऊर्जा किसकी मदद से बनाई जाती है?

जानवर की ताकत या बहती नदी से औद्योगीकरण क्यों सम्भव नहीं है?

परिवहन

परिवहन बढ़ते व्यापार और उद्योगों की एक और ज़रूरत थी। बहुत बड़ी मात्रा में सामान लाना और ले जाना ज़रूरी था। इसके लिए पहले नहरों का जाल बिछाया गया ताकि उन पर नावों के द्वारा सामान को कम खर्च पर पहुँचाया जा सके। इसके बाद रेल पटरियों पर गाड़ियों को खींचने का प्रयोग शुरू हुआ। खींचने के लिए शुरू में घोड़ों का उपयोग होता था और बाद में भाप इंजिन का प्रयोग किया जाने लगा। पहला भाप से चलने वाला रेल का इंजन जार्ज स्टीफेन्सन ने सन् 1814 में बनाया था। अब रेलगाड़ियाँ परिवहन का एक ऐसा नया साधन बन गईं जो वर्षभर उपलब्ध रहती थीं, सस्ती और तेज़ भी थीं और माल तथा यात्री दोनों को ढो सकती थीं। इस साधन में एक साथ दो आविष्कार सम्मिलित थे– लोहे की पटरी और भाप के इंजन। रेल के आविष्कार के साथ औद्योगीकरण की सम्पूर्ण प्रक्रिया ने दूसरे चरण में प्रवेश कर लिया।

चित्र 9.4 : एक रेलवे कारख़ाने का दृश्य, *दि इलस्ट्रेटेड लन्दन न्यूज़, सन् 1849*

रेलमार्ग स्थापित करना और कारखाना स्थापित करना– इन दोनों में क्या महत्वपूर्ण अन्तर है?

जैसे–जैसे भाप चालित मशीनों का उपयोग बढ़ा, वैसे–वैसे कारखानों का जाल भी बढ़ा। उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में कारखाने इंग्लैंड के भूदृश्य का अभिन्न अंग बन गए थे। ये नए कारखाने इतने विशाल थे और नई प्रौद्योगिकी की ताकत इतनी जादुई दिखाई देती थी कि उस समय के लोगों की आँखें चौंधिया जाती थीं।

लेकिन हमें इससे यह निर्णय नहीं करना चाहिए कि औद्योगिक क्रान्ति से सारा उत्पादन कारखानों में होने लगा था। इंग्लैंड में मशीनों और कारखानों के प्रसार के बावजूद उन्नीसवीं सदी के मध्य तक भी कारखानों के बाहर हाथ से काम करने वाले मज़दूर ही अधिक थे। फिर भी कारखानों में उत्पादन की व्यवस्था अर्थव्यवस्था में निर्णायक भूमिका निभाने लगी और समय के साथ गैर–कारखाना उत्पादन कम होते गए।

9.1.3 औद्योगिक क्रांति ब्रिटेन में ही क्यों, 18वीं सदी में क्यों?

ब्रिटेन पहला देश था जिसने सर्वप्रथम आधुनिक औद्योगीकरण का अनुभव किया था। यह वहाँ क्यों सम्भव हुआ? और उस समय ही क्यों? ये प्रश्न शुरू से विवाद के मुद्दे रहे हैं। इतिहासकार मानते हैं कि इस तरह के व्यापक परिवर्तन किन्हीं एक या दो कारणों से नहीं बल्कि कई सकारात्मक परिस्थितियों के संयोग से होते हैं। अठारहवीं शताब्दी में औद्योगीकरण के लिए ब्रिटेन में ऐसी क्या सकारात्मक बातें थीं, आइए देखें।

क. राजनैतिक परिस्थिति

ब्रिटेन सत्रहवीं शताब्दी से राजनैतिक दृष्टि से सुदृढ़ एवं सन्तुलित रहा और इसके तीनों हिस्सों – इंग्लैंड, वेल्स और स्कॉटलैंड पर एक ही राजा का शासन था। इसका अर्थ यह हुआ कि सम्पूर्ण राज्य में एक ही कानून व्यवस्था, एक ही सिक्का या मुद्रा–प्रणाली और एक ही बाज़ार व्यवस्था थी। यह व्यापार के लिए बहुत लाभकारी सिद्ध हुआ। वहाँ के राज्य (शासन) ने व्यापार और उद्योगों को रोकने वाली व्यवस्थाओं को हटाया या कम कर दिया। लेकिन राज्य ने उद्योगों में निवेश नहीं किया। यह ज़रूर था कि सन् 1830 तक राज्य ऐसी सीमा शुल्क लगाता था कि विदेशों से बने औद्योगिक उत्पादन ब्रिटेन में महँगे हो जाएँ। लोग फिर इंग्लैंड में बनी चीजें ही खरीदते।

सन् 1846 में शासन ब्रिटेन के उद्योग व कृषि की रक्षा के लिए लगाए गए सीमा शुल्क को हटाने लगा। यानी ब्रिटेन में किसी भी सामान का आयात या निर्यात करने पर एक समान सीमा शुल्क चुकाना पड़ता था। इसे मुक्त व्यापार नीति कहते हैं जिसमें राज्य अर्थव्यवस्था में कोई हस्तक्षेप नहीं करता है और निजी पूँजीपतियों को स्वतंत्रता के साथ काम करने देता है। ब्रिटेन यह इसलिए कर पाया क्योंकि औद्योगीकरण के कारण ब्रिटेन के उत्पाद इतने सस्ते हो गए कि ब्रिटेन को किसी दूसरे देश से प्रतिस्पर्धा का डर नहीं रहा।

भारत में भी सन् 1947 के बाद विदेशी सामान के आयात पर अधिक सीमा शुल्क लगाया जाता था। लेकिन सन् 1990 के बाद से सीमा शुल्क न्यूनतम हो गया। इस बदलती नीति के बारे में शिक्षक की मदद से पता कीजिए और कक्षा में चर्चा कीजिए।

ख. घरेलू बाज़ार

औद्योगीकरण से किसी भी चीज़ का अत्यधिक उत्पादन किया जाता है जिसे बेचने के लिए बड़े बाज़ार की ज़रूरत होती है। देखें ब्रिटेन में यह कैसे बना?

सोलहवीं शताब्दी में राजनैतिक एकता और प्रशासनिक केन्द्रीकरण के कारण सम्पूर्ण ब्रिटेन में एक आर्थिक नीति लागू हुई। बाज़ार व्यवस्था में स्थानीय सामन्तों या अधिकारियों का पहले जैसा कोई हस्तक्षेप नहीं था यानी वे अपने इलाके से होकर गुज़रने वाले माल पर कोई कर नहीं लगा सकते थे। पूरे देश में एक कर व्यवस्था, एक माप–तौल और एक मुद्रा प्रणाली स्थापित हुई। इससे पूरे देश में व्यापार करना आसान हो गया और देश में आन्तरिक व्यापार तेज़ी से बढ़ पाया।

सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक आते–आते ब्रिटेन में लेन–देन में मुद्रा का व्यापक उपयोग होने लगा था। इससे पहले अनाज ही लेन–देन का माध्यम था और वस्तु विनिमय व्यापक था। लेकिन व्यापार के बढ़ने से सत्रहवीं सदी से वस्तु विनिमय कम होता गया और मज़दूरी, ज़मीन का लगान, कर आदि नगद के रूप में ही अदा किए जाने लगे। इसका एक और महत्वपूर्ण कारण था कृषि का व्यापारीकरण। अब खेती घरेलू उपयोग के लिए नहीं बल्कि बिक्री के लिए होने लगी। अतः गाँवों में भी मुद्रा का चलन बढ़ गया। इससे लोगों को अपनी आमदनी से खर्च करने के लिए अधिक विकल्प प्राप्त हो गए और वस्तुओं की बिक्री के लिए बाज़ार का विस्तार हो गया।

अगर देश में हर प्रान्त में अलग–अलग मापन हो तो व्यापार में क्या कठिनाई आती?
यदि देश में हर प्रान्त में अलग–अलग मुद्रा का चलन होता तो व्यापारियों को क्या कठिनाई होती?
क्या आपने वस्तु विनिमय का उदाहरण अपने गाँव या शहर में देखा है? इसके बारे में सबको बताएँ।
मुद्रा के चलन से व्यापार की सम्भावनाएँ क्यों बढ़ जाती होंगी?

ग. कृषि का व्यापारीकरण और कृषि–क्रान्ति

ब्रिटेन में पन्द्रहवीं सदी से ही अनाज, माँस और ऊन का व्यापार बढ़ रहा था। इसके कारण बहुत से किसान बाज़ार के लिए उत्पादन करने लगे। सत्रहवीं सदी में कीमतों में तेज़ी से वृद्धि हुई जिस कारण ऐसे कृषकों को अधिक लाभ हुआ। जब वहाँ के ज़मींदारों ने यह देखा तो वे खेती में रुचि लेने लगे। उन्होंने किसानों को अपनी ज़मीन से हटाकर मुनाफे के लिए खुद मज़दूरों से खेती करवाने लगे। अठारहवीं शताब्दी में इंग्लैंड एक बड़े आर्थिक परिवर्तन के दौर से गुज़रा था जिसे 'कृषि–क्रान्ति' कहा गया है। यह एक ऐसी प्रक्रिया थी जिसके द्वारा बड़े ज़मींदारों ने अपनी ज़मीन से किसानों को बेदखल कर दिया, आसपास के किसानों के खेत खरीद लिए और चरागाह जैसी गाँव की सार्वजनिक जमीन को भी घेर लिया। इस प्रकार उन्होंने अपनी बड़ी–बड़ी भू–सम्पदाएँ बना लीं जिस पर वे नए तरीकों से खेती करवाते थे या व्यवसायिक भेड़ पालन करवाते थे। इससे खाद्यान्न, ऊन और मांस का उत्पादन तो बढ़ा मगर किसानों से आजीविका छिन गई। इससे भूमिहीन किसानों और गाँव की सार्वजनिक ज़मीन पर अपने पशु चराने वाले चरवाहों को कहीं और काम–धन्धे तलाशने के लिए मजबूर होना पड़ा। इस तरह कृषि क्रान्ति ने औद्योगिक क्रान्ति को दोहरा लाभ पहुँचाया : पहला खेतिहर उत्पादन को पूर्णतः व्यापार के उद्देश्य के लिए करना और दूसरा कृषकों को औद्योगिक मज़दूर बनाने में मददगार होना।

आपके क्षेत्र के किसान अपने उत्पादन का कितना हिस्सा बाज़ार में बेचते हैं और कितना हिस्सा घर के उपयोग के लिए रखते हैं? आपस में चर्चा करें।

ब्रिटेन की कृषि–क्रान्ति से जो उत्पादन बढ़ा, उसका फायदा किसे हुआ।

घ. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और उपनिवेश

सत्रहवीं सदी के अन्त तक ब्रिटेन के व्यापारी चीन, भारत, अफ्रीका, अमेरिका आदि में सक्रिय व्यापार और राजनीति में लगे हुए थे। इस कारण ब्रिटेन में धन और पूँजी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थी। अमेरिकी उपनिवेशों के कारण उन्हें सस्ते में कपास, अनाज आदि उपलब्ध हुए। इसके बदले में ये उपनिवेश ब्रिटेन में बने औद्योगिक उत्पादों को खरीदते थे। ब्रिटेन के महानगर विश्व व्यापार के केन्द्र बन चुके थे। इस कारण वहाँ पर बैंक आदि वित्तीय संस्थाएँ बनीं जो किसी भी आर्थिक परियोजना के लिए वित्त उपलब्ध करा सकती थीं। ब्रिटेन में कारखाना लगाने के लिए ये सब सुविधाएँ बहुत काम आईं।

कारखाना लगाने के लिए बैंक पूँजी उपलब्ध कैसे कराते हैं? उन्हें यह धन कैसे मिलता होगा?

ब्रिटेन में ऐसे कौन से उद्योग लगे जिनके लिए कच्चा माल उपनिवेशों से मिलता था?

औद्योगीकरण के लिए चाहिए कि जरूरी मात्रा में पूँजी अर्थात् धन उपलब्ध हो, जिसे मुनाफे के लिए निवेश किया जा सके। यह किसी का व्यक्तिगत धन हो सकता है या बहुत से लोगों का धन जो बैंक आदि वित्तीय संस्थाओं के माध्यम से मिले। दूसरी ज़रूरत बाज़ार की है। उत्पादित सामान को खरीदने के लिए लोग तैयार हों और उन तक सामान को आसानी और कम खर्च में पहुँचाया जा सके। यानी खरीददारों को बाज़ार से खरीदने की ज़रूरत हो और उनके पास पैसे हों। साथ ही औद्योगिक उत्पादन पर अनावश्यक कर न लगे और परिवहन की सुविधा हो ताकि कम खर्चे में सामान दूर–दराज़ के ग्राहकों तक पहुँचाया जा सके। तीसरी ज़रूरत है कामगारों की जो कम मज़दूरी पर भी काम करने के लिए तैयार हों और जिनके पास इस मज़दूरी के अलावा और कोई जीविका का साधन न हो। चौथी ज़रूरत है सस्ते में मगर नियमित रूप से कच्चे माल की आपूर्ति।

हमने देखा कि किस प्रकार ब्रिटेन के औद्योगीकरण को उसके अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और उपनिवेशों ने सम्भव बनाया।

धनी जमींदार और धनी व्यापारी, इन दोनों में से कौन उद्योगों में पूँजी लगाने के लिए तैयार होगा? क्यों?

गाँव का किसान और शहर का दिहाड़ी मज़दूर, इन दोनों में कौन बाज़ार से अपनी ज़रूरत की सारी चीज़ें खरीदेगा?

आपने अभी तक जो पढ़ा उसके अनुसार ब्रिटेन के औद्योगीकरण के लिए कौन–कौन से कच्चे माल की ज़रूरत थी? उनकी आपूर्ति किस तरह होती थी?

9.1.4 औद्योगीकरण के दौरान मज़दूर

जैसे–जैसे कारखाने लगने लगे और खदानें खुलीं, गाँवों से बड़ी संख्या में लोग काम की तलाश में शहरों की ओर चले। नौकरी मिलने की सम्भावना यारी–दोस्ती, कुनबे–कुटुम्ब के जरिए जान–पहचान पर निर्भर करती थी। अगर किसी कारख़ाने में रिश्तेदार या दोस्त लगा हुआ था तो नौकरी मिलने की सम्भावना ज़्यादा रहती थी। सबके पास ऐसे सामाजिक सम्पर्क नहीं होते थे। रोज़गार चाहने वाले बहुत सारे लोगों को हफ्तों तक इन्तजार करना पड़ता था। वे पुलों के नीचे या रैन बसेरों में रात काटते थे। कुछ बेरोज़गार शहर में बने निजी रैनबसेरों में रहते थे। बहुत सारे निर्धन पुलिस विभाग द्वारा चलाए जाने वाले अस्थायी बसेरों में रुकते थे। मज़दूरों को शहरों की गन्दी बस्तियों में बिना किसी नगरीय सुविधा के रहना पड़ा। इस कारण बीमारियाँ व महामारियाँ फैलीं। बीमारियों और गरीबी के कारण मज़दूरों की औसत आयु उन दिनों बहुत कम थी।

चित्र 9.5 : 'बेघर और भूखे' (सेमुअल ल्यूक फिल्देस की पेंटिंग, सन् 1874।) लन्दन में बेघर लोग एक रैनबसेरे में रातभर ठहरने के लिए लाईन में खड़े हैं। इनमें रहना जिल्लत की बात मानी जाती थी। लोग अपने सिर झुकाए उदास खड़े हैं।

बहुत से उद्योगों में मौसमी काम की वजह से कामगारों को बीच–बीच में लम्बे समय तक खाली बैठना पड़ता था। काम का मौसम गुज़र जाने के बाद गरीब दोबारा सड़क पर आ जाते थे। कुछ लोग जाड़ों के बाद गाँवों में चले जाते थे जहाँ इस समय काम निकलने लगता था। लेकिन ज़्यादातर लोग शहर में ही छोटा–मोटा काम ढूँढ़ने की कोशिश करते थे।

उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में वेतन में कुछ सुधार हुआ लेकिन अक्सर यह महंगाई के कारण असरहीन हो जाता था। मज़दूरों की आमदनी भी सिर्फ वेतन दर पर ही निर्भर नहीं होती थी। रोज़गार की अवधि भी बहुत महत्वपूर्ण थी। मज़दूरों की औसत दैनिक आय इससे तय होती थी कि उन्हें कितने दिन काम मिला है। उन्नीसवीं सदी के मध्य में सबसे अच्छे हालात में भी लगभग 10 प्रतिशत शहरी आबादी निहायत ग़रीब थी। आर्थिक मन्दी के दौर में बेरोज़गारों की संख्या विभिन्न क्षेत्रों में 35 से 75 प्रतिशत तक पहुँच जाती थी। ऐसे कठिन समय में विवश मज़दूर रोटी के लिए दंगा–फसाद पर भी उतर आते थे। बेरोज़गारी की आशंका के कारण मज़दूर नई प्रौद्योगिकी से चिढ़ते थे। वे मशीन को रोज़गार छीनने वाला साधन मानकर उसे तोड़ने का प्रयास करते थे। शुरू में कारखानों की मशीनों को निशाना बनाया गया और समय के साथ गाँवों में नए लाए गए कृषि–यंत्रों जैसे थ्रेशर की भी तोड़–फोड़ की जाने लगी।

9.1.5 मजदूर औरतें और बच्चे

औद्योगिक क्रान्ति से महिलाओं और बच्चों के काम करने के तरीकों में महत्वपूर्ण परिवर्तन आए। इससे पहले ग्रामीण गरीबों के बच्चे हमेशा घर या खेत में अपने माता–पिता या सम्बन्धियों की निगरानी में तरह–तरह के काम किया करते थे। ये काम दिन या मौसम के अनुसार बदलते रहते थे। इसी प्रकार गाँवों में महिलाएँ भी खेत के काम में सक्रिय रूप से हिस्सा लेती थीं। वे पशुओं का पालन–पोषण करती थीं, लकड़ियाँ इकट्ठी करती थीं और अपने घरों में चरखे चलाकर सूत कातती थीं। औद्योगिक क्रान्ति के बाद उन्हें कारखानों में काम करना पड़ा जो इससे बिलकुल अलग किस्म का होता था। वहाँ लगातार कई घण्टों तक एक ही तरह का काम कठोर अनुशासन तथा तरह–तरह के दण्ड की भयावह परिस्थितियों में कराया जाता था।

चित्र 9.6 : खदान में बच्चे

पुरुषों की मज़दूरी मामूली होती थी जिससे घर का ख़र्च नहीं चल सकता था। इसे पूरा करने के लिए महिलाओं और बच्चों को भी कमाना पड़ता था। ज्यों–ज्यों मशीनों का इस्तेमाल बढ़ता गया, काम करने के लिए कुशल मज़दूरों की ज़रूरत कम होती गई। उद्योगपति पुरुषों की बजाय औरतों और बच्चों को अपने यहाँ काम पर लगाना अधिक पसन्द करते थे।

महिलाओं और बच्चों को लंकाशायर और यॉर्कशायर नगरों के सूती कपड़ा उद्योग में बड़ी संख्या में काम पर लगाया जाता था। इसके अलावा रेशम, फीते बनाने और बुनने के उद्योग–धन्धों में और बर्मिंघम के धातु उद्योगों में अधिकतर बच्चों और महिलाओं को नौकरी दी जाती थी। रूई कातने की मशीनें तो कुछ इसी तरह की बनाई गई थीं कि उनमें बच्चे अपनी फुर्तीली उँगलियों और छोटी कद–काठी के कारण आसानी से काम कर सकते थे। बच्चों को अक्सर कपड़ा मिलों में रखा जाता था क्योंकि वहाँ सटाकर रखी गई मशीनों के बीच से छोटे बच्चे आसानी से आ–जा सकते थे। बच्चों से कई घण्टों तक काम लिया जाता था, यहाँ तक कि उन्हें हर रविवार को मशीनें साफ करने के लिए काम पर आना पड़ता था जिसके परिणामस्वरूप उन्हें ताज़ी हवा भी नहीं मिलती थी। कई बार तो बच्चों के बाल मशीनों में फँस जाते थे या उनके हाथ कुचल जाते थे। कभी–कभी बच्चे काम करते–करते इतने थक जाते थे कि उन्हें नींद की झपकी आ जाती थी और वे मशीनों में गिरकर मौत के मुँह में चले जाते थे।

कोयले की खानें भी बहुत खतरनाक होती थीं। खानों की छतें धँस जाती थीं अथवा उनमें विस्फोट हो जाता था। चोट लगना तो वहाँ आम बात थी। कोयला खानों के मालिक कोयले के गहरे अन्तिम छोरों को देखने के लिए बच्चों को ही भेजते थे जहाँ जाने का रास्ता वयस्कों के लिए बहुत सँकरा होता था। यहाँ तक कि वे अपनी पीठ पर कोयले का भारी वजन भी ढोते थे और कोयले से भरी गाड़ियों को खींचते थे।

कारखानों के मालिक बच्चों से काम लेना बहुत ज़रूरी समझते थे ताकि वे अभी से काम सीखकर बड़े होकर उनके लिए अच्छा काम कर सकें। अधिकांश कारखानों में 10 से 14 साल की उम्र से बाल–मज़दूर काम करना शुरू कर देते थे।

महिलाओं को मज़दूरी मिलने से न केवल वित्तीय स्वतंत्रता मिली बल्कि उनके आत्मसम्मान में भी बढ़ोतरी हुई। लेकिन इससे उन्हें जितना लाभ हुआ उससे कहीं ज़्यादा हानि काम की अपमानजनक परिस्थितियों के कारण हुई। अक्सर उनके बच्चे पैदा होते ही या शैशवावस्था में ही मर जाते थे और उन्हें अपने औद्योगिक काम की वजह से मजबूर होकर शहर की घिनौनी व गन्दी बस्तियों में रहना पड़ता था।

आजकल कारखानों में महिलाओं को किस तरह के काम मिलते हैं? क्या कानूनन 14 साल से कम आयु के बच्चे काम कर सकते हैं ?

औद्योगीकरण के दौर में महिलाएँ कारखानों में 12 से 16 घण्टे काम करतीं थीं और स्वतंत्र रूप में कमाने लगीं। इसका परिवारों के अन्दर महिलाओं की स्थिति पर क्या असर पड़ा होगा?

9.1.6 मज़दूर आन्दोलन

प्रारम्भ में तो मज़दूर अनियोजित दंगा या तोड़–फोड़ के जरिए अपना गुस्सा व्यक्त करते थे। लेकिन जब इससे परिस्थितियाँ नहीं सुधरीं तो वे अधिक संगठित तरीकों से अपना विरोध दर्शाने लगे थे। अलग–अलग उद्योगों में काम करने वाले कामगारों ने संगठन बनाए ताकि वे साझे रूप से मालिकों से सौदेबाजी कर सकें। ये संगठन बाद में जाकर मज़दूर संघ बने। इसी तरह बेरोज़गारी या बीमारी के समय आपसी मदद के लिए सहकारी सहयोग समितियाँ बनाई गईं। मजदूर आपस में चंदा करके इन सहकारी समितियों को चलाते थे।

प्रायः मज़दूर उन दिनों फ्रांसीसी क्रान्ति और जैकोबिन (गणतंत्रात्मक) विचारों से तथा समाजवादी सोच से प्रेरित थे। वे समाज में सबके लिए आर्थिक और राजनैतिक समानता और लोकतांत्रिक अधिकारों की माँग करने लगे।

सन् 1811–17 के बीच एक करिश्माई व्यक्तित्व वाले जनरल नेड लुड के नेतृत्व में 'लुडिज़्म' नामक आन्दोलन चलाया गया। यह एक किस्म का विरोध प्रदर्शन था। लुडिज़्म के अनुयायी मशीनों की तोड़–फोड़ में ही विश्वास नहीं करते थे, बल्कि वे न्यूनतम मज़दूरी, नारी एवं बाल श्रम पर नियंत्रण, मशीनों के आविष्कार से बेरोज़गार हुए लोगों के लिए काम और कानूनी तौर पर अपनी माँगें पेश करने के लिए मज़दूर संघ या ट्रेड यूनियन बनाने के अधिकार की माँग करते थे। सरकार ने इसका जवाब दमनकारी नीति से दिया। संसद ने कानून पारित कर लोगों द्वारा राजकीय नीतियों के विरूद्ध प्रदर्शन आदि पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

लेकिन लोकतंत्र के प्रवाह को रोका न जा सका और इन दमनकारी अधिनियमों को सन् 1824–25 में निरस्त कर दिया गया। सन् 1832 के बाद क्रमशः संसद की सदस्यता समाज के दूसरे वर्गों के लिए भी खोली गई। इसके अलावा सन् 1819 के बाद धीरे–धीरे ऐसे कानून बने जिन्होंने बालश्रम को नियंत्रित किया और सभी के लिए काम के घण्टों को सीमित किया।

औद्योगीकरण मज़दूरों के लिए एक अभिशाप था या ग्रामीण सामन्तों के चंगुल से बचने का एक रास्ता था? कक्षा में इस विषय पर चर्चा कीजिए।

9.2 जर्मनी का औद्योगीकरण

ब्रिटेन में हुई औद्योगिक क्रान्ति ने उद्योग और अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाए। यह यूरोप में पहली औद्योगिक क्रान्ति के रूप में जानी जाती है। इसके कारण ब्रिटेन का राजनैतिक और आर्थिक वर्चस्व बना। उसकी बराबरी करने के लिए अन्य यूरोपीय देशों को भी औद्योगीकरण का रास्ता अपनाना पड़ा। लेकिन अन्य यूरोपीय देशों में राजनैतिक परिस्थितियाँ सन् 1830 तक इसके अनुकूल नहीं थीं। सन् 1870 के बाद परिस्थितियाँ बदलने लगीं। जर्मनी और इटली में एकीकरण हुआ और वहाँ संवैधानिक राजतंत्र स्थापित हुआ। फ्रॉस में लोकतांत्रिक गणराज्य बना। इन राजनैतिक परिस्थितियों के कारण इन देशों में औद्योगिक विकास की प्रक्रिया तीव्र हो पाई। लेकिन इन देशों में एक समस्या यह थी कि इनमें ऐसा सशक्त पूँजीपति वर्ग का अभाव था जिसके पास पर्याप्त पूँजी और अनुभव हो। इसके चलते ब्रिटेन से प्रतिस्पर्धा करके विकास करना कठिन था। कपड़ा जैसे उद्योगों में ब्रिटेन के वर्चस्व को तोड़ना लगभग असम्भव था।

फ्रांसीसी क्रान्ति के समय जर्मनी 300 से अधिक राज्यों में बँटा हुआ था। सन् 1815 में नेपोलियन की पराजय के बाद जब यूरोपीय देशों का पुनर्गठन हुआ तब लगभग 39 के करीब राज्य बचे। इनमें सबसे शक्तिशाली और महत्वाकांक्षी राज्य प्रशा था जिसने न केवल अपने राज्य के आर्थिक विकास के लिए प्रयास किया बल्कि उसने पूरी जर्मनी का

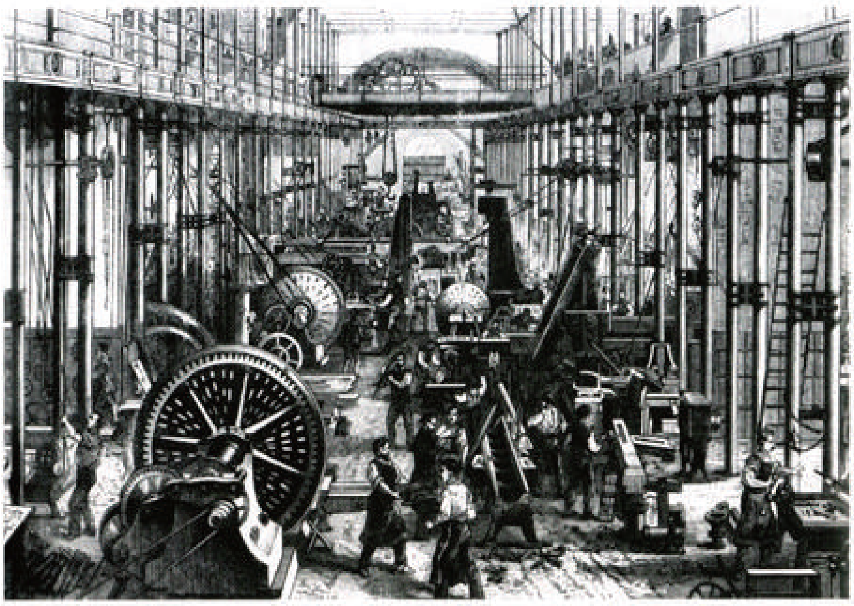

चित्र 9.7 भारी मशीनों का कारखाना

अपनी छत्रछाया के नीचे एकीकरण भी किया। सन् 1834 में प्रशा राज्य के नेतृत्व में एक आर्थिक संघ बना। इस संघ ने सभी व्यापारिक रुकावटों को कम कर दिया और मुद्रा व्यवस्था में सुधार किया। प्रशा ने अपने राज्य में कई कदम उठाए जिससे जर्मन अर्थव्यवस्था पर सामन्तवादी नियंत्रण समाप्त हो सके। इनमें कृषि दासता या अर्द्धगुलामी का अन्त और भूमिसुधार महत्वपूर्ण कदम थे। इसके अन्तर्गत ज़मींदारों के अर्द्धगुलाम होकर रह रहे थे किसानों को आज़ादी दी गई। जर्मनी के एकीकरण के पश्चात यहाँ पर बड़े कारखाने बनने लगे और खदानें खुलने लगीं। तब बेरोज़गार लोग इनमें काम करने के लिए उपलब्ध थे। दूसरी ओर जो सामन्ती ज़मींदार थे, उनका कायापलट हुआ और वे आधुनिक तरीकों से खेती कराने वाले उद्यमी ज़मींदार बन गए। कृषि उत्पादन बढ़ा और वह राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ारों में बिकने लगा।

जर्मनी के शासक यह बखूबी समझते थे कि जर्मनी का वर्चस्व उसके औद्योगीकरण पर निर्भर है। लेकिन इसके लिए जर्मनी को ब्रिटेन से प्रतिस्पर्धा करनी होगी और ऐसे उद्योगों को विकसित करना होगा जो ब्रिटेन में नहीं थे। उन दिनों औद्योगीकरण के लिए तीन नए क्षेत्र खुल रहे थे। ये थे रासायनिक उद्योग, भारी मशीन उद्योग एवं बिजली उद्योग रासायनिक उद्योग जिसमें कृत्रिम खाद, कृत्रिम रंग, औषधि, फोटोग्राफी की सामग्री, प्लास्टिक, कृत्रिम रेशे तथा नए किस्म के विस्फोटक आदि बनते थे। भारी मशीन उद्योग मशीन बनाने वाली मशीनों को बनाना। और बिजली उद्योग शामिल था उन्हीं दिनों अमेरिका में थामस एडिसन और अन्य आविष्कारकों ने बिजली से चलने वाली विभिन्न तरह की चीज़ों का आविष्कार किया था। इनके अलावा सन् 1850 के आसपास रेलवे और भापचलित जहाज–निर्माण पूँजी निवेश के महत्वपूर्ण क्षेत्र बन रहे थे। जर्मन उद्योगपतियों ने ब्रिटेन से प्रतिस्पर्धा के लिए इन नए क्षेत्रों को चुना। लेकिन ये सूत या कपड़ा कारखाना जैसे नहीं थे क्योंकि उनमें बहुत भारी निवेश की आवश्यकता थी। उन दिनों जर्मनी में इतने धनी पूँजीपति नहीं थे।

जर्मन सरकार ने भारी मात्रा में पूँजी निवेश किया और सारे देश में रेलवे का जाल बिछाया। महत्वपूर्ण खनिजों की खदानें राजकीय स्वामित्व में खोली। राज्य की पहल पर स्कूल, विश्वविद्यालय तथा तकनीकी शिक्षा व्यवस्था स्थापित की गई। विश्वविद्यालयों में जो अनुसन्धान हो रहे थे उन्हें उद्योगों की आवश्यकताओं से जोड़ने का प्रयास हुआ। तकनीकी शिक्षा संस्थानों को भारी उद्योगों से जोड़ा गया ताकि वहाँ पढ़ने–पढ़ाने वाले लोगों का काम कारखानों की ज़रूरत के अनुकूल हो।

जर्मन राज्य ने ऐसी कर नीति अपनाई जिससे दूसरे देशों में बने माल का जर्मनी में आयात करने पर अधिक सीमा शुल्क देना पड़े और जर्मनी के सामान का देश के बाहर निर्यात करने पर कम सीमा शुल्क देना पड़े। इस कारण जर्मनी के उद्योगों को दूसरे देशों की प्रतिस्पर्धा से बचाया जा सका। जर्मनी के एकीकरण के बाद एशिया और अफ्रीका में उपनिवेश स्थापित करने का गहन प्रयास शुरू कर दिया गया और शीघ्र ही अफ्रीका में जर्मन उपनिवेश बने।

इस प्रकार जर्मनी के औद्योगीकरण में राज्य ने अहम भूमिका निभाई। यह ब्रिटेन के औद्योगीकरण में राज्य की भूमिका से बहुत अलग था।

ब्रिटेन एवं जर्मनी के औद्योगीकरण में राज्य की भूमिका में अंतर बताइए।

सामन्तों व सम्राट ने औद्योगीकरण को क्यों बढ़ावा दिया होगा?

चित्र 9.8 : बिजली से चलने वाले एक कारखाने में महिला मज़दूर

पूँजी की कमी और विकसित देशों की प्रतिस्पर्धा का सामना करने के लिए जर्मनी के पूँजीपतियों ने कई संस्थागत नवाचार किए। इनमें विशाल बैंकों की भूमिका अहम थी। संयुक्त व्यापारिक संस्थान बनाना – जिन्हें 'कार्टेल' कहा जाता था इनसे भी महत्वपूर्ण था। इसमें किसी विशेष उद्योग की सभी उत्पादक कम्पनियाँ आपसी प्रतिस्पर्धा को कम करके अपने उत्पादनों की कीमत को ऊँचा बनाए रखने के लिए आपसी समझौता कर लेती थी। कार्टेल की सदस्य कम्पनियों को कुछ आपसी नियम स्वीकार करना पड़ता था।

सन् 1900 तक जर्मनी ने रंगों के उत्पादन में विश्व के 90 प्रतिशत बाज़ारों पर नियंत्रण कर लिया। कृत्रिम रसायन उद्योग के प्रभाव से औषधियों, फोटोग्राफी की सामग्री, प्लास्टिक, कृत्रिम रेशे तथा नए किस्म के विस्फोटकों आदि उद्योगों की स्थापना हुई। रासायनिक उत्पादन में जर्मनी इग्लैंड की तुलना में 60 प्रतिशत अधिक उत्पादन करने लगा। इस काल में बिजली एवं इस्पात उद्योगों का भी तीव्र विकास हुआ।

9.2.1 जर्मनी में राजकीय समाजवाद

जिस प्रकार ब्रिटेन में औद्योगीकरण के दौरान मज़दूरों को विकट परिस्थितियों में काम करना पड़ रहा था, जर्मनी में भी वैसे ही हालात उत्पन्न हो रहे थे। इसके विरोध में मज़दूर आन्दोलन भी उभरने लगा था। मज़दूर तेज़ी से समाजवादी सिद्धान्तों को अपना रहे थे और सामाजिक क्रान्ति के लिए प्रयास करने लगे थे। इसे रोकने के लिए जर्मन सरकार ने कई कदम उठाए। पहला तो सब के लिए अनिवार्य और निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा लागू की गई ताकि सारे बच्चे शिक्षित हों। इसके अलावा निःशुल्क राजकीय तकनीकी शिक्षा संस्थानों की स्थापना हुई जिनमें अध्ययन करके कोई भी कुशल कारीगर बन सकता था। मज़दूरों के लिए वृद्धावस्था, बीमारी और दुर्घटना बीमा सबसे महत्वपूर्ण कदम था। यह सुविधा सरकार और मालिकों के संयुक्त अनुदान से चलती थी और इससे सेवाकाल के दौरान एवं उसके बाद या बीमारी आदि की हालत में भी मज़दूर सम्मानजनक जीवन बिता सकते थे।

चित्र 9.9 : सम्राट : 'मैं भी तुम्हारे साथ हूँ।' समाजवादी मज़दूरः 'ठीक है भाई। पहले ज़रा तुम्हारा मुकुट उतारकर तो आओ।' (लन्दन से प्रकाशित व्यंग्य पत्रिका 'पंच' के सन् 1890 के अंक से।)

ऐसे कदमों के कारण सरकार मज़दूर आन्दोलन को काबू में रखने में सफल रही। चूँकि राज्य ने स्वयं समाजवादियों की माँगों को लागू किया, अतः इन नीतियों को राजकीय समाजवाद या 'स्टेट सोशलिज़्म' कहते हैं।

9.3 औद्योगिक क्रान्ति का सामाजिक प्रभाव

1. आजीविका के लिए उद्योगों पर निर्भरता – औद्योगिक क्रान्ति की वजह से सामाजिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलते हैं। औद्योगीकरण का एक दूरगामी परिणाम यह था कि लोग कृषि से हटकर शहरी कारखानों में काम करने लगे। ब्रिटेन और जर्मनी जैसे औद्योगिक देशों में आज केवल दो या तीन प्रतिशत लोग खेती करते हैं और बाकी लोग कारखानों या सेवा क्षेत्रों में काम करते हैं। इन देशों में छोटे किसानों का अन्त हो गया। अब वे कारखानों में मज़दूर बन गए हैं। औद्योगिक शहरों की जनसंख्या में वृद्धि इस बात की ओर संकेत करती है कि अब वे अपनी आजीविका के लिए पूरी तौर पर उद्योगों पर निर्भर हो गए हैं।

2. औद्योगिक पूँजीवाद का जन्म – औद्योगीकरण का एक और प्रभाव यह हुआ कि आर्थिक शक्ति थोड़े से लोगों के हाथों में केन्द्रित हो गई। इस तरह औद्योगिक पूँजीवाद का जन्म हुआ। औद्योगिक क्रान्ति के चलते समाज दो खेमों या वर्गों में बँट गया। एक ओर मज़दूर थे जिनके पास केवल श्रम करने की क्षमता थी जिसे वे आजीविका के लिए कारखानों के मालिकों को बेचते थे। इसके बदले उन्हें मामूली मज़दूरी मिलती थी। दूसरी ओर पूँजीपति और जमींदार थे जिन्होंने सूझ–बूझ से उद्योग लगाए और पूँजी लगाकर जोखिम उठाया। मगर उससे मिलने वाला सारा लाभ पूँजीपतियों को ही मिलता था। वे समय के साथ अपनी पूँजी को बढ़ाते गए और मज़दूर उन पर और निर्भर होते गए।

3.बाजार आधारित अर्थव्यवस्था– बाज़ार आधारित अर्थव्यवस्था में एक बुनियादी समस्या यह होती है कि किसी कारखाने के मालिक को यह वास्तव में पता नहीं रहता है कि उसका माल बिकेगा या नहीं। अक्सर विभिन्न कारणों से बाज़ार में मन्दी आ जाती है और माल बिकना बन्द हो जाता है। यह या तो इसलिए होता है बाज़ार में ज़रूरत से अधिक माल बनकर बिकने आ जाता है या फिर इसलिए होता है कि लोगों के पास खरीदने के लिए पैसे नहीं होते। ऐसे में मालिक को घाटा हो जाता है और उसे अपना उत्पादन बन्द करना पड़ता है और कामगारों की छँटनी करनी पडती है। इससे बेरोज़गारी की समस्या पैदा हो जाती है।

4. लागत कम करने का सतत् प्रयास– हर मालिक लागत को कम करने के सतत् प्रयास में रहता है। लागत कम करने के कई तरीके हो सकते हैं, जैसे –ऐसी मशीन या प्रणाली का उपयोग जिसकी मदद से वह कम मज़दूरों से अधिक उत्पादन करवा पाए या फिर किसी तरह कच्चे माल को कम कीमत पर प्राप्त करने का प्रयास करे या फिर पुराने सामान की जगह और कोई नया सामान बनाए। आधुनिक औद्योगिक उत्पादन की यह एक पहचान है कि इसमें सतत् तकनीकी परिवर्तन होते रहते हैं और उत्पादन प्रणाली बदलती रहती है। तकनीकी बदलाव और नई मशीनों के आने से अक्सर मालिकों को बहुत से मज़दूरों की छँटनी करनी पड़ती है। इससे मज़दूर बेरोज़गारी का शिकार हो जाते हैं और दूसरे काम की तलाश करने लगते हैं।

XZPS3G

9.4 भारत में निरूद्योगीकरण और औद्योगीकरण की शुरुआत

सन् 1500 से 1750 के बीच यानी ब्रिटेन में औद्योगीकरण से पहले भारत में कपड़ा उद्योग सहित विभिन्न तरह के उद्योग अपने चरम पर थे। भारतीय कारीगर उत्तम गुणवत्ता के कपड़े बुनते थे जिसकी विश्वभर में बड़ी माँग थी। इसी व्यापार से फायदा उठाने के लिए यूरोप के व्यापारी भारत आए थे। बढ़ती माँग को देखते हुए भारतीय कारीगर और व्यापारियों ने तेज़ी से उत्पादन बढ़ाया। इसी व्यापार पर अधिक नियंत्रण पाने के लिए ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारत में अपना राज्य बनाया। चलिए देखें, इसका हमारे देश के उद्योगों पर क्या प्रभाव पड़ा।

चित्र 9.10 : हथकरघे पर काम करता बंगाल का बुनकर

9.4.1 बुनकरों का क्या हुआ?

सन् 1760 के दशक के बाद ईस्ट इंडिया कम्पनी के राज की स्थापना के पश्चात भारत के कपड़ा निर्यात में गिरावट नहीं आई। इसका कारण यह था कि ब्रिटिश कपड़ा उद्योग अभी विकसित नहीं हुआ था और यूरोप में महीन भारतीय कपड़ों की भारी माँग थी। इसलिए कम्पनी भी भारत से होने वाले कपड़े के निर्यात को ही और फैलाना चाहती थी।

9.4.2 भारत में मैनचेस्टर का आना

सन् 1772 में ईस्ट इंडिया कम्पनी के अफसर हेनरी पतूला ने कहा था कि भारतीय कपड़े की माँग कभी कम नहीं हो सकती क्योंकि दुनिया के किसी और देश में इतना अच्छा माल नहीं बनता। लेकिन हम देखते हैं कि उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में भारत के कपड़ा निर्यात में गिरावट आने लगी जो लम्बे समय तक जारी रही। सन् 1811–12 में कुल निर्यात में सूती माल का हिस्सा 33 प्रतिशत था। सन् 1850–51 में यह मात्र 3 प्रतिशत रह गया था। ऐसा क्यों हुआ? इसके क्या प्रभाव हुए?

जब इंग्लैंड में कपड़ा उद्योग विकसित हुआ तो वहाँ के उद्योगपति दूसरे देशों से आने वाले आयात को लेकर शिकायत करने लगे। उन्होंने सरकार पर दबाव डाला कि वह आयातित कपड़े पर आयात शुल्क वसूल करे जिससे मैनचेस्टर में बने कपड़े बाहरी प्रतिस्पर्धा के बिना इंग्लैंड में आराम से बिक सकें। दूसरी तरफ उन्होंने ईस्ट इंडिया कम्पनी पर दबाव डाला कि वह ब्रिटिश कपड़ों को भारतीय बाज़ारों में भी बेचे। उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में ब्रिटेन के वस्त्र उत्पादों के निर्यात में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। इस प्रकार भारत में कपड़ा बुनकरों के सामने एक–साथ दो समस्याएँ थीं। उनका निर्यात बाज़ार गिर रहा था और स्थानीय बाज़ार सिकुड़ने लगा था। स्थानीय बाज़ार में मैनचेस्टर से आयातित सामानों की भरमार थी। कम लागत पर मशीनों से बनने वाले आयातित कपास उत्पाद इतने सस्ते थे कि बुनकर उनका मुकाबला नहीं कर सकते थे। सन् 1850 के दशक तक देश के बुनकर इलाकों में ज़्यादातर बदहाली और बेकारी के ही किस्सों की भरमार थी। सन् 1860 के दशक में बुनकरों के सामने एक नई समस्या खड़ी हो गई। उन्हें अच्छा कपास नहीं मिल पा रहा था क्योंकि ब्रिटेन अपने कारखानों के लिए भारत से कपास मँगाने लगा था।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में बुनकरों और कारीगरों के सामने एक और समस्या आ गई। अब भारतीय कारखानों में उत्पादन होने लगा और बाज़ार मशीनों की बनी चीज़ों से पट गया था। ऐसे में बुनकर उद्योग किस तरह कायम रह सकता था?

जब बुनकरों का माल बिकना बन्द हो गया तो उन्होंने अपनी आजीविका के लिए क्या किया होगा?

9.4.3 भारत में कारखानों का आना

बम्बई (वर्तमान मुम्बई) में पहला कपड़ा मिल सन् 1854 में लगा और दो साल बाद उसमें उत्पादन होने लगा। सन् 1862 तक वहाँ ऐसे चार मिलें काम कर रहे थे। उनमें 94,000 तकलियाँ और 2,150 करघे थे। उसी समय बंगाल में जूट मिलें खुलने लगे। वहाँ देश का पहली जूट मिल सन् 1855 में और दूसरा 7 साल बाद सन् 1862 में चालू हुआ। उत्तरी भारत में एल्गिन मिल सन् 1860 के दशक में कानपुर में खुला। इसके साल भर बाद अहमदाबाद का पहला कपड़ा मिल भी चालू हो गया। सन् 1874 में मद्रास में भी पहला कताई और बुनाई मिल खुल गया। छत्तीसगढ़ के राजनांदगाँव में सन् 1894 में सी.पी. मिल प्रारंभ हुआ। इसे सन् 1906 से बी.एन.सी. कहा जाने लगा। आइए देखें कि ये उद्योग कौन लगा रहे थे? उनके लिए पूँजी कहाँ से आ रही थी? मिलों में काम करने वाले कौन थे?

प्रारम्भिक उद्यमी : व्यापार से पैसा कमाने के बाद कुछ व्यापारी भारत में कारखाने स्थापित करना चाहते थे। मुम्बई (बम्बई) में दिनशॉ पेटिट और आगे चलकर देश में विशाल औद्योगिक साम्राज्य स्थापित करने वाले जमशेदजी नुसरवानजी टाटा जैसे पारसियों ने आंशिक रूप से चीन को अफीम आदि निर्यात करके और आंशिक रूप से इंग्लैंड को कच्चा कपास निर्यात करके पैसा कमा लिया था। सन् 1917 में कोलकाता (कलकत्ता) में प्रथम देशी जूट मिल लगाने वाले मारवाड़ी व्यवसायी सेठ हुकुमचन्द ने भी चीन के साथ व्यापार किया था। यही काम प्रसिद्ध उद्योगपति जी.डी. बिड़ला के पिता और दादा ने किया। इनके अलावा कुछ वाणिज्यिक समूह थे जो विदेशी व्यापार से सीधे

चित्र 9.11 : अहमदाबाद की एक मिल में कताई में लगी मज़दूर औरतें।

चित्र 9.12 एक 'वरिष्ठ जॉबर'

जुड़े हुए नहीं थे। वे भारत में ही व्यापार या साहूकारी करते थे। जब उद्योगों में निवेश के अवसर आए तो उनमें से बहुतों ने फैक्ट्रियाँ लगा लीं।

मज़दूर कहाँ से आए? : ज्यादातर औद्योगिक इलाकों में मज़दूर आसपास के ज़िलों से आते थे। जिन किसानों–कारीगरों को गाँव में काम नहीं मिलता था वे औद्योगिक केन्द्रों की तरफ जाने लगते थे। सन् 1911 में मुम्बई (बम्बई) के सूती कपड़ा उद्योग में काम करने वाले 50 प्रतिशत से ज्यादा मज़दूर पास के रत्नागिरी ज़िले से आए थे। कानपुर की मिलों में काम करने वाले ज़्यादातर मज़दूर कानपुर जिले के ही गाँवों से आते थे। मिल मज़दूर बीच–बीच में अपने गाँव जाते रहते थे। वे फसलों की कटाई व त्यौहारों के समय गाँव लौट जाते थे। बाद में जब नए कामों की खबर फैली तो दूर–दूर से भी लोग आने लगे। उदाहरण के लिए, वर्तमान उत्तर प्रदेश के लोग बम्बई की कपड़ा मिलों और कलकत्ता की जूट मिलों में काम करने के लिए पहुँच रहे थे। नौकरी पाना हमेशा मुश्किल था। हालाँकि मिलों की संख्या बढ़ती जा रही थी और मज़दूरों की माँग भी बढ़ रही थी लेकिन रोज़गार चाहने वालों की संख्या रोज़गारों के मुकाबले हमेशा ज्यादा रहती थी।

उद्योगपति नए मज़दूरों की भर्ती के लिए प्रायः एक **जॉबर** (प्रतिनिधि या एजेण्ट) रखते थे। जॉबर कोई पुराना और विश्वस्त कर्मचारी होता था। वह अपने गाँव से लोगों को लाता था, उन्हें काम का भरोसा देता था, उन्हें शहर में जमने के लिए मदद देता था और मुसीबत में पैसे उधार देता था। इस प्रकार जॉबर ताकतवर व्यक्ति बन गया था। बाद में जॉबर मदद के बदले पैसों व तोहफों की माँग करने लगा और मज़दूरों की जिन्दगी को नियंत्रित करने लगा।

अँग्रेज़ सरकार की नीतियाँ : भारतीय उद्योगपति यह माँग कर रहे थे कि भारत में आयात होने वाली वस्तुओं पर आयात शुल्क लगाएँ ताकि भारतीय मिलों के उत्पादन को संरक्षण मिले और यह कि शासकीय उपयोग के लिए खरीदी में भारत में बने सामान को प्राथमिकता मिले। अँग्रेज़ सरकार विदेशी माल पर कर लगाने के पक्ष में नहीं थी क्योंकि इससे ब्रिटेन के उत्पादनों पर विपरीत असर पड़ता। जब सन् 1896 में उन्हें राजकीय खर्च के लिए शुल्क लगाना ज़रूरी हो गया तो उन्होंने विदेशी और देशी दोनों पर समान कर लगाया। इस प्रकार भारतीय उद्योगों को संरक्षण नहीं मिल सका। सरकार ने भारतीय उत्पादनों की गुणवत्ता की कमी का कारण दिखाकर यहाँ का सामान खरीदने से इन्कार कर दिया। लिखने का कागज और स्याही तक ब्रिटेन से आयात होता था। यह परिस्थिति सन् 1914 तक बनी रही जब यूरोप में युद्ध के कारण वहाँ से सामान भारत न आ सका, उसके बाद भारतीय उद्योग स्वतंत्र रूप से विकसित होने लगे।

अँग्रेज़ सरकार ने भारत में भी बाल मज़दूरों और महिला मज़दूरों के हित में कानून बनाए। यह कानून बना कि नौ साल से छोटे बच्चों को काम में न लगाया जाए व बाल मज़दूरों से दिन में सात घण्टों से अधिक काम न लिया जाए। इसी तरह यह व्यवस्था बनी कि महिलाओं से नौ घण्टों से अधिक काम न लिया जाए। अन्त में 1911 में पुरुषों के लिए यह कानून बना कि उनसे 12 घण्टों से अधिक काम न करवाया जाए।

अभ्यास

1. वैकल्पिक प्रश्नः

   क. सर्वप्रथम औद्योगिक क्रान्ति कहाँ हुई?

   (अ) फ्रांस (ब) जर्मनी (स) स्पेन (द) इंग्लैंड

   ख. जर्मनी की औद्योगिक क्रान्ति किन उद्योगों पर आधारित थी।

   (अ) सूती कपड़ा (ब) कम्प्यूटर (स) खनिज (द) रसायन एवं बिजली
2. प्रारंभिक औद्योगीकरण और कारखाना उत्पादन में क्या समानताएँ व अन्तर हैं?
3. ब्रिटेन में औद्योगीकरण के लिए किन लोगों ने पूँजी निवेश किया था?

4 जर्मनी के औद्योगीकरण के लिए पूँजी किसने लगाई?

5. इंग्लैण्ड, जर्मनी और भारत के शुरुआती औद्योगीकरण में राज्य की भूमिका में क्या अन्तर दिखाई देता है?
6. औद्योगिक क्रान्ति में लोहा–इस्पात उद्योग का क्या योगदान था?
7. औद्योगिक विकास का समाज पर पड़ने वाले प्रभावों को बतलाइए।
8. अठारहवीं सदी में जर्मनी की औद्योगिक क्रान्ति के रास्ते में क्या क्या बाधाएँ थीं? इन्हें किस प्रकार दूर किया गया?
9. उपनिवेशों ने औद्योगीकरण में क्या योगदान दिया? उपनिवेशों में होने वाले औद्योगीकरण के लिए क्या बाधाएँ थीं?
10. अगर कारखाने का उत्पादन बिक नहीं पाए तो उसका पूँजीपति और मज़दूरों पर क्या प्रभाव पड़ेगा?
11. तकनीकी बदलाव का मज़दूरों और उस उत्पादन के ग्राहकों पर क्या प्रभाव पड़ता होगा? एक उदाहरण लेकर चर्चा कीजिए।
12. ब्रिटेन की औद्योगिक क्रान्ति का भारत के बुनकरों पर क्या प्रभाव पड़ा?
13. प्रारम्भिक भारतीय उद्योगपति कौन थे और उन्हें कारखाने लगाने के लिए पूँजी कैसे मिली होगी?
14. प्रारम्भिक भारतीय उद्योगपतियों को किस तरह की चुनौतियों का सामना करना पड़ा?
15. मज़दूरों के हित में ब्रिटेन, जर्मनी और भारत में जो कानून बने उनमें क्या समानताएँ थीं और क्या अन्तर थे?

परियोजना कार्य

1. 'प्रतिस्पर्धा, तकनीकी विकास और मज़दूर' वाले अनुच्छेद में बताई गई प्रक्रियाओं को एक नाटक के रूप में तैयार कीजिए और कक्षा में प्रस्तुत कीजिए।
2. हमारे राज्य में औद्योगिक मज़दूरों के हित में क्या कानून हैं– पता कीजिए और उनके बारे में एक प्रदर्शनी तैयार करें।
3. सत्रहवीं सदी से लेकर आज तक उद्योगों को चलाने के लिए ऊर्जा के स्रोतों में क्या क्या परिवर्तन आए? पता कीजिए और इस पर एक निबन्ध तैयार कीजिए।

**

XZX2FA

10

XZYN54

उपनिवेशवाद

15 अगस्त सन् 1947 हमारे लिए ऐतिहासिक दिन था। इसी दिन भारत देश ब्रिटिश हुकूमत से आजाद हुआ था। 4 जुलाई सन् 1776 को अमेरिका ब्रिटेन से स्वतंत्र हुआ था। अतः वह प्रतिवर्ष 4 जुलाई को स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाता है। दुनिया के अधिकांश देश इसी तरह किसी–न–किसी दिन अपनी आजादी दिवस के रूप में मनाते हैं। हम नीचे दिए गए नक्शे में देख सकते हैं कि यूरोप के अलावा अन्य सभी महाद्वीपों के अधिकांश देश पिछले 200 वर्षों में किसी–न–किसी दूसरे देश के अधीन रहे हैं।

मानचित्र 10.1 सन् 1750–1914 विश्व के देश जो किसी यूरोपीय देश के अधीन थे

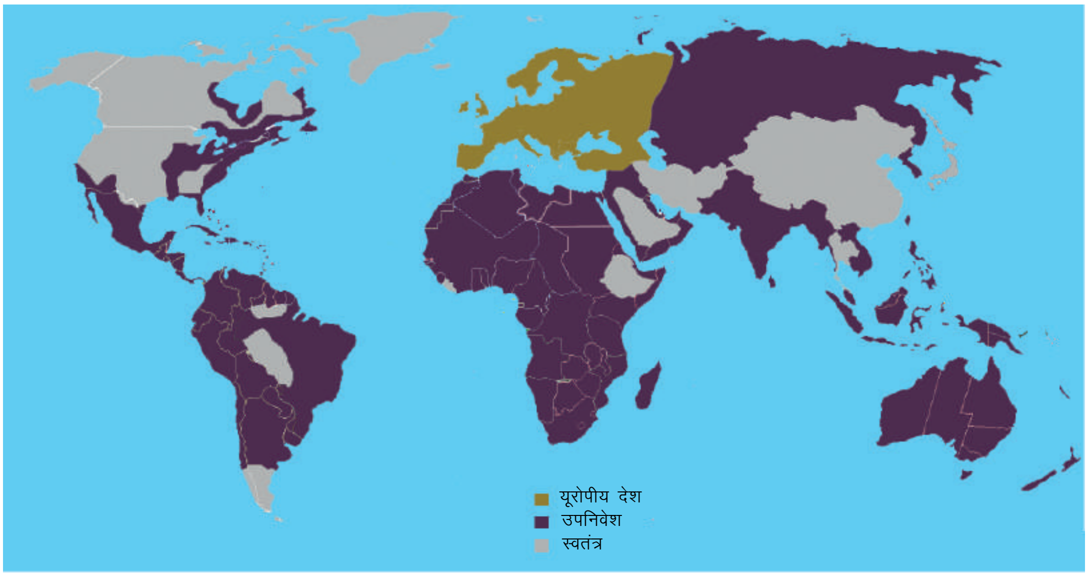

इस मानचित्र को देखने से एक बात स्पष्ट रूप से सामने आती है कि यूरोप के देशों ने एशिया, अफ्रीका एवं अमेरिका के कई देशों को अपने अधिकार में रखा था।

क्या आप अनुमान लगा सकते हैं कि यूरोप के देशों ने हजारों किलोमीटर दूर स्थित दूसरे देशों पर कैसे कब्जा किया होगा? वे ऐसा किस उद्देश्य से कर रहे थे? शेष दुनिया के देश क्या कर रहे होंगे जब यूरोप के देशों ने उन पर कब्जा किया? यूरोपीय देशों के शासन का उनके अधीनस्थ देशों पर क्या प्रभाव पड़ा? वे स्वतंत्र कैसे हुए?

इन सारे प्रश्नों को समझने के लिए समाजविज्ञान की दो अवधारणाओं 'साम्राज्यवाद' और 'उपनिवेशवाद' को समझना होगा। जब कोई देश किसी दूसरे देश पर अपना नियंत्रण स्थापित करता है और उस देश के संसाधनों का अपने फायदे के लिए उपयोग करता है तो वह देश साम्राज्यवादी देश और अधीनस्थ देश उसका उपनिवेश कहलाता है। उदाहरण के लिए भारत पर ब्रिटेन का राज्य था तो ब्रिटेन साम्राज्यवादी देश और भारत उसका उपनिवेश था। आमतौर पर साम्राज्यवादी देश उपनिवेशों के समाज और अर्थव्यवस्था को इस तरह पुनर्गठित करते हैं कि उनका दोहन हो सके।

इसका परिणाम यह होता है कि उपनिवेश में गरीबी बढ़ती है और वहाँ विकास के लिए पूँजी की कमी हो जाती है। इस तरह उपनिवेशों में विकास की प्रक्रिया में बाधा आ जाती है। यही नहीं, साम्राज्यवादी देश उपनिवेशों के लोगों के सोच–विचार पर भी हावी होते हैं ताकि उपनिवेश के लोग अपनी परिस्थितियों को स्वीकार करने लगें। समय के साथ जब वे उपनिवेशी समस्याओं का सामना करने लगते हैं, तो अपने अनुभवों से सीखकर स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने लगते हैं।

पिछले 300 वर्षों का विश्व इतिहास कुछ विकसित देशों के द्वारा एशिया, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया और अमेरिका महाद्वीपों के देशों को अपना उपनिवेश बनाने तथा इन उपनिवेशों के स्वतंत्रता आंदोलनों का इतिहास है। इस इकाई के अध्ययन का उद्देश्य औपनिवेशीकरण की प्रक्रिया एवं प्रभावों को दुनिया के स्तर पर समझना है। पहले हम दक्षिण अमेरिका में यूरोपीय वर्चस्व के बारे में पढ़ेंगे। उसके बाद दक्षिण पूर्व एशिया, चीन, भारत और अफ्रीका में उपनिवेशवाद की प्रक्रिया के बारे में तुलनात्मक रूप से समझने की कोशिश करेंगे।

विश्व के मानचित्र में तालिका में दिए गए देशों को पहचानिए और लिखिए कि वे किन महाद्वीपों में हैं। अनुमान से लिखिए कि इनमें कौन से साम्राज्यवादी देश और कौन उपनिवेश थे।

देश	महाद्वीप	साम्राज्य–उपनिवेश
भारत		
चीन		
अर्जेन्टीना		
पुर्तगाल		
ब्राजील		
इंडोनेशिया		
फ्रांस		
इंग्लैंड (ब्रिटेन)		
जापान		
दक्षिण अफ्रीका		
मैक्सिको		
नाईजीरिया		
जर्मनी		
लाओस		
वियतनाम		
चिली		

मानचित्र में अटलांटिक महासागर, प्रशान्त महासागर, हिन्द महासागर तथा भूमध्य सागर को पहचानिए।

10.1 दक्षिण अमेरिका में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद

'नई धरती' की खोज

भारत की खोज में कोलंबस नामक नाविक स्पेन से तीन जहाजों के साथ निकला और सन् 1492 में अटलांटिक महासागर पार करके अमेरिका के निकट के द्वीप समूहों पर पहुँचा। कोलंबस ने सोचा कि वह भारत पहुँच गया। उसने

उन द्वीपों को 'इन्डीज' और वहाँ के लोगों को 'इन्डियन' कहा। आज हम इन द्वीपों को 'वेस्ट–इंडीज' के नाम से जानते हैं। समय के साथ यह पता चला कि यह एक नया महाद्वीप है भारत नहीं है, लेकिन फिर भी अमेरिका के मूल निवासियों को आज भी 'रेड इन्डियन' कहा जाता है।

10.1.1 दक्षिण अमेरिका पर कब्जा

कुछ वर्षों में यूरोपीय नाविकों ने पूरे अमेरिका महाद्वीप के तट की यात्राएँ कर डाली। इस महाद्वीप को "अमेरिका" नाम दिया गया। इस "नई भूमि" पर कब्जे की संभावना ने स्पेन के पेशेवर सेनापतियों को आकर्षित किया। ये पेशेवर सेनापति यश और धन कमाने के लिए अपनी सेना तैयार करके स्पेन के राजा से अमेरिका में उनकी ओर से नए क्षेत्र जीतने की अनुमति लेते थे। वे अमेरिका में अपने लिए जमीन के बड़े टुकड़े घेरना चाहते थे ताकि वहाँ खेती व पशुपालन किया जा सके। उन दिनों यूरोप में आबादी तेजी से बढ़ रही थी और जमीन की कमी थी। ऐसे में एक पूरा महाद्वीप बसने के लिए मिले तो क्या बात थी!

अमेरिका का एक और आकर्षण था। उन दिनों यूरोप में सोना–चाँदी का अभाव था और यह अफवाह फैली कि अमेरिका में इनके बेशुमार भण्डार और खानें हैं। योद्धा और सेनापति सोना–चाँदी लूटने की आशा में अमेरिका की ओर निकल पड़े।

जमीन और सोना–चाँदी के अलावा इन योद्धाओं के लिए एक और प्रबल प्रेरणा थी। वे मानते थे कि वे अमेरिका के असभ्य लोगों के बीच ईसाई धर्म फैलाएँगे। रोमन कैथोलिक चर्च ने योद्धाओं के साथ कई विशेष पादरियों को भी अमेरिका भेजा ताकि वे वहाँ के लोगों का धर्मांतरण कर सकें।

शुरू में इंग्लैंड के लोग भारत में किन उद्देश्यों से आए थे? उनके और स्पेन के लोगों के अमेरिका जाने के उद्देश्यों की तुलना करें।

उस समय अमेरिका में दो महान साम्राज्य थे– एक था 'इंका साम्राज्य' जो एंडीज पर्वतमाला के दक्षिण में था यह वर्तमान में पेरु एवं चिली देश के हिस्से हैं। दूसरा राज्य था एजटेक जो मेक्सिको में स्थित था। बाकी देशों से संपर्क नहीं होने के कारण वहाँ का तकनीकी विकास अलग था। वहाँ न लोहे का उपयोग होता था, न पहिये वाली गाडियाँ थीं, न घोड़े, न गाय–बैल, न तोप–बन्दूक। वे लोग हल चलाकर खेती नहीं करते थे और ज्यादातर कुदाल से खेती करते थे और इससे विभिन्न तरह के अनाज जैसे मक्का और सब्जियाँ, जैसे –मिर्ची, टमाटर, कद्दू, आलू इत्यादि उगाते थे। लोग छोटे गाँवों में रहते थे जहाँ आमतौर पर सभी लोग एक दूसरे के रिश्तेदार होते थे। गाँव के लोगों को राजाओं व आभिजात्य लोगों के मांगने पर बेगार करनी पड़ती थी। वहाँ पुजारियों का काफी महत्व था। वे सूरज आदि की पूजा करते थे और समय–समय पर जानवर व मनुष्य की बलि चढ़ाते थे।

कोर्टेस नामक सेनापति के साथ स्पेन से आए सैनिकों ने एजटेक साम्राज्य को सन् 1519 में ध्वस्त कर अपने कब्जे में ले लिया। एजटेक राजा मेक्सिको के एक दुर्गम क्षेत्र के किले में रहता था। उसने कोर्टेस और उसके सैनिकों को बिना रोके यह सोचकर आने दिया कि ये लोग उससे शान्तिपूर्वक मिलने व बातचीत करने आ रहे हैं। एजटेक के लोगों का विश्वास था कि उनके कुछ देवता पूर्वी समुद्र से आएँगे और वे यही मानते रहे कि स्पेन के लोग ही देवता हैं। इस सोच के कारण भी उन्होंने कोर्टेस को रोकने का प्रयास नहीं किया। राजा ने कोर्टेस का स्वागत किया किन्तु अचानक कोर्टेस ने राजा को उसके ही महल में बन्दी बना लिया और भयंकर लूटपाट और मारकाट मचायी। स्पेनी लोगों के साथ आई चेचक जैसी महामारी भी अपना काम कर गई, एजटेक के सैनिक बीमारियों के कारण मारे गए या लड़ने की स्थिति में नहीं रहे। इस युद्ध में कोर्टेस की जीत के कई कारण रहे– स्पेनियों के हथियार, खास कर घोड़े, बंदूकें और तोपें एजटेक तीरों और भालों से ज्यादा असरदार थे। एजटेक राज्य को स्पेन का एक प्रांत घोषित किया गया। ज्यादातर नागरिकों को जबरदस्ती ईसाई धर्म में दीक्षित किया गया और उनसे बेगार करवाई

चित्र 10.1 : हेर्नण्डो कोर्टेस

जाने लगी। लगभग इसी कहानी को दक्षिण अमेरिका के इंका साम्राज्य की राजधानी में सन् 1533 में पिज्जारो द्वारा दोहराया गया। स्पेन के राजा ने इन दोनों राज्यों को अपना नया प्रांत घोषित कर वहाँ पर अपने विश्वासपात्र गवर्नर की नियुक्ति कर दी।

पुर्तगाल के नाविक भी कोलंबस की तरह भटकते हुए ब्राजील के तट पर पहुँचे। लेकिन ब्राज़ील प्रदेश में कोई स्थानीय राज्य नहीं था, वहाँ केवल कई शिकारी कबीले रहते थे। पुर्तगालियों ने उस इलाके पर अपना कब्जा जमा लिया और स्पेनियों की ही तरह वहाँ अपने लोगों को बसाकर खेती करने का प्रयास किया।

स्पेन के चन्द लोग कैसे इतने बड़े राज्यों पर इतनी जल्दी और आसानी से विजयी हुए होंगे– क्या आपको कोई कारण समझ में आ रहा है? इसी तरह इंग्लैंड के लोग मुगल साम्राज्य पर इतनी आसानी से विजयी क्यों नहीं हुए होंगे?

10.1.2 विजय, उपनिवेश और दास–व्यापार

अब स्पेन के पास अमेरिका में स्पेन की भूमि से कई गुना भूमि एवं प्राकृतिक संसाधन कब्जे में था। एक तरफ इस क्षेत्र मे जंगलों को साफ कर खेती करने की कोशिश की जाने लगी। दूसरी ओर इस भू–भाग में फैली खनिज संपदाओं, खासकर सोने और चाँदी का खनन करने की कोशिश शुरू हुई। इन प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के लिए स्पेनी विजेताओं ने स्पेन और यूरोप के अन्य हिस्सों से लोगों को आकर बसने के लिए प्रोत्साहित किया।

जल्दी ही अमेरिका के पूर्वी तट पर बहुत सी यूरोपीय बस्तियाँ बसने लगीं। इन यूरोपीय लोगों में ज्यादातर लोग छोटे किसान एवं खेतिहर मजदूर थे जो बेहतर जिन्दगी की तलाश में अमेरिका आए थे। जंगल को साफ कर उसे खेती लायक बनाने और खेती करने के लिए मानव श्रम की आवश्यकता थी। इसके लिए अमेरिका के मूल निवासियों से बेगार करवाई जाने लगी। प्रत्येक गाँव को अपने युवाओं को स्पेनी लोगों के खेतों या खदानों पर काम करने के लिए कई महीनों के लिए भेजना पड़ता था।

दुर्भाग्यवश ज्यादातर स्थानीय निवासी धीरे–धीरे बेगार, युद्ध और महामारियों की चपेट में आकर मारे जा रहे थे। चूँकि अमेरिका अब तक बाकी देशों के संपर्क में नहीं था। वहाँ के लोग एशिया और यूरोप की बीमारियों के आदी नहीं थे और उनका प्रतिरोध करने की शक्ति उनमें नहीं थी। इस कारण चेचक जैसी बीमारी वहाँ महामारी बनकर विनाश लीला कर गई। मेक्सिको की आबादी सन् 1519 में लगभग ढ़ाई करोड़ थी। यह सन् 1568 तक कम होकर 26 लाख रह गई। इसी तरह पेरू की आबादी सन् 1532 में 90 लाख से कम होकर सन् 1570 तक 13 लाख हो गई। यानी जहाँ 100 लोग रहते थे वहाँ केवल 10–15 लोग ही बचे।

मानचित्र 10.2 : लैटिन अमेरिका

लैटिन अमेरिका नाम कैसे पड़ा?

अमेरिका महाद्वीप के दक्षिणी भाग पर मुख्य रूप से स्पेन, पुर्तगाल और फ्रांस देशों का आधिपत्य स्थापित हुआ था जबकि उत्तरी अमेरिका पर इंग्लैंड का राज्य बना। स्पेन, पुर्तगाल और फ्रांस की भाषाएँ मूलतः लैटिन भाषा से निकली हैं अतः इन्हें 'लैटिनो' भाषा कहते हैं। चूंकि दक्षिणी अमेरिका लैटिनो भाषायी संस्कृतियों के प्रभाव क्षेत्र में था, इसलिए इसे लैटिन अमेरिका कहा जाता है। इसके विपरीत उत्तरी अमेरिका पर अंग्रेजी का वर्चस्व था।

इस बड़े भू–भाग पर मानव श्रम की पूर्ति के लिए अफ्रीका से बड़े पैमाने पर दासों को लाया जाने लगा। जैसे–जैसे यूरोपीय लोग अमेरिका में नए इलाकों को अपने अधीन करते गए वैसे–वैसे अफ्रीका से दासों के व्यापार मेंअधिक वृद्धि हुई। अटलांटिक दास व्यापार सन् 1451 से सन् 1870 तक चला। इस बीच लगभग एक करोड़ अफ्रीकी गुलाम बलपूर्वक अमेरिका लाए गए। इनमें से स्पेनिश अमेरिका में 16 लाख, ब्राज़ील में 36 लाख, संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटिश उपनिवेशों में 20 लाख और फ्रांसीसी कैरिबियाई क्षेत्र में 16 लाख गुलाम लाए गए।

चित्र 10.2 चांदी का खनन सन् 1596 का चित्र

इस प्रकार अमेरिका महाद्वीप में एक मिश्रित आबादी रहने लगी जिसमें मूलनिवासी इन्डियन, अफ्रीकी तथा यूरोपीय लोग सम्मिलित थे। कई यूरोपीय लोगों ने अपनी नस्लीय पहचान को बनाए रखने का प्रयास किया, मगर समय के साथ लोगों की संस्कृति में परस्पर आदान–प्रदान होने लगा। वहाँ के मूल निवासियों ने प्रायः कैथोलिक ईसाई धर्म को अपना लिए हालाँकि कई मूलनिवासियों ने अभी भी अपनी पारंपरिक रीतियों को बनाए रखा।

स्पेन के शासकों द्वारा अमेरिका के कब्जे वाले भू–भाग को बड़ी–बड़ी जागीरों में बांटा गया। इन जागीरों पर स्थानीय निवासियों को बेगार करनी पड़ती थी। ऐसी जागीरों को राजा विभिन्न विजेता सेनापतियों या स्पेन के उच्च वर्ग के लोगों को उपभोग करने के लिए देते थे। इन जागीरों पर उनके मालिक अफ्रीकी दासों, स्थानीय जनजाति एवं स्पेन से आए छोटे किसानों और चरवाहों से खेती करवाने लगे। अफ्रीकी दासों और स्थानीय जनजातियों की मेहनत से इस भू–भाग पर खेती और पशुपालन का खूब विकास हुआ। जल्दी ही यह भूभाग यूरोप को शक्कर और माँस का निर्यात करने लगा।

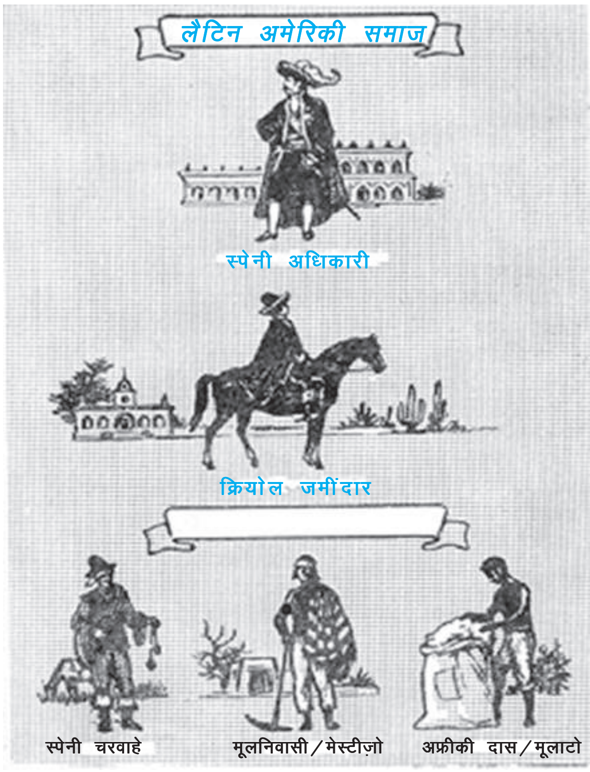

चित्र 10.3 : लैटिन अमेरिकी समाज

कृषि के अलावा इस भूभाग पर खनन उद्योग का भी खूब विकास हुआ। चाँदी की बहुत बड़ी–बड़ी खानें खोली गईं जिनसे व्यापक पैमाने पर चाँदी निकाली जाने लगी। इसके अलावा ताँबा और टीन का भी खनन काफी तेजी से बढ़ा। इन खानों के आसपास बड़े–बड़े शहर बसने लगे।

10.1.3 शासन एवं सामाजिक संरचना

स्पेनी साम्राज्य का नियंत्रण स्पेन स्थित परिषद् द्वारा होता था। यह परिषद् स्पेन से अमेरिका के प्रशासन के लिए उच्चतम अधिकारियों को भेजती थी। ये स्पेनी मूल के होते थे जो स्पेन के आभिजात्य वर्ग के सदस्य होते थे।

इसके बाद अमेरिकी उपनिवेशी समाज में वे लोग आते

थे जो मूलतः स्पेनी थे लेकिन अमेरिका में बस गए थे और जिनका जन्म लैटिन अमेरिका में हुआ था। इसमें स्पेनी मूल के जमींदार एवं अन्य सामाजिक समूह आते थे। इस समूह को क्रियोल (Creole) कहा जाता था। ये लोग उपनिवेशी शासन व्यवस्था में राजनीतिक रूप से महत्वपूर्ण पदों तक नहीं जा सकते थे। वे मुख्यतः खेती, पशुपालन, व्यापार, छोटे कुटीर उद्योग–धंधे आदि करते थे।

इसके नीचे मेस्टीज़ो (Mestizo) होते थे। यह समूह यूरोपीय एवं अमेरिकी मूलनिवासियों की मिश्रित सन्तानों का था। इसके भी नीचे मुलाट्टो (Mulatto) होते थे जो यूरोपीय एवं अफ्रीकी दासों के मिश्रित समूह थे। इनका काम मुख्य रूप से मजदूरी करना था।

इस सामाजिक संरचना में सबसे नीचे अमेरिकी मूलनिवासी आते थे। इन्हें शासन व्यवस्था में किसी भी तरह का अधिकार नहीं था। उन्हें सरकार को भारी लगान देने के साथ–साथ जमींदारों के खेतों तथा खदानों में बेगारी करनी पड़ती थी।

इनके नीचे अफ्रीकी दास होते थे जिन्हें तरह–तरह के शारीरिक श्रम के काम करने पड़ते थे। उनके कोई अधिकार नहीं थे और उनके मालिक उनसे मनमाना व्यवहार करते थे।

जो लोग स्पेन से आकर अमेरिकी उपनिवेशों पर हुकूमत चलाते थे उनसे उपनिवेश के हर तबके के लोग दुखी थे। स्पेन से कुछ समय के लिए आए लोग तेजी से पैसे कमाकर स्वदेश लौटने की कोशिश में रहते थे और अमेरिका में रहने वाले स्पेनी या अफ्रीकी या मूल निवासियों की समस्याओं पर ज्यादा ध्यान नहीं देते थे। क्रियोल समूह के लोग धनी और शिक्षित थे वे बाकी उपनिवेशी समाज का नेतृत्व कर रहे थे।

क्रियोल लोगों को स्पेनी उच्च अधिकारियों से क्या शिकायतें हो सकती थीं?

अफ्रीकी दास और अमेरिकी मूलनिवासी आदि को शासन में भागीदारी क्यों नहीं दी जाती होगी? क्या आप इसका कोई कारण सोच सकते हैं?

10.1.4 स्पेन द्वारा अमेरिकी उपनिवेशों का दोहन

हमने पढ़ा कि लैटिन अमेरिकी देशों पर शासन करने का अधिकार स्पेन में स्थित परिषद् के पास रहता था। परिषद् का उद्देश्य था इस भू–भाग के प्राकृतिक संसाधनों का व्यवस्थित दोहन जिससे स्पेन को ज्यादा–से–ज्यादा फायदा हो सके।

अमेरिका में किसान और जमींदार व्यापारिक फसल जैसे गन्ना या कपास उत्पादन करते थे। जब किसान अपनी फसल का उत्पादन कर लेते थे तो उन्हें अपनी फसलों को केवल परिषद द्वारा निर्धारित स्पेनी व्यापारियों को ही सस्ते में बेचना होता था। इससे खेती से होने वाले फायदे की रकम किसानों के पास जमा नहीं हो पाती थी। इसके कारण किसान खेती की उन्नति में पूँजी नहीं लगा पाते थे। फलतः इस भू–भाग में कृषि का आधुनिकीकरण नहीं हो पाया।

इसी तरह लैटिन अमेरिकी खदानों से निकलने वाले सोने–चाँदी और धातुओं पर राजा का अधिकार माना जाता था और वह जहाजों के द्वारा स्पेन भेज दिया जाता था। लैटिन अमेरिका की खदानों से निकली धातु का उपयोग स्पेन में होता था। उपनिवेशों में किसी भी तरह के उद्योग धंधों का विकास होने नहीं दिया गया। कोशिश यह रहती थी कि सभी वस्तुओं की आपूर्ति स्पेन से की जाए।

कल्पना करें कि आप एक अमेरिकी मूलनिवासी हैं। कल्पना करें कि आप एक स्पेनी पशुपालक हैं जो व्यापारिक उद्देश्य से पशुपालन करते हैं। कल्पना करें कि आप अफ्रीकी दास हैं जो स्पेनी जमींदारों के खेतों पर काम करते हैं। इन तीनों रूपों में आपको स्पेन के शासन से किन–किन बातों पर शिकायत होती?

10.1.5 स्पेनी उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष

यूं तो स्पेनी हुकूमत के खिलाफ कई संघर्ष और विद्रोह होते रहे, खासकर मूल निवासियों व अफ्रीकी दासों द्वारा, लेकिन वे असफल रहे। इस बीच उपनिवेशों के सभी तबके के लोगों को स्पेन के शासन से परेशानी बढ़ने लगी। लैटिन

अमेरिका में रहने वाले यूरोपीय मूल के लोग नए लोकतांत्रिक व राष्ट्रवादी विचारों से परिचित थे। सन् 1776 की अमेरिकी क्रांति और सन् 1789 की फ्रांसीसी क्रान्ति से लैटिन अमेरिका के देश भी प्रभावित हुए और उन्होंने अपनी आजादी के लिए नई कोशिश शुरू की।

चित्र 10.4 : तोसां ले ओवरचुर

हैती – लैटिन अमेरिका में सबसे पहला सफल विद्रोह फ्रांस के एक उपनिवेश, हैती द्वीप में सन् 1791 ई. में हुआ। फ्रांसीसी क्रांति से प्रेरित होकर करीब एक लाख अफ्रीकी दासों ने विद्रोह कर दिया। एक भूतपूर्व गुलाम, तोसां ले ओवरचुर (Tousaint L'Overture) ने विद्रोही सेना का सफल नेतृत्व किया। इसके बाद दास प्रथा को हमेशा के लिए समाप्त कर दिया गया और सभी दासों को मुक्ति दी गई। सन् 1802 में हैती एवं फ्रांस के बीच समझौता हुआ। लेकिन नेपोलियन के अधिकारियों ने तोसां ले ओवरचुर को धोखे से गिरफ्तार कर लिया और उसे बंदी बनाकर फ्रांस भेज दिया जहाँ उसका देहांत हो गया। फिर भी लोगों ने संघर्ष जारी रखा और सन् 1804 में हैती ने अपने आप को मुक्त कर लिया और एक स्वतंत्र राष्ट्र बन गया। यह विश्व इतिहास का पहला सफल दास विद्रोह था।

लैटिन अमेरिका का स्वतंत्रता संघर्ष– हैती के विद्रोह के बाद स्पेनी लैटिन अमेरिका में भी सन् 1811 से विद्रोह शुरू हुआ जिसका नेतृत्व ज्यादातर क्रियोल समूह के लोगों ने किया। इनमें से प्रमुख थे सीमोन बॉलिवार एवं जोस मार्टिन। आपको याद होगा, क्रियोल समूह लैटिन अमेरीका में सबसे कम शोषित समूह था। बहुत से क्रियोल यूरोपीय विश्वविद्यालयों से पढ़ाई करके आए हुए थे और आधुनिक लोकतांत्रिक विचारों से परिचित थे।

सीमोन बॉलिवार ने क्रियोल, अफ्रीकी दासों एवं छोटे किसानों की एक सेना बनाई और स्पेन के खिलाफ सन् 1811 में बगावत शुरू कर दी। इस सेना के साथ–साथ बॉलिवार ने स्पेनी शासन के खिलाफ अनवरत युद्ध किया जिनमें कई बार उसकी हार हुई। लेकिन सन् 1819 में वर्तमान कोलम्बिया को उसने स्पेनी शासकों से जीत लिया। सन् 1821 में वर्तमान वेनेजुएला भी मुक्त हो गया। इसके बाद वह दक्षिण में एक्वाडोर पहुँचा। जहाँ वह दूसरे लैटिन अमेरिकी नेता जोस मार्टिन की सेना के साथ हो गया।

लैटिन अमेरिका के दक्षिणी हिस्से जिसको हम वर्तमान में अर्जेन्टीना कहते हैं, में विद्रोह का नेतृत्व जोस मार्टिन ने किया। उन्होंने अर्जेन्टीना और चिली को स्वतन्त्र करा दिया। सन् 1824 में बॉलिवार और मार्टिन की संयुक्त सेना ने पेरु से भी स्पेनी सेना को निकाल बाहर किया। उसी समय ब्राज़ील में भी लोगों ने पुर्तगाल से अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी थी। इस तरह पूरा लैटिन अमेरिका यूरोपीय शासन से स्वतंत्र हो गया। सीमोन बॉलिवार पूरे दक्षिणी अमेरिका के क्रांतिकारी मुक्तिदाता के रूप में जाने जाते हैं। जहाँ–जहाँ उनकी सत्ता स्थापित हुई वहाँ दास प्रथा और बेगार प्रथा को समाप्त किया गया जिससे अफ्रीकी दास और इंडियन दोनों उनकी क्रांति के साथ हो गए। उनका वादा था कि बड़ी जमींदारियों को तोड़कर छोटे किसानों में जमीन बांटी जाएगी लेकिन यह क्रियोल जमींदारों के विरोध के चलते संभव नहीं हो पाया।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के किस नेता की आप सीमोन बॉलिवार से तुलना कर सकते हैं?

हैती के स्वतंत्रता संघर्ष और दक्षिण अमेरिका के संघर्ष में क्या समानता और अन्तर आपको दिखता है?

10.2 एशिया में उपनिवेशवाद

एशियाई सूती और रेशमी कपड़े, मसाले आदि खरीदने के लिए यूरोप से व्यापारी एशिया आते थे। पश्चिमी यूरोप के व्यापारी भारत पहुँचने के लिए नए समुद्री मार्ग की खोज में लग गए और अंततः पुर्तगाल का नाविक वास्कोडिगामा जहाज से अफ्रीका का चक्कर लगाकर सन् 1498 में भारत पहुँचा। इससे पहली बार यूरोप से भारत और चीन के लिए समुद्री मार्ग से आना–जाना संभव हो गया। यूरोपीय नाविक जब अमेरिका गए थे तो उन्हें सैन्य दृष्टि से किसी

शक्तिशाली राज्य का सामना नहीं करना पड़ा था। लेकिन तब एशिया में कई ऐसे राज्य थे जो उस समय के किसी भी यूरोपीय साम्राज्य से बड़े और सैन्य दृष्टि से ज्यादा मजबूत थे। यूरोपीय शक्तियाँ एशिया के इन शक्तिशाली राजाओं को सीधे युद्ध में हराने में सक्षम नहीं थीं।

चित्र 10.5 : अपनी सेना के साथ दुर्गम एंडीज पर्वत पार करते सीमोन बॉलिवार

हिन्द महासागर के तटीय प्रदेशों में पुर्तगालियों ने कई बन्दरगाहों पर (जैसे भारत में गोवा, पश्चिम एशिया में हरमुज एवं दक्षिण पूर्व एशिया में मलक्का) अपने सैन्य व व्यापारिक अड्डे स्थापित किए। फिर उन्होंने हिन्द महासागर पर चलने वाले व्यापारी जहाजों पर लगातार हमला किया और उन्हें कर चुकाने पर विवश किया। उन्होंने इस तरह एक समुद्री साम्राज्य स्थापित करने का प्रयास किया। यह व्यवस्था तब जाकर टूटी जब ब्रिटेन, हॉलैंड और फ्रांस के व्यापारियों ने हिन्द महासागर में अपने व्यापारिक अड्डे बना लिए और पुर्तगाल के आधिपत्य को चुनौती दी।

10.2.1 इंडोनेशिया का हॉलैंड द्वारा उपनिवेशीकरण

पूरब के देशों से व्यापार में मुनाफे के लिए पुर्तगाल के साथ–साथ अन्य यूरोपीय देश जैसे फ्रांस, इंग्लैंड और हॉलैंड की व्यापारिक कंपनियाँ भी आगे आने लगीं। हिन्द महासागर में पुर्तगाली वर्चस्व को तोड़ने में हॉलैंड के डच लोगों को सफलता मिली और वे दक्षिण–पूर्व एशिया में अपना उपनिवेश स्थापित करने में सफल रहे। (हॉलैंड या नीदरलैंड के लोगों को डच कहते हैं क्योंकि वे डच भाषा बोलते हैं।)

सन् 1602 में डच लोगों ने एशिया से व्यापार करने के लिए डच ईस्ट इंडिया कंपनी स्थापित की। हिन्द महासागर के व्यापार पर पुर्तगालियों के नियंत्रण को तोड़ने के लिए इस कंपनी को कई युद्ध लड़ने पड़े। अन्त में उन्होंने इंडोनेशिया के जावा द्वीप के हिस्सों पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। याद रहे कि वहीं मलक्का में पुर्तगालियों का ठिकाना था। डच कंपनी ने प्रयास किया कि वह इंडोनेशिया में उगने वाले सारे मसालों के व्यापार पर एकाधिकार जमाए ताकि उसे यूरोप में मनमानी कीमत पर बेच सके और मुनाफा कमा सके। उसका अभी उन द्वीपों पर अपना राज्य स्थापित करने का उद्देश्य नहीं था। 17वीं सदी में जावा द्वीप समूह पर 'मातरम वंश' का शासन था। हालाँकि इस राज्य ने लगातार प्रयास किया कि वह डच कंपनी के ठिकाने को हटाए लेकिन वह असफल रहा और वहाँ एक तरह का दोहरा नियंत्रण बना रहा। जावा द्वीप के कुछ भागों पर डच कंपनी का नियंत्रण था और बाकी पर मातरम सुल्तानों का था। मसालों के व्यापार पर डच कंपनी को कई एकाधिकार व रियायतें मिली हुई थीं।

मसालों तथा गन्ने के उत्पादन को बढ़ाने के लिए डच कंपनी के दबाव में इंडोनेशिया के वन कटे और उनकी जगह खेत और बागान बने जहाँ इनका उत्पादन होने लगा। सन् 1700 तक डचों ने योजनाबद्ध तरीके से मसाले की खेती एवं उसके व्यापार पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित कर लिया था। अब सिर्फ मसालों के व्यापार पर ही नहीं बल्कि उनके उत्पादन पर भी उनका पूर्ण नियंत्रण था।

सन् 1800 में डच ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन को समाप्त कर डच सरकार ने इंडोनेशिया का शासन सीधे अपने हाथ में ले लिया और सन् 1830 तक जावा द्वीप पर अपना पूरा अधिकार स्थापित कर लिया। डच सरकार ने अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए जावा के किसानों को मजबूर किया कि वे कॉफी, रबड़ या गरम मसाले उगाकर शासन को

चित्र 10.6 : जावा में एक चाय बागान

बहुत ही कम दर पर दें। सरकार ने इन्हें विश्व बाजार में बेचकर भारी मुनाफा कमाया। छोटे किसानों को भी खाद्यान्न की जगह इन फसलों को उगाना पड़ा। परिणामस्वरूप वहाँ खाद्य संकट उत्पन्न हो गया और अकाल की स्थिति पैदा हो गई। इसके खिलाफ बहुत से विद्रोह हुए लेकिन डच शासन ने इन विद्रोहों को कठोरता के साथ दबा दिया। यह परिस्थिति सन् 1870 तक बनी रही।

बागान अर्थव्यवस्था

सन् 1870 के बाद इंडोनेशिया में व्यापक पैमाने पर डच पूँजी का निवेश बागान (Plantation) में हुआ। हजारों एकड़ के जंगलों को काटकर उस जमीन पर कोई एक व्यापारिक फसल, जैसे– रबर, कॉफी, चाय, काली मिर्च या गन्ने को ज्यादा मात्रा में उगाये जाने को बागान कहते हैं। उत्पादन को बेचने के लिए तैयार करना बागान के ही कारखानों में होता है। इनमें सैकड़ों मजदूर सपरिवार रहते हैं और दिन–रात काम करते हैं। इन्हें मजदूरी दी जाती है। कई इंडोनेशिया द्वीपों में इस तरह के बागान स्थापित हो गए। इससे इंडोनेशियाई जल्दी ही कोको, चाय, कॉफी, रबड़ इत्यादि वस्तुओं का प्रमुख निर्यातक बन गया। बागानों के मालिक ज्यादातर यूरोपीय होते थे और मजदूर स्थानीय लोग तथा चीन और भारत से लाए गए लोग थे। इस तरह इंडोनेशिया में एक मिश्रित समाज का विकास हुआ।

(हमने बागानों के बारे में कक्षा 6 में पढ़ा है। उसे याद करें)

क्या आपके राज्य में कहीं पर भी इस तरह के बागान हैं?

भारत में कौन सी फसल आज भी ऐसे बागानों में उगाई जाती है और किन राज्यों में? उनके बारे में पता कीजिए।

पंद्रहवीं और सोलहवीं सदी में एशिया में यूरोपीय देश क्यों अपना साम्राज्य नहीं बना पाए, सोच कर बताएँ।

मसालों के व्यापार पर एकाधिकार के लिए पुर्तगालियों और डचों ने क्या किया?

पुर्तगाली समुद्री साम्राज्य से आप क्या समझते हैं? इसका एशिया के व्यापारियों पर क्या प्रभाव पड़ा होगा?

सन् 1830 से 1870 तक डच राज्य की कृषि नीति का इंडोनेशिया के किसानों पर क्या प्रभाव पड़ा?

बागान के लिए इंडोनेशिया में व्यापक पैमाने पर भूमध्य रेखीय वन काटे गए। इसका वहाँ के लोगों के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा होगा?

10.2.2 चीन में उपनिवेशवाद

19वीं सदी में चीन

जनसंख्या और क्षेत्रफल दोनों के हिसाब से चीन दुनिया का सबसे बड़ा देश था। 17वीं सदी में चीन में मांचू वंश का शासन आया। मांचू शासनकाल में चीन के साम्राज्य की सीमाओं में लगातार विस्तार हुआ और वर्तमान चीन के अलावा मंगोलिया, तिब्बत इत्यादि इस राज्य के हिस्से बन गए। इसके अलावा चीन के शासकों का प्रभाव क्षेत्र कोरिया, वियतनाम आदि देशों तक फैला हुआ था। ये सभी राज्य चीन के सम्राट को 'नज़राना' भेंट करते थे।

मांचू साम्राज्य मुख्यतः एक व्यवस्थित नौकरशाही के द्वारा संचालित था। इसमें नियुक्ति परीक्षा के माध्यम से होती थी। कोई भी इस परीक्षा में शामिल होकर कामयाब हो सकता था। चूँकि इसकी तैयारी काफी कठिन थी, उसमें केवल संपन्न कुल के लोग ही भाग ले पाते थे। चीन का समाज मुख्यतः एक खेतिहर समाज था। ज्यादातर आबादी अपनी आजीविका के लिए खेती पर ही निर्भर थी। राज्य की आय का मुख्य साधन खेती पर लगाया गया लगान था। लगान की वसूली के लिए अधिकारियों का एक विशाल समूह तैनात था।

कृषि के अतिरिक्त चीन में खनन एवं विनिर्माण उद्योग भी विकसित था। चीन में नमक, चाँदी, टीन और लोहे की विस्तृत खानें थीं जहाँ पर चीन के खुद के उपयोग लायक खनिज– अयस्क प्राप्त हो जाता था। चीनी मिट्टी के बर्तन और रेशम के कपड़ों के लिए चीन हमेशा से प्रसिद्ध रहा था। पूरी दुनिया से व्यापारी चीन की इन वस्तुओं को खरीदने के लिए आते थे। चीन में औषधि के रूप में पिया जाने वाला एक पेय पदार्थ–चाय 18वीं सदी में यूरोप में बहुत लोकप्रिय हुआ। इसके बाद चाय के व्यापार के लिए भी चीन में यूरोपीय व्यापारी आने लगे। संक्षेप में अगर कहें तो चीन अपनी जरूरत की सारी वस्तुओं की पूर्ति खुद से ही कर लेता था। यह एक तरह से आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था थी।

चीन के शासक चीन को बाहरी देशों के किसी भी तरह के प्रभाव से मुक्त रखना चाहते थे। इसलिए उन्होंने विदेशी व्यापार पर कड़ा नियंत्रण स्थापित कर रखा था। विदेशों के साथ व्यापार करने के लिए तीन बंदरगाह अधिकृत कर रखे थे– कैन्टन, मकाओ और निंगबो। यूरोपीय व्यापारी चीन में इन्हीं बन्दरगाहों तक जा सकते थे। यहाँ से चीन के स्थानीय व्यापारी समूह विदेशी माल को पूरे चीन में ले जाते थे और चीन की जो वस्तुएँ उन्हें चाहिए होती थीं उसे विदेशी व्यापारियों को देते थे। इन्हीं बन्दरगाहों में यूरोपीय बस्तियाँ थीं।

अंग्रेजी व्यापार और अफीम युद्ध

यूरोपीय व्यापारी लगातार यह कोशिश कर रहे थे कि उन्हें चीन से व्यापार करने का मौका मिले। चीन के साथ व्यापार करने में भी सबसे पहले डच कंपनी को सफलता मिली। अंग्रेजों ने जब चीन में व्यापार करना शुरू किया तो वे चाहते थे कि उन्हें कुछ रियायतें मिले लेकिन सन् 1830 तक यह संभव नहीं हो सका।

चीन के साथ यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों की सबसे बड़ी समस्या यह थी कि उनके पास चीन में बेचने के लिए कुछ नहीं था। फलतः यूरोपीय व्यापारियों को अपने देश से सोना–चाँदी चीन में लाना पड़ता था। इस तरह व्यापार संतुलन हमेशा चीन के पक्ष में बना रहता था। इस बीच अंग्रेजों का शासन भारत पर बना। अंग्रेज भारत से अफीम खरीदकर चीन में बेचने लगे और इससे मिले धन से वे चीन से चाय, रेशम आदि खरीदने लगे। इस प्रकार उन्हें भुगतान के लिए इंग्लैंड से सोना–चाँदी लाने की जरूरत नहीं रही। उन्होंने कोशिश की कि चीन में ज्यादा–से–ज्यादा अफीम बिके ताकि उन्हें अधिक लाभ हो।

चीन में अफीम का व्यापार अवैध था और मूलतः तस्करी के द्वारा होता था। कैन्टन बंदरगाह से यह अफीम भ्रष्ट चीनी अफसरों व व्यापारियों के द्वारा चीन के अन्य हिस्सों में पहुँचाया जाता था। अफीम के इस व्यापार और अन्दरूनी इलाकों तक इसकी सप्लाई का कुछ ही सालों में यह असर हुआ कि बहुत बड़ी संख्या में चीन के लोग अफीम की लत के शिकार हो गए।

चित्र 10.7 : अफीम युद्ध – एक चीनी चित्र

जब चीनी शासन को इसके बारे में पता चला तो उन्होंने अंग्रेजों के व्यापारिक अधिकार को समाप्त कर दिया और कैन्टन से उन्हें निष्कासित करने का आदेश दिया। इसके कारण सन् 1839–42 में चीन और अंग्रेजों के बीच युद्ध हुआ जिसे 'प्रथम अफीम युद्ध' कहते हैं। इस युद्ध में चीन की पराजय हुई और सन् 1842 में उसे एक अपमानजनक संधि (समझौता) करने पर विवश होना पड़ा। इस संधि को 'नानकिंग की संधि' कहते हैं। इस संधि के अनुसार अंग्रेजों को पूरे चीन में बिना किसी रुकावट के व्यापार का अधिकार मिला। दूसरा, अंग्रेजों को चीनी भूमि पर अपनी व्यापारिक बस्तियाँ बसाने की अनुमति मिली जिसमें अंग्रेजों का अपना कानून चल सकता था। अर्थात् वहाँ चीन की कानून व्यवस्था न चलकर अंग्रेजों का कानून चला। इसके अलावा चीन ने ब्रिटेन को एक बहुत बड़ी राशि हरज़ाने के रूप में दी। इस संधि में एक और शर्त यह जोड़ी गई कि अगर चीन किसी दूसरी यूरोपीय कंपनी को किसी भी तरह की व्यापारिक छूट देगा तो वह स्वतः ही अंग्रेजों को भी मिल जाएगी।

चीन पर बढ़ता हुआ विदेशी प्रभाव

अफीम युद्ध की हार से चीनी सैन्य शक्ति की कमजोरियों के बारे में दुनिया को पता चल गया था। अन्य यूरोपीय शक्तियाँ भी चीन में अपना वर्चस्व स्थापित करने की कोशिश करने लगीं। सन् 1844 में चीन ने फ्रांस और अमेरिका के साथ भी नानकिंग की संधि की तरह ही संधियाँ कीं। इन संधियों में फ्रांस एवं अमेरिका को भी चीन के शासकों से बहुत सी व्यापारिक रियायतें मिली। कुछ इसी तरह की संधि दूसरे यूरोपीय देशों जैसे रूस, जर्मनी इत्यादि ने भी चीन के साथ कीं। फलस्वरूप चीन के तटीय इलाकों में अलग–अलग देशों के प्रभाव क्षेत्र बन गए।

खुले द्वार की नीति

चीन के पूर्व में एक छोटा सा देश है जापान। सन् 1895 में जापान ने चीन पर आक्रमण किया जिसमें उसकी विजय हुई। अब जापान ने भी चीन को उसी प्रकार की संधि करने को विवश किया जैसे बाकी यूरोपीय देशों के साथ हुई थी। इस तरह चीन का एक बड़ा हिस्सा अलग–अलग यूरोपीय एवं एशियाई साम्राज्यवादी देशों के प्रभाव में आ गया।

संयुक्त राज्य अमेरिका लंबे समय से चीन में व्यापार कर रहा था। उसे चिंता हुई कि अगर सभी यूरोपीय देशों ने चीन को अपने उपनिवेशों में बाँट लिया तो अमेरिका का व्यापार बंद हो जाएगा। अमेरिका ने इस तरह चीन के भिन्न–भिन्न प्रभाव क्षेत्रों में बांटने का विरोध किया और इसके स्थान पर खुले (मुक्त) द्वार की नीति की घोषणा की। इसका अर्थ था कि सभी देश चीन में व्यापार करेंगे और किसी भी देश का कोई निश्चित प्रभाव क्षेत्र नहीं होगा। थोड़ी न–नुकुर के बाद सारे देशों ने इस संधि को मान लिया।

लेकिन ऐसा क्यों हो रहा था? सन् 1850 तक फ्रांस, जर्मनी एवं अमेरिका में औद्योगीकरण हो चुका था और ये देश सभी नए संभावित बाजारों पर कब्जा करना चाहते थे। हमने ऊपर पढ़ा है कि उस समय चीन की जनसंख्या सबसे ज्यादा थी। बड़ी जनसंख्या का अर्थ बड़ा बाजार भी होता है। इसलिए दुनिया के सारे औद्योगीकृत देश चीन को अपने प्रभाव में लाना चाहते थे। एक दूसरी महत्वपूर्ण वजह थी पूँजी के निवेश के लिए नया क्षेत्र तलाशना। औद्योगीकरण के पश्चात हुए फायदों से यूरोप में काफी बड़ी मात्रा में पूँजी जमा हो गई थी जिसे वे उपनिवेशों में रेल लाईनें बिछाने व खदान स्थापित करने में लगाना चाहते थे।

चित्र 10.8 यूरोपीय और जापानी साम्राज्यों द्वारा चीन का बँटवारा – एक कार्टून

क्या आप सोचकर बता सकते हैं कि औद्योगिक देश उपनिवेशों में रेल लाईनों और खदानों में ही क्यों धन लगाना चाहते थे? वे कारखाने क्यों नहीं लगा रहे थे?

इस तरह के विदेशी हस्तक्षेप का चीनी समाज और अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ा होगा?

विदेशी नियंत्रण का विरोध

हमने देखा कि यूरोपीय देश चीन पर सीधा कब्जा न करके अपने हित साध रहे थे। चीन का शासन अभी भी चीन के ही सम्राट के हाथों में था। लेकिन बहुत बड़े क्षेत्र पर उसका हुक्म नहीं चलता था। ऊपर से उसे बहुत बड़ी रकम हरज़ाने के रूप में देनी पड़ती थी जिसके कारण आम लोगों पर कर का भार बढ़ता गया।

चित्र 10.9 : विदेशी सैनिकों द्वारा बंदी बनाये गए बॉक्सर योद्धा

लगातार विदेशी शक्तियों से हो रही हार एवं अपमानजनक संधियों से चीन के लोग बदलाव की जरूरत महसूस कर रहे थे। इनमें चीन के अधिकारियों का एक समूह भी था। इन लोगों ने आधुनिकीकरण के लिए प्रयास किए। उनका मानना था कि यूरोप के लोग अपनी सेना और हथियारों के कारण जीत रहे हैं तो चीन में भी आधुनिक हथियारों के कारखाने स्थापित किए जाएँ। लेकिन ये प्रयास सफल नहीं हो पाए।

इन सभी घटनाक्रम ने लोगों में बहुत ही निराशा का भाव फैलाया। चूँकि चीन के शासक वर्ग विदेशियों के खिलाफ कुछ नहीं कर पा रहे थे इसलिए जनता सम्राट के खिलाफ हो गई। सन् 1850 से सन् 1900 के बीच में कई विद्रोह हुए जिन्हें दबाने के लिए चीनी सरकार ने विदेशी मदद ली। गरीब किसानों और मजदूरों ने विदेशियों को दिए गए विशेषाधिकारों के खिलाफ एक गुप्त संगठन बनाया जिसे वे 'बॉक्सर' या 'मुक्केबाज' के नाम से पुकारते थे। उनका मानना था कि खास तरह के शारीरिक व्यायाम से वे अजेय हो जाएँगे और विदेशी गोलियाँ उनके शरीर को भेद नहीं सकेंगी। सन् 1900 में इन विद्रोहियों ने राजधानी बीजिंग के यूरोपीय आबादी वाले हिस्से को घेर लिया। वे लोग 'विदेशी शैतानों' को फाँसी लगाने के नारे लगा रहे थे। इन विद्रोहियों ने कई महीनों तक बीजिंग को घेरे रखा। अगस्त सन् 1900 में एक बहुराष्ट्रीय सेना ने बीजिंग पर आक्रमण करके इन विद्रोहियों को हरा दिया, व्यापक लूटपाट की और लोगों को निर्दयता से मार डाला। चीनी सत्ता इस पूरे मामले में मूक दर्शक बनी रही। बॉक्सर विद्रोह की असफलता के बावजूद राष्ट्रवाद की एक मजबूत धारा का जन्म चीन में हो चुका था। परिणामस्वरूप सन् 1911 में मांचू शासन को खत्म करके चीन में गणतंत्र स्थापित किया गया। लेकिन चीन को वास्तविक स्वतंत्रता सन् 1949 में क्रांति के द्वारा ही मिली।

चीन की किसी और देश के साथ व्यापार करने में कोई दिलचस्पी क्यों नहीं थी?

यूरोपीय देशों ने दुनिया के बाकी हिस्सों को सीधे अपने अधीन कर लिया था लेकिन चीन में उन्होंने ऐसा न करके उनको अलग–अलग प्रभाव के दायरे में लाने की कोशिश की। आपके अनुसार ऐसा क्यों किया गया?

खुले द्वार की नीति से आप क्या समझते हैं? अमेरिका चीन में खुले द्वार की नीति के पक्ष में क्यों था?

10.3 अफ्रीका का उपनिवेशीकरण

हमने अमेरिका में अफ्रीकी दासों को बसाए जाने के बारे में पहले पढ़ा है। यूरोपीय देशों द्वारा अफ्रीका के उपनिवेशीकरण की शुरुआत 19वीं सदी के मध्य में हुई। सन् 1878 तक अफ्रीका की केवल दस प्रतिशत जमीन पर यूरोपीय देशों का कब्जा था। लेकिन महज 36 वर्षों में सन् 1914 तक लगभग सारा महाद्वीप किसी–न–किसी यूरोपीय देश का उपनिवेश बन गया।

क्या आप अनुमान लगा सकते हैं कि इतने कम समय में यूरोपीय देशों ने अफ्रीका पर कैसे और क्यों कब्जा किया होगा? इसका वहाँ के लोगों पर क्या प्रभाव पड़ा होगा?

10.3.1 दास–व्यापार

19वीं सदी के मध्य तक अफ्रीका में ज्यादातर हिस्से कबीलाई समूहों से आबाद थे। जीवनयापन के मुख्य साधन पशुपालन, कृषि, जंगल से इकट्ठे किए गए कंद–मूल एवं शिकार होते थे। मध्यकाल में भारत, पश्चिमी एशिया और यूरोप में भी अफ्रीका महाद्वीप दासों की आपूर्ति के मुख्य स्रोत के रूप में जाना जाता था। कबीलाई समूहों के आपसी झगड़े में जो लोग युद्ध बंदियों के रूप में पकड़े जाते थे उनको दास के रूप में बेच दिया जाता था। सन् 1500 के बाद उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका में खेती करने के लिए जैसे–जैसे मजदूरों की जरूरत पड़ी वैसे–वैसे अफ्रीका महाद्वीप से दासों का व्यापार भी बढ़ता चला गया। कई यूरोपीय देश इस अति लाभदायक मानव व्यापार में लग गए और करोड़ों अफ्रीकियों को बेचकर खूब मुनाफा कमाया। 450 साल से अधिक चले इस व्यापार को सन् 1800 और सन् 1900 के बीच धीरे–धीरे बन्द किया गया। मजेदार बात यह है कि अब यूरोपीय देश यह कहने लगे कि अफ्रीका में दास व्यापार को खत्म करने के लिए उन्हें अफ्रीका पर अपना राज्य बनाने की जरूरत है। उनमें अब होड़ लग गई कि कौन अफ्रीका में सबसे अधिक जमीन पर कब्जा कर पाता है।

मानचित्र 10.3 : सन् 1913 में अफ्रीका। इथियोपिया को छोड़कर बाकी सारा महाद्वीप किसी न किसी यूरोपीय देश के अधीन था। इसमें सबसे बड़ा हिस्सा ब्रिटेन का था।

10.3.2 औद्योगिक क्रान्ति, साम्राज्यवादी होड़ और अफ्रीका

ब्रिटेन जैसे प्रारंभिक औद्योगिक देश ने अपने उद्योगों के लिए कच्चे माल एवं बाजार की तलाश में दुनिया के बड़े हिस्से पर खासकर एशियाई देशों पर कब्जा कर लिया था। जर्मनी, फ्रांस और इटली में औद्योगिक क्रान्ति लगभग 100 साल बाद हुई। इन नव–औद्योगिक देशों के लिए अफ्रीका ही एक ऐसा क्षेत्र था जिस पर कब्जा करने की संभावना थी।

वर्चस्ववादी विचारधाराएँ

चित्र 10.10 : इस चित्र में नस्लवादी सोच किस प्रकार झलकती है?

यूरोप में इस समय कुछ ऐसे विचार लोकप्रिय हो रहे थे जो यूरोपीय देशों को ज्यादा–से–ज्यादा उपनिवेश बनाने के लिए प्रेरित कर रहे थे। उपनिवेश बनाना राष्ट्रीय शक्ति का पर्याय समझा जाता था और उपनिवेश के प्रसार के लिए काम करना राष्ट्रप्रेम की अभिव्यक्ति मानी जाती थी। यूरोप में बहुत से लोगों का मानना था कि विश्व में मनुष्यों की कई नस्लें होती हैं और यूरोपीय नस्ल बाकी दुनिया की नस्लों से बेहतर है। यह मानना कि मनुष्यों की नस्लें होती हैं और एक नस्ल को दूसरी नस्ल से बेहतर मानना "नस्लवाद" कहा जाता है। नस्लवादी यह भी मानते थे कि श्रेष्ठ नस्ल के लोगों का कमजोर नस्लों पर राज करना या उनका शोषण करना जरूरी और स्वाभाविक है।

अफ्रीका के दक्षिणी इलाकों में, जैसे दक्षिण अफ्रीका, जिम्बाबवे आदि में कई यूरोपीय लोग जाकर बसे। यहाँ तक कि भारत से भी बहुत से लोग वहाँ जाकर बसे। वे सब अपने आप को स्थानीय अश्वेत लोगों से श्रेष्ठ समझते थे और उन्हें कई विशेषाधिकार प्राप्त थे। वे यह प्रयास करते रहे कि विभिन्न मूल के लोगों का आपस में मेलमिलाप न हो और नस्ल आधारित विशेषाधिकार बने रहें। इससे रंगभेद की नीति बनी जो सन् 1994 तक चली।

औपनिवेशिक काल में एक और विचार 'गोरे लोगों का बोझा' बहुत लोकप्रिय हुआ था। इस विचार के अनुसार दूसरे महाद्वीप के लोग पिछड़े हुए हैं इसलिए यूरोप के लोगों का नैतिक दायित्व है कि उन लोगों को सभ्य बनाया जाए। इस विचार के अनुसार यूरोपीय देशों का यह कर्तव्य है कि वे शेष संसार के देशों को ज्ञान और धर्म के मुद्दों पर पथ प्रदर्शित करें। इस विचार से उत्साहित होकर बहुत से लोग अफ्रीका में ईसाई धर्म या फिर आधुनिक विज्ञान व तार्किक सोच के प्रचार–प्रसार के लिए भी गए।

फ्रांस जैसे कई यूरोपीय देश अपने उपनिवेशों में अफ्रीकी लोगों का ऐसा एक समूह तैयार करना चाहते थे जो यूरोपीय भाषा, संस्कृति, धर्म और विचारों को अपना लें और औपनिवेशिक शासन की मदद करें। इस उद्देश्य से अफ्रीका में कई यूरोपीय विश्वविद्यालय और शिक्षण संस्थान खोले गए।

बर्लिन कॉन्फ्रेंस और अफ्रीका का बँटवारा सन् 1884–1885

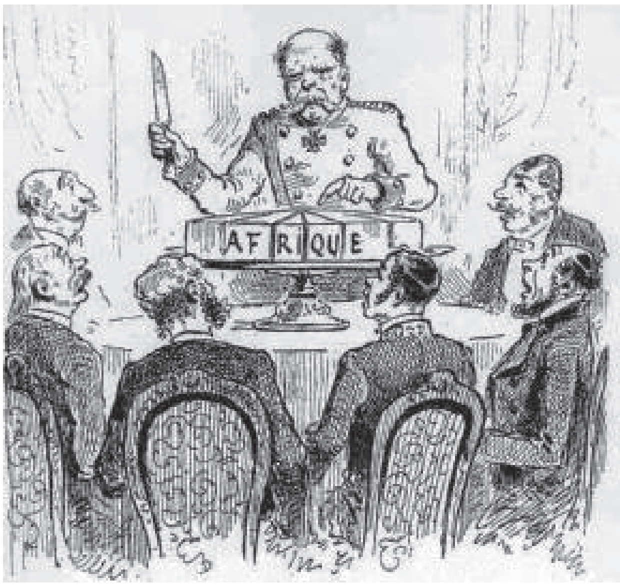

चित्र 10.11 : जर्मन प्रधानमंत्री बिस्मार्क की अध्यक्षता में अफ्रीका का बंटवारा – एक कार्टून

सन् 1850 के बाद यूरोप के नव औद्योगीकृत देशों ने अफ्रीका में आक्रामक तरीके से काम करना शुरू किया। जल्दी ही यूरोप के कई देश अफ्रीका के अलग–अलग हिस्सों पर कब्जा करने में सफल रहे। लेकिन इससे यह आशंका होने लगी कि यूरोप के देश आपस में ही न लड़ने लगें। आपसी युद्ध के खतरे को टालने के लिए यूरोप के देशों ने अफ्रीका को आपस में बांटने का फैसला किया। जर्मनी की राजधानी बर्लिन में एक सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें

यूरोप के कुल 14 देशों ने भाग लिया। सम्मेलन की सबसे मजेदार बात यह थी कि इस सम्मेलन में अफ्रीका के लोगों का प्रतिनिधित्व करने के लिए किसी अफ्रीकी को नहीं बुलाया गया। सम्मेलन में सबसे महत्वपूर्ण निर्णय यह लिया गया कि अफ्रीका के किसी भी हिस्से पर कोई भी यूरोपीय देश बाकी देशों को बताकर कब्जा कर सकता है। इस तरह से मात्र 30 सालों में ही पूरा अफ्रीका किसी–न–किसी यूरोपीय देश के प्रभाव क्षेत्र में आ गया। हरेक यूरोपीय देश उस भाग का अपने फायदे के लिए ज्यादा–से–ज्यादा दोहन करना चाहता था।

यूरोपीय देश अफ्रीका पर कब्जा क्यों करना चाहते थे?

यूरोपीय देशों के लिए अफ्रीका पर कब्जा करना क्यों आसान था?

चित्र 10.8 और चित्र 10.11 का तुलनात्मक विश्लेषण कीजिए।

10.3.3 उपनिवेशवाद एवं उसका प्रभाव

एक बार जब यूरोपीय देशों का अफ्रीका पर कब्जा हो गया तो उन्होंने इस भू–भाग को भी अपने हितों के अनुसार बदलना शुरू किया। इन बदलावों ने पूरे अफ्रीका में रहने वाले समुदायों के जीवन पर निर्णायक ढंग से असर किया।

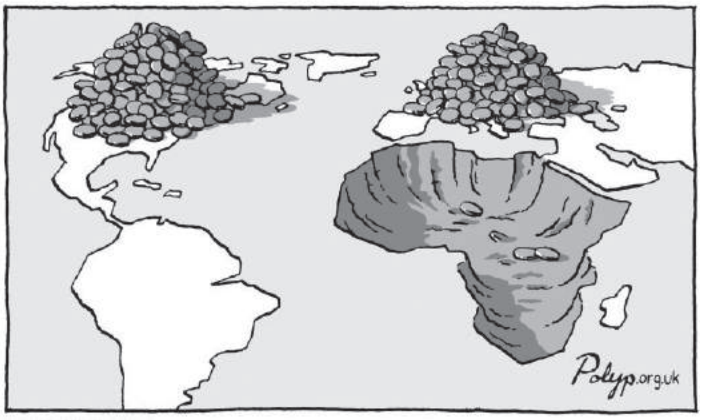

मानचित्र 10.4 : इस नक्शे में क्या कहा जा रहा है?

पशुपालक समाज एवं उपनिवेशवाद : उपनिवेशी शासन से पहले विशाल घास के मैदानों पर 'मसाई' जनजाति के लोग मुख्यतः पशुपालन करते थे। अफ्रीका के औपनिवेशीकरण की प्रक्रिया में ब्रिटेन और जर्मनी ने एक अन्तर्राष्ट्रीय सीमारेखा बनाकर मसाई प्रदेश के दो टुकड़े कर दिए। इसके पश्चात दोनों ही देशों ने इन घास के मैदानों पर खेती को प्रोत्साहित करना शुरू किया जिससे लगभग 60 प्रतिशत चरागाह पर अब मसाई अपने पशुओं को चराने के लिए नहीं जा सकते थे। मसाई समुदाय धीरे–धीरे उन इलाकों तक सिमट गए जहाँ न तो अच्छा चारा मिलता था और न ही वर्षा होती थी। पहले पशुपालन के द्वारा मसाई लोग किसानों से ज्यादा सुखी सम्पन्न होते थे लेकिन बदलती परिस्थिति में उनकी हालत ज्यादा खराब हो गई। अफ्रीका के अन्य हिस्सों में भी पशुपालक समुदाय इसी तरह की स्थितियों का सामना कर रहे थे।

चित्र 10.12 : सोने की खदान में

खनिज क्रान्ति एवं अफ्रीका : सन् 1867 में वर्तमान दक्षिण अफ्रीका में हीरे की पहली खान मिली और सन् 1886 में सोने की खानों का पता चला। पता चलते ही हजारों गोरे लोग अपनी तकदीर आजमाने इस इलाके में आकर बसने लगे। हीरे का पता चलते ही इस भू–भाग में सदियों से रहने वाले आदिवासियों एवं पहले से रह रहे बोअर समुदाय की जमीन पर ब्रिटिश शासन ने कब्जा कर लिया। बोअर अफ्रीका में रहने वाले डच किसानों को कहा जाता है जो 17वीं सदी से यहाँ बसे थे।

हीरे की खानों से हीरा निकालने के कार्य में बहुत से मजदूरों की आवश्यकता थी। उस समय तक अफ्रीका में रहने वाले आदिवासी मजदूरी जैसी व्यवस्था में नहीं ढले थे और मुख्यतः खेती या पशुपालन के जरिये अपना भरण पोषण करते थे। इन आदिवासियों को मजदूर के रूप में काम करने हेतु विवश करने के लिए औपनिवेशिक शासन ने उन पर "गृह कर" लगाया। इस कर के लिए पैसे कमाने के लिए एक वयस्क को लगभग तीन महीने मजदूर को

काम करना पड़ता था। फलतः स्थानीय आबादी की एक बहुत बड़ी संख्या अपनी खेती बाड़ी छोड़ कर इन खानों में काम करने लगी।

अब हीरे और सोने की खानों के आसपास मजदूरों की एक बड़ी संख्या निवास करने लगी। इन मजदूरों के अलावा एक बड़ी संख्या में यूरोपीय आबादी भी रहती थी जो मुख्यतः इन खानों के प्रबंधन और विक्रय संबंधी कार्यों में लगी रहती थी। इन सबके कारण दक्षिण अफ्रीका में नगरों का विकास हुआ। सोने की खानों के साथ विकसित हुआ एक ऐसा ही नगर जोहान्स्बर्ग है जो आज भी दक्षिण अफ्रीका का सबसे बड़ा शहर है। इन शहरों में यूरोपीय आबादी और अफ्रीकी आबादी के लिए अलग–अलग बसाहट बनाई गई ओर भिन्न–भिन्न नियम बनाए गए। अफ्रीकी लोगों के साथ भेदभाव करने वाली रंग भेद नीति में इन नगरों की अलग अलग व्यवस्था का भी योगदान माना जाता है।

कांगो में रबड़ की खेती और स्थानीय समुदायों का नरसंहार

बेल्जियम का शासक लियोपोल्ड द्वितीय अफ्रीका में अपनी निजी जागीर बनाना चाहता था। उसने सन् 1879–1882 में कांगो के जनजातीय सरदारों से छलकर कई संधियाँ की जिनके आधार पर उसने कांगों में 23 लाख वर्ग किलोमीटर भू–भाग पर कब्जा कर लिया। यह बेल्जियम से करीब 80 गुना ज्यादा बड़ा क्षेत्र था। यह उसकी निजी संपत्ति थी।

लियोपोल्ड ने आदेश दिया कि कांगो के सब लोग जंगलों से रबड़, हाथी दाँत आदि लाकर सरकार को निर्धारित कीमतों पर देंगे जो अपने हिस्से का रबड़ नहीं देगा उसे मार डालने या हाथ काटने के आदेश थे। लोगों से राजा के लिए सामान एकत्र करने का ठेका कई कंपनियों को दिया गया था। इन कंपनियों ने वहाँ के मूल निवासियों के साथ क्रूरता की एक नई मिसाल कायम कर दी। अगर कोई स्थानीय व्यक्ति निश्चित मात्रा में रबड़ नहीं ला पाता था तो वे उनका हाथ काट लेते थे। माना जाता है कि कम–से–कम 100 लाख कांगोवासी इस अत्याचार के कारण मारे गए। अन्ततः इस व्यवस्था को सन् 1908 में समाप्त किया गया और कांगो का शासन बेल्जियम के संसद ने अपने हाथों में ले लिया।

चित्र 10.13 : कांगो के हाथ कटे बच्चे और महिलाएँ

10.3.4 उपनिवेशवाद और अफ्रीकी प्रतिरोध

अफ्रीका के निवासियों ने अपने सीमित साधनों के बावजूद यूरोपीय शक्तियों का भरपूर प्रतिरोध किया। लेकिन उनके ज्यादातर प्रतिरोध अंततः असफल रहे। ब्रिटिश पत्रकार एडवर्ड मोरेल ने कुछ समय अफ्रीका में बिताया था और अफ्रीका पर एक किताब लिखी थी– 'The Blackman's burden'। उसमें उन्होंने अफ्रीकी लोगों के प्रतिरोध की असहाय स्थिति को इन शब्दों में लिखा है–

> **"जो अन्याय और दुर्व्यवहार एक अफ्रीकी अपने जीवन में सहता है उसका विरोध किसी भी अफ्रीकन के द्वारा अफ्रीका में कहीं भी संभव नहीं है। अफ्रीकी मूल के निवासी यूरोपीय श्वेत नस्ल के पूँजीवादी शोषण, साम्राज्यवाद और सैन्यवाद के सामने बिलकुल असहाय हैं।"**

क्या आप एडवर्ड मोरेल के विचार से सहमत हैं कि अफ्रीकी लोग यूरोपीय शक्तियों के आगे लाचार थे?

माजी–माजी विद्रोह

पूर्वी अफ्रीका में जर्मनी का नियंत्रण था। जर्मन शासन इस क्षेत्र के लोगों को खाद्यान्न के स्थान पर नकदी फसल कपास की खेती करने के लिए जबरदस्ती कर रहे थे। यह कपास मुख्यतः जर्मनी के कारखानों के लिए जरूरी था। सन् 1905 में एकाएक अफवाह फैली कि जादुई पवित्र जल को अगर शरीर पर छिड़क दिया जाए तो जर्मन गोलियाँ पानी बन जाएँगी। लगभग 20 आदिवासी समुदाय के लोग जर्मन हुकूमत से लड़ने के लिए एक हो गए। उनका विश्वास था कि उनके भगवान ने उन्हें इस लड़ाई के लिए आदेश दिया है और उनके पूर्वज इस युद्ध में उनकी रक्षा करेंगे। यह विद्रोह "माजी–माजी विद्रोह" के नाम से जाना जाता है। किन्तु जब इन विद्रोही सैनिकों ने अपने भालों के साथ जर्मन सैन्य ठिकाने पर हमला किया तो जर्मन मशीनगन से करीब 75,000 आदिवासी मारे गए। इसके बाद आए अकाल में लगभग इससे दुगुने लोग और मारे गए।

इथियोपिया का सफल प्रतिरोध

इथियोपिया एकमात्र अफ्रीकी देश था जिसने सफलतापूर्वक यूरोपीय देशों का प्रतिरोध किया। सन् 1889 में मेनेलिक इथियोपिया का शासक बना। उस समय बर्लिन सम्मेलन के बाद ब्रिटिश, फ्रेंच एवं इटालियन लोग सभी इथियोपिया को अपने प्रभाव क्षेत्र में लाने की कोशिश कर रहे थे। मेनेलिक ने बड़ी चालाकी से इनको एक दूसरे के खिलाफ उपयोग किया। इन सबके बीच उसने फ्रांस और रूस से भारी मात्रा में गोला बारूद और बंदूकें खरीद रखी थीं।

सन् 1889 में इटली ने मेनेलिक के साथ एक संधि की संधि के लिए जो दस्तावेज बनाए गए थे वे इथियोपिया और इटालियन भाषाओं में अलग–अलग थे। संधि के अनुसार इथियोपिया का एक छोटा हिस्सा इटली को देना था। लेकिन इटली ने पूरे इथियोपिया को अपने संरक्षण में लेने का दावा किया था। इसी बीच में इटली की सेना उत्तरी इथियोपिया में आगे बढ़ने लगी। फलतः मेनेलिक ने इटली के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी। सन् 1896 में हुए 'अडोवा की लड़ाई' में इथियोपिया की सेना ने इटली की सेना को हराकर नया इतिहास बनाया।

अफ्रीका के राजनैतिक मानचित्र में अलग–अलग देशों की सीमाओं को ध्यान से देखें। कई स्थानों पर यह एकदम सीधी रेखा की तरह दिखती है। क्या आप कोई कारण बता सकते हैं कि अफ्रीका में सीमा रेखाएँ इतनी सीधी क्यों हैं?

इस पाठ में हमने पढ़ा कि सन् 1850 तक अफ्रीका में किसी राष्ट्र राज्य का अस्तित्व नहीं था। लेकिन सन् 1913 में हमें पूरा अफ्रीका अलग–अलग देशों में विभाजित दिखता है। मात्र 63 सालों में अफ्रीका में इतने सारे देश कैसे बने?

नस्लवाद का सिद्धान्त क्या है? आज पूरी दुनिया में नस्लीय भेदभाव को कानूनी रूप से गलत माना जाता है। आपके अनुसार नस्लवाद के सिद्धान्त में क्या गलत है?

माजी–माजी विद्रोह क्यों असफल रहा? इथियोपिया के लोग प्रतिरोध करने में क्यों सफल रहे?

क्या आपको लगता है यूरोप के देशों द्वारा अफ्रीका का बँटवारा सही था या गलत? अपने उत्तर के पक्ष मे तर्क दें।

इथियोपिया की इटली पर विजय से यूरोपीय वर्चस्व पर क्या कोई असर पड़ा होगा?

10.4 भारत में उपनिवेशवाद सन् 1756–1900

हमने कक्षा 8वीं में पढ़ा है कि इंग्लिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने सन् 1757 में बंगाल के नवाब को प्लासी की लड़ाई में हराकर भारतीय उपमहाद्वीप पर ब्रिटिश साम्राज्य की शुरुआत की थी और इसके बाद किस तरह धीरे–धीरे पूरा भारत उनके अधीन हो गया। इस पाठ में हम यह समझने की कोशिश करेंगे कि किस प्रकार औपनिवेशिक शासन ने भारत के समाज को प्रभावित किया।

सन् 1757 के बाद भारत का औपनिवेशीकरण कई चरणों से गुजरा। प्रत्येक चरण का स्वरूप ब्रिटेन की बदलती जरूरत तथा भारतीयों के प्रतिरोध से निर्धारित हुआ। एक ओर औपनिवेशिक नीतियों के कारण भारत एक संपन्न देश से गरीब देश बना। दूसरी ओर भारत के लोग अंग्रेजों से संघर्ष करते हुए एक आधुनिक राष्ट्र का निर्माण कर पाए और उसे लोकतंत्र और समानता की ओर ले जा पाए। हमने भारतीय राष्ट्रवाद, लोकतंत्र और समानता के लिए संघर्ष की कहानी पढ़ी। यहाँ हम औपनिवेशिक नीतियों और उनके प्रभाव के बारे में पढ़ेंगे।

10.4.1 एकाधिकारी व्यापार का दौर

शुरुआती दौर में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के भारत में दो लक्ष्य थे। पहला लक्ष्य था भारत के साथ व्यापार में एकाधिकार स्थापित करना। ईस्ट इंडिया कंपनी यह सुनिश्चित करना चाहती थी कि वही विदेशों में भारतीय माल को बेचे ताकि कम–से–कम दाम में भारतीय किसान व कारीगरों से सामान खरीद कर अधिक से अधिक दाम में दुनियाभर में बेच सके।

ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारतीय व्यापार व हस्तशिल्प के उत्पादन पर एकाधिकार स्थापित करने के लिए राजनीतिक शक्ति का प्रयोग किया। पहले से व्यापार में लगे भारतीय व्यापारियों को या तो व्यापार से ही हटा दिया या फिर ईस्ट इंडिया कंपनी के अधीन व्यापार करने को विवश किया गया। भारतीय शिल्पियों एवं बुनकरों को अपना माल कम कीमत पर ब्रिटिश कंपनी को बेचने के लिए विवश किया गया। इन सबके कारण भारत का विदेशों से व्यापार तो काफी बढ़ा लेकिन बुनकर एवं शिल्पियों को उचित कीमत नहीं मिली।

दूसरा लक्ष्य था भारत से प्राप्त राजस्व पर नियंत्रण कर उसे ब्रिटेन के हित में उपयोग करना। ईस्ट इंडिया कंपनी को भारत में तथा संपूर्ण एशिया व अफ्रीका में अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए युद्ध करना पड़ता था। इसके लिए अत्यधिक धन की आवश्यकता होती थी। इसे भारत से प्राप्त राजस्व से ही निकालने की कोशिश हुई। ज्यादा राजस्व के लिए ज्यादा भू–भाग पर नियंत्रण जरूरी था। इसके लिए भारत के विभिन्न भागों को जीत कर ब्रिटिश भारत में मिलाने की कोशिश हुई।

जो इलाके कंपनी के अधीन हुए वहाँ पर कंपनी ने नई प्रकार की भूराजस्व व्यवस्था लागू की जिसके तहत जमींदार जमीन के मालिक बने और जमीन पर निजी स्वामित्व स्थापित हुआ। अंग्रेजों की उम्मीद थी कि इससे उन्हें अधिकतम भूराजस्व मिलेगा। इस नीति का दूरगामी असर यह पड़ा कि किसानों की स्थिति लगातार बिगड़ती गई और वे अभूतपूर्व मानव निर्मित अकालों के शिकार होने लगे। वे बढ़ते हुए राजस्व को अदा करने के लिए ऋण लेकर साहूकार के चंगुल में फंसते गए।

10.4.2 दूसरा दौर – इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति और भारत का उपनिवेशीकरण

सन् 1750–1800 में ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति शुरु हो रही थी। एकाधिकारी व्यापार व्यवस्था उद्योगपतियों के हितों के अनुकूल नहीं थी। वे नहीं चाहते थे कि भारतीय कपड़े यूरोप में बिकें। उल्टा वे चाहते थे कि भारत उनके कारखानों में निर्मित कपड़े खरीदे। उन्होंने दबाव डाला कि भारत पर ईस्ट इंडिया कंपनी (जो महज व्यापारियों का एक समूह था) का नियंत्रण समाप्त हो। धीरे–धीरे ब्रिटेन की संसद ने भारतीय मामलों पर दखल बढ़ाया और ईस्ट इंडिया कंपनी के एकाधिकार को सन् 1813 में समाप्त कर दिया। सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के बाद संसद ने भारत का प्रशासन सीधे अपने हाथों में ले लिया।

भारत की व्यापारिक नीतियों में बहुत सारे बदलाव किए गए। ब्रिटेन से आने वाले सामानों पर आयात शुल्क को या तो कम किया गया या फिर समाप्त कर दिया गया ताकि भारत में अंग्रेजी कारखानों में बना सामान बिक सके। हमने पिछले अध्याय में इसके बारे में पढ़ा और इन नीतियों का भारतीय बुनकरों पर पड़ने वाले प्रभाव पर भी विचार किया।

लाखों जुलाहे जो कल तक कपड़ा बनाने के काम में लगे हुए थे, बेरोजगार हो गए और कोई काम–धंधा नहीं मिलने पर वे सभी खेती करने लगे। इससे कृषि पर आबादी का दबाव बढ़ने लगा। उतनी ही जमीन पर अधिक लोग निर्भर हो गए। इस पूरी प्रक्रिया को 'भारत का निरूद्योगीकरण' कहा जाता है। इससे हिंदुस्तान गरीब देशों की श्रेणी में आ गया।

भारत के गरीब होने के पीछे एक और कारण था विभिन्न तरीकों से अंग्रेजों द्वारा भारत से धन इंगलैंड भेजा जाना। भारतीय राजाओं के खजानों की लूट, अंग्रेजी सैनिकों व अफसरों के वेतन आदि के रूप में भारतीय धन इंगलैंड भेजा गया। ये भुगतान भारत के किसानों के द्वारा चुकाये गए करों से होता था।

औद्योगीकरण के लिए नील, कपास, पटसन जैसे कच्चे माल और अनाज, चाय और शक्कर जैसी कृषि उपज की अधिक जरूरत थी। इन्हें सस्ते में खरीदकर वे ब्रिटेन भेजना चाहते थे। औपनिवेशी सरकार ने किसानों पर दबाव डाला कि वे इन्हें व्यापारिक फसलों के रूप में उगाएँ और बेचें। चूँकि किसानों को लगान चुकाना था, वे विवश थे। व्यापारिक कृषि को बढ़ावा देने के लिए सरकार ने अनेक सिंचाई परियोजनाओं को अंजाम दिया जिससे खेती के लिए पर्याप्त पानी मिल सके। साथ–साथ उसने देश के प्रमुख कृषि क्षेत्रों को बंदरगाहों से जोड़ने के लिए रेल लाईनें बिछायी। भारत में रेलवे के विकास के लिए अधिकांश सामान इंग्लैंड से खरीदा गया। इस कारण वहाँ के लोहा उद्योग को काफी फायदा हुआ। इस प्रकार भारतीय कृषि को ब्रिटिश उद्योगों की जरूरत के अनुसार ढाला गया। नकदी फसल का उत्पादन बढ़ा और कपड़ों की जगह उनका निर्यात होने लगा।

वाणिज्यिक खेती के विकास का आम जीवन पर क्या असर हुआ होगा?

10.4.3 वैचारिक औपनिवेशीकरण

ऊपर हमने देश की अर्थव्यवस्था पर औपनिवेशी नीतियों के प्रभाव को देखा। लेकिन औपनिवेशीकरण इससे और आगे लोगों की सोच पर हावी होने का प्रयास करता है। यह कैसे? एक उदाहरण की मदद से समझेंगे।

जब अंग्रेज भारत में अपना राज्य बनाने लगे तो उनमें से कई लोगों ने भारतीयों की संस्कृति, इतिहास आदि को जानने–समझने का भरसक प्रयास किया। वे भारतीय संस्कृति और धर्म आदि से काफी प्रभावित भी हुए। उन्होंने कंपनी सरकार से आग्रह किया कि पारंपरिक भारतीय ज्ञान और साहित्य के अध्ययन को संरक्षण देना जरूरी है। उनके कहने पर संस्कृत कॉलेज और मदरसे खोले गए। इस विचार के लोगों को प्राच्यवादी कहते हैं – प्राच्य यानी पूर्व। अर्थात् वे लोग जो पूर्वी संस्कृति से प्रेरित थे।

सन् 1800 के बाद कंपनी के कई और अधिकारी हुए जिन्होंने यह माना कि आधुनिक यूरोप का ज्ञान ही जानने योग्य है और यह अंग्रेजी के माध्यम से ही हो सकता है। उनका मानना था कि भारतीय ज्ञान की परंपरा किसी काम की नहीं है और उस पर धन खर्च करना व्यर्थ है। इन्हें 'आँग्लवादी' अर्थात् अंग्रेजी संस्कृति और शिक्षा से प्रेरित लोग कहते हैं।

जब अंग्रेजी सरकार की शिक्षा नीति बनी तब आँग्लवादी विचार के लोग अधिक प्रभावी रहे। इनमें सबसे प्रसिद्ध थे थॉमस मैकाले जिन्होंने सन् 1830 में अपनी सिफारिश प्रस्तुत की। मैकाले का कहना था–

''इस बात को सभी मानते हैं कि भारत और अरब के सम्पूर्ण देशी साहित्य एक अच्छे यूरोपीय पुस्तकालय की केवल एक शेल्फ के बराबर ही हैं।'' यूरोपीय काव्य, इतिहास, विज्ञान और दर्शन की पुस्तकों की तुलना में इनमें कुछ भी नहीं है। उसका आग्रह था कि भारतीयों की भलाई इसी में है कि उन्हें विज्ञान, गणित, पाश्चात्य दर्शन आदि की शिक्षा दी जाए ताकि वे अन्धविश्वास और बर्बरता से मुक्त हो पाएँ।

मैकाले का आग्रह था कि कुछ चुने गए भारतीयों को अंग्रेजी शिक्षा दी जाना चहिए ताकि वे अंग्रेजी शासन के समर्थक बनें और अन्य भारतीयों को भी सिखाएँ। उन्होंने ने कहा–

> **''हमें सर्वाधिक प्रयास एक ऐसे वर्ग के निर्माण के लिए करना चाहिए जो हमारे और हमारी बहुसंख्यक प्रजा के बीच अनुवादक के रूप में काम करें। ऐसा वर्ग जो खून और रंग में भारतीय हो मगर रुचि, विचार, नैतिकता तथा बुद्धि में अँग्रेज़ हो। यह वर्ग अपनी स्थानीय भाषाओं को परिष्कृत करके उसे आधुनिक विचार व विज्ञान का वाहक बनाए और उसके माध्यम से अपने देशवासियों को भी शिक्षित करे।''**

इस तरह के विचार औपनिवेशिक शिक्षा व्यवस्था के आधार बने। आप सोच सकते हैं कि इसका शिक्षित लोगों पर क्या प्रभाव पड़ा होगा?

औपनिवेशीकरण – एक तुलनात्मक अध्ययन

हमने देखा कि लैटिन अमेरिका, अफ्रीका, इंडोनेशिया, चीन, भारत आदि अलग–अलग प्रकार से औपनिवेशीकरण से प्रभावित हुए। एक तरह का औपनिवेशीकरण लैटिन अमेरिका में देखा जा सकता है। लैटिन अमेरिका में रहने वाले अधिकांश मूल निवासी मारे गए और वहाँ यूरोप के लोग आकर बसे तथा अफ्रीका से लोगों को दास बनाकर जबरदस्ती वहाँ बसाया गया। यूरोपीय देश इस तरह बसाए गए उपनिवेशों का अपने फायदे के लिए शोषण करना चाहते थे। इसका उपनिवेश के लोगों ने विरोध किया। दास प्रथा, बेगारी और औपनिवेशिक नीतियों के विरोध में स्वतंत्रता आंदोलन सफल रहे। एशियाई देश जैसे– इंडोनेशिया व भारत में औपनिवेशीकरण लैटिन अमेरिका से भिन्न था। यहाँ यूरोप के देशों ने अपना राज्य स्थापित किया और स्थानीय अर्थव्यवस्था को अपने हितों के अनुरूप बदला किन्तु इंडोनेशिया और भारत में भी फर्क था। इंडोनेशिया में जंगल काटकर बागान बनाए गए जिनके मालिक हालैंड के लोग थे। भारत में भी पहाड़ी क्षेत्रों में इस तरह के बागान बने लेकिन बाकी क्षेत्रों में लगान और व्यापारिक खेती के माध्यम से किसानों का शोषण किया गया। सबसे महत्वपूर्ण भारत के उद्योगों को पनपने नहीं दिया गया जिससे भारतीय कपड़ा उद्योगों का विनाश हुआ। चीन की कहानी इन सबसे अलग रही। वहाँ शासक तो चीनी ही बने रहे मगर चीन के विभिन्न हिस्सों पर यूरोपीय देशों का वर्चस्व था जहाँ वे शासन की जिम्मेदारी के बिना वहाँ के लोगों तथा संसाधनों का दोहन करते रहे। इन सब देशों में औपनिवेशीकरण के प्रतिरोध की कहानी भी भिन्न है। हम खुद लैटिन अमेरिका, चीन, भारत और अफ्रीका के प्रतिरोध की तुलना कर सकते हैं।

औपनिवेशिक शासन व्यवस्था में स्थानीय लोगों की भागीदारी किस प्रकार होती थी? दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका में स्थानीय आबादी के संदर्भ में बताएँ।

स्थानीय आबादी के साथ यूरोपीय शक्तियों ने किस प्रकार व्यवहार किया? कांगो, स्पेनी मेक्सिको और इन्डोनेशिया के संदर्भ में बताएँ।

औपनिवेशिक प्रक्रिया में प्राकृतिक संसाधनों और मानव श्रम का शोषण किस प्रकार हुआ? दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका की खानों के संदर्भ में उत्तर दें।

औद्योगिक क्रान्ति से पहले और उसके पश्चात उपनिवेशों के शोषण के तरीकों में क्या अंतर आया? दक्षिण अमेरिका और भारत के संदर्भ में बताएँ।

खेती के वाणिज्यीकरण एवं खेती में पूँजी निवेश में क्या अंतर है? इन्डोनेशिया और भारत के संदर्भ में बताएँ।

अभ्यास

1. निम्नलिखित घटनाक्रम को समय के सापेक्ष क्रम में जमाइए – कोलंबस द्वारा वेस्टइंडीज पहुँचना, इंका साम्राज्य का नष्ट होना, एजटेक साम्राज्य का नष्ट होना, हैती का विद्रोह।

2. सुमेलित करें –

हेर्नण्डो कोर्टेस	एजटेक साम्राज्य पर कब्जा
तोसां ले ओवरचुर	कांगो का नरसंहार
लियोपोल्ड	हैती विद्रोह
मैकाले	कोलम्बिया और वेनेजुएला की स्वतंत्रता
फ्रांसिस पिजारो	इंका साम्राज्य पर कब्जा
जोस मार्टिन	भारत की शिक्षा नीति
सीमोन बॉलिवार	अर्जेंटिना की स्वतन्त्रता

3. लैटिन अमेरिका में स्पेनी कब्जेदारी के बाद किस तरह की सामाजिक संरचना का विकास हुआ?
4. फ्रांस की क्रांति का लैटिन अमेरिका के स्वतन्त्रता संघर्ष पर क्या प्रभाव पड़ा?
5. स्पेन शासित अमेरिका में तीन जन समूह रह रहे थे– स्पेन के आए लोग जो शासक एवं सामान्य किसान थे, वहाँ के मूल निवासी एवं अफ्रीकी दास। क्या औपनिवेशिक शासन में इन तीनों जन समूहों के अधिकारों मे अंतर थे?
6. खेती के वाणिज्यीकरण से आप क्या समझते हैं? भारत में किन कारणों से खेती का वाणिज्यीकरण हुआ था?
7. भारत में वाणिज्यिक एकाधिकार का बुनकरों पर क्या प्रभाव पड़ा?
8. एक ओर यूरोप में स्वतंत्रता, समानता व लोकतंत्र के सिद्धांत लोकप्रिय हो रहे थे और दूसरी ओर यूरोप के ही लोग उपनिवेशों में अमानवीय व्यवहार कर रहे थे। इस विरोधाभास के बारे में विचार करें कि यह कैसे संभव हो पाया होगा?

Y16XGX

**

राजनीति विज्ञान

Y18J6R

11

लोकतंत्र का विचार एवं विस्तार

समाजिक विज्ञान की इस पुस्तक के इतिहास खण्ड में हमने ''लोकतांत्रिक व राष्ट्रवादी क्रांतियाँ'' पढ़ी और देखा कि किस प्रकार 1649 की क्रांति से इंग्लैंड में जनता में प्रजातंत्र का विचार उत्पन्न हुआ। जनता ने स्वतंत्रता संग्राम द्वारा उत्तरी अमेरिका में संविधान आधारित लोकतंत्र स्थापित किया और जनता के द्वारा ही फ्रांस की राज्य क्रांति से स्वतंत्रता, समानता व बंधुत्व आधारित लोकतंत्र का विचार यूरोप में प्रसारित हुआ। फ्रांस से ही लोकतंत्र दक्षिण अमेरिका महाद्वीप में विस्तार प्राप्त किया। इन बदलावों में राजाओं के शासन को हटाने तथा उसके स्थान पर जनता या जनता के द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों का शासन स्थापित करने के प्रयास किए जाने लगे। इस अध्याय में हम लोकतंत्र यानी जनता द्वारा स्थापित शासन के बारे में पढ़ेंगे।

अब हम इस पाठ में लीबिया व म्यांमार के निरंकुश सैन्य तंत्र के विरूद्ध लोकतंत्र के लिए संघर्ष के उदाहरण पढ़ेंगे और विश्लेषण करेंगे।

आसपास की घटनाएँ – विचार कीजिए –

शाला के मैदान में छात्र–छात्राएँ मिलजुल कर तरह–तरह के खेल खेल रहे थे। अचानक घण्टी की आवाज़ सुनाई दी। सभी विद्यार्थी दौड़ते हुए अपनी कक्षा की ओर पहुँचे। नवमी कक्षा के विद्यार्थी ठीक से बैठ भी नहीं पाए थे कि सामाजिक विज्ञान की शिक्षिका कक्षा में पहुँची। बच्चों ने अभिवादन किया और सभी बैठ गए।

शिक्षिका ने पूछा, "कक्षा का कप्तान कौन है?"

रमेश ने बताया, "कमलेश कप्तान है।"

शिक्षिका ने बच्चों से पूछा, "आपकी कक्षा में कमलेश को कप्तान किसने बनाया?"

कोमल ने बताया, "हमें नहीं मालूम।"

शिक्षिका ने कमलेश से पूछा, "आपको कप्तान किसने बनाया?"

कमलेश ने कहा, "मैं कप्तान नहीं बनना चाहता था। मुझे कक्षा–शिक्षिका ने यह कार्य सौंपा है।"

शिक्षिका ने पूछा, "क्या कप्तान बनाने का कोई दूसरा तरीका हो सकता है?"

रामबाई ने कहा, "बच्चों की राय लेनी चाहिए।"

कप्तान बनाने के दोनों तरीकों में से कौन सा तरीका लोकतांत्रिक है और क्यों?

कक्षा 10 की छात्रा रोज़ी के परीक्षा परिणाम से पूरा परिवार प्रसन्नता से गद्‌गद है और वे चाहते हैं कि सभी विषय में प्रवीण्य अंक प्राप्त बेटी डॉक्टर बने, अतः विज्ञान विषय लेकर आगे पढ़ाई करे। रोज़ी की इच्छा सामाजिक विज्ञान पढ़ने की है और परिवार विज्ञान पढ़ने का दबाव बना रहे हैं। एनईईटी की तैयारी कराना चाहते हैं।

क्या परिवार का निर्णय लोकतांत्रिक है?

क्या इसे निर्णय में संबंधित व्यक्ति की इच्छा के लिए स्थान होना चाहिए?

लोकतंत्र एक व्यापक विचार है जिसका सम्बन्ध व्यक्तिगत जीवन, परिवार तथा समाज से है। लोकतंत्र की चर्चा एक शासन प्रणाली के रूप में भी होती है इस अध्याय में हम यह जानने की कोशिश करेंगे कि लोकतंत्र में जनता की भागीदारी किस तरह होती है।

पिछली कक्षा में हमने भारत की लोकतांत्रिक शासन प्रणाली के अन्तर्गत सरकारों के गठन और कार्यों के विषय में पढ़ा है।

लोकतंत्र की विभिन्न इकाईयों के लिए चुने जाने वाले प्रतिनिधियों की जानकारी पता कीजिए–

क्रमांक	इकाई	प्रतिनिधि का पद
1.	जिला / जनपद / ग्राम पंचायत	....
2.	नगर (पंचायत / पालिका / निगम)	....
3.	विधानसभा	....
4.	विधान परिषद्	....
5.	लोकसभा	....
6.	राज्यसभा	....

उक्त प्रतिनिधियों के चुनाव में जनता क्यों भागीदार बनती है, चर्चा करें।

विश्व में अधिनायकवाद के विरूद्ध लोकतांत्रिक संघर्ष

मानचित्र 11.1 : विश्व

विश्व के नक्शे में लीबिया, म्यांमार, फ्रांस व इटली को पहचानें।

हम ऐसे दो देशों के उदाहरण देखेंगे जहाँ लोगों ने लोकतंत्र का विस्तार किया। ये देश हैं – लीबिया और म्यांमार।

लीबिया की कहानी

लीबिया अफ्रीका महाद्वीप के उत्तर दिशा में स्थित, एक निर्धन देश था जिस पर इटली ने अपना उपनिवेश स्थापित किया था। 10 फरवरी सन् 1947 को इटली ने लीबिया को स्वतंत्र कर दिया। इसके बाद यह देश 24 दिसम्बर सन् 1951 तक संयुक्त राष्ट्रसंघ के संरक्षण परिषद के अधीन रहा। इंग्लैण्ड तथा फ्रांस, संयुक्त राष्ट्रसंघ (United Nations – UN) की संरक्षण परिषद् की ओर से लीबिया की देख–रेख कर रहे थे। 24 दिसंबर सन् 1951 को लीबिया को पूरी तरह स्वतंत्र देश घोषित कर दिया गया।

नक्शा – 11.2 : लीबिया

लीबिया में राजतंत्र की स्थापना

औपनिवेशिक शासन से लीबिया की स्वतंत्रता के पश्चात् राजा इदरिस लीबिया का शासक बना। लीबिया पर शासन राजा एवं कुछ ताकतवर परिवारों द्वारा किया जाने लगा। वहाँ की अधिकांश जनता विभिन्न कबीलों में बटी थी। लोग कृषि एवं पशुपालन के कार्य करते थे। लोगों पर कबीले के मुखियाओं का प्रभाव था।

सन् 1959 में लीबिया में विशाल मात्रा में तेल एवं प्राकृतिक गैस भण्डार की प्राप्ति हुई जिससे यह देश धनी देश बन गया। इन खनिजों पर राजा एवं वहाँ के धनवान परिवारों के लोगों ने अधिकार जमा लिया। इसी समय उत्तरी अफ्रीका में राष्ट्रवादी आन्दोलन की लहर चली। इसका प्रभाव लीबिया पर भी था। इस आन्दोलन से जुड़े लीबिया के युवा आधुनिक राज्य की स्थापना करना चाहते थे जहाँ जनता की भलाई हो एवं शोषक तत्वों से मुक्ति मिले। ये लोग महिलाओं पर हो रहे अत्याचारों व कबीलों के युद्धों को रोककर देश में एकता और शान्ति लाना चाहते थे। उनका मानना था कि पेट्रोलियम से होने वाली आय का लाभ सभी नागरिकों को मिले।

लीबिया किस देश का उपनिवेश था?

लीबिया में तेल एवं प्राकृतिक गैस के भण्डार मिलने पर लीबिया की शासन व्यवस्था पर इसका क्या असर पड़ा?

लीबिया के युवा इसे किस तरह का राज्य बनाना चाहते थे और क्यों ?

कर्नल मुअम्मर गद्दाफी द्वारा सैनिक तख्ता पलट

कर्नल मुअम्मर गद्दाफी लीबिया की सेना का एक प्रमुख शक्तिशाली अधिकारी था। सन् 1969 में गद्दाफी तथा उसके 70 युवा सैनिक अफसरों ने लीबिया की सत्ता को अपने नियंत्रण में ले लिया। उन्होंने आन्दोलन के संगठन का नाम 'फ्री ऑफिसर्स मूवमेंट' रखा। राजा इदरिस गद्दी छोड़कर भाग गए। लीबिया में राजतंत्र की समाप्ति हुई और देश को 'सोशलिस्ट लीबियन अरब रिपब्लिक' घोषित किया गया। सेना ने इसका पूरी तरह से समर्थन किया। यह आन्दोलन 'क्रान्तिकारी नियंत्रण परिषद्' (Revolutionary Command Council - RCC) के नेतृत्व में चलाया गया। इसमें सेना के 12 सदस्य थे। इस संगठन ने लीबिया को आधुनिक समानतावादी देश बनाने की घोषणा की।

चित्र 11.1 : कर्नल मुअम्मर गद्दाफी

लीबिया में प्रगति एवं विकास

हमने ऊपर पढ़ा कि लीबिया की अधिकांश जनता अनेक कबीलों में बटी थी। ये लोग केवल अपने समाज, उसकी सुरक्षा एवं सम्मान के विषय में सोचते थे। वे गरीब और घुमन्तू चरवाहे थे। महिलाओं को पर्दे में रखा जाता था और उन्हें सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने नहीं दिया जाता था।

देश में नई सरकार ने कई महत्वपूर्ण कदम उठाए जिनसे लीबिया की तेज़ी से प्रगति होने लगी। तेल भण्डारों का राष्ट्रीयकरण किया गया। लेकिन इसके बावजूद शासन से जुड़े कुछ परिवार तेल संसाधनों, व्यापार तथा उद्योग पर नियंत्रण बनाए हुए थे। उन्होंने कुछ गिने–चुने धनवान परिवारों को सरकार द्वारा चलाई जाने वाली तेल कम्पनियों पर प्रभुत्व बनाने में सहायता की।

पेट्रोलियम से अर्जित आय से सैनिक सरकार ने जनता के हितों से सम्बन्धित अनेक कार्यक्रम चलाए। घुमन्तू जातियों को सिंचित कृषि जमीन दी गई और उन्हें एक जगह बसाया। सभी के लिए निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा, निःशुल्क स्वास्थ्य सुविधाएँ और आवास योजनाएँ शुरु की गईं। गद्दाफी ने प्रत्येक लीबियावासी महिला व पुरूष के लिए सैनिक शिक्षा अनिवार्य कर दी। उन्होंने लीबिया में रहने वाली महिलाओं को समाज में पुरूषों के समान स्थान दिलवाया और इनके अधिकार के लिए कानून भी बनाए। कोई भी पुरूष एक से अधिक विवाह नहीं कर सकता था। सन् 1969 में गद्दाफी के सत्ता में आने के बाद से लेकर सन् 2011 के बीच इन कल्याणकारी योजनाओं के कारण लीबिया के लोगों की औसत आयु 50 वर्ष से बढ़कर 77 वर्ष हो गई। लीबिया की कुल आबादी के 90 प्रतिशत यानी 30 लाख से अधिक नागरिकों को मुफ्त स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा तो उपलब्ध थी ही उन्हें सस्ते मूल्य पर मकान भी दिए गए। सबसे बड़ा परिवर्तन यह हुआ कि महिलाओं को स्वतंत्रता एवं समानता के अधिकार दिए गए। उन्हें व्यापार करने, सम्पत्ति रखने, सरकारी नौकरी करने के हक भी दिए गए। सन् 2010 में लीबिया में स्त्री–पुरूष साक्षरता दर 90 प्रतिशत रही। इसी कारण पूरे अफ्रीका में सामाजिक कल्याण के क्षेत्र में लीबिया को सर्वोच्च स्थान प्राप्त हुआ।

प्रगति के काल में समाज में मध्यम वर्ग का उदय हुआ। सरकार ने आम लोगों को प्रशासन में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया। इसके लिए जन परिषदों का गठन किया गया। केन्द्र में विधान सभा का गठन किया गया।

गद्दाफी और RCC का लोकतांत्रिक संस्थाओं में विश्वास नहीं था। इन परिषदों के सदस्यों को RCC के आदेश मानने पड़ते थे। परिषदें अपनी मर्ज़ी से कोई भी निर्णय नहीं ले पाती थीं। इसलिए लोगों ने इन परिषदों में कोई विशेष रूचि नहीं ली। यही वह समय था जब राजनैतिक चुनौती देने वाले नेताओं का दमन किया गया। लोगों को संगठन बनाने की आज़ादी नहीं थी और निष्पक्ष प्रेस को भी उभरने नहीं दिया गया।

प्रगति एवं विकास का प्रभाव

लीबिया में तेज़ी से हो रहे बदलाव शहरीकरण, नवीन आर्थिक विकास और नौकरियों में अवसर प्राप्त होने का अर्थ यही था कि कबिलाई जीवन का अन्त हो रहा था। विभिन्न जनजातियों के लोग आपस में मिलजुलकर रहने लगे थे। अधिकतम नौकरियाँ सरकारी क्षेत्र के अन्तर्गत थी। मध्यम वर्ग को व्यापार और उद्योग में काफी रूचि थी पर उन्हें मौके नहीं मिलते थे।

कर्नल गद्दाफी ने लीबिया की प्रगति के लिए कौन–कौन से कदम उठाए?

कर्नल गद्दाफी द्वारा किए गए कार्यों का लीबिया के लोगों पर क्या प्रभाव पड़ा?

गद्दाफी के शासन को क्या लोकतांत्रिक शासन प्रणाली कहेंगे? चर्चा करें।

सैन्य शासन की निरंकुशता

गद्दाफी सरकार लोकतांत्रिक संगठनों पर विश्वास नहीं करती थी। उन्होंने एक समानान्तर प्रशासक समूह बनाया था जिसे 'क्रान्तिकारी नियंत्रण परिषद्' (RCC) कहते थे। सैनिक सरकार किसी भी प्रकार के विरोध को सहन नहीं करती थी तथा विरोधियों को बन्दी बनाने व मौत के घाट उतारने और अत्याचार के लिए क्रूर तरीके अपनाती थी। नागरिकों को कोई संगठन बनाने की अनुमति नहीं थी।

लोकतंत्र के लिए संघर्ष

सन् 2010 में लीबिया के पड़ोसी देश ट्युनीशिया में एक व्यापारी की हत्या के विरोध में विद्रोह हो गया जो मिस्त्र, लीबिया, यमन, बहरीन और सीरिया तक फैल गया। इस विद्रोह का संचालन मोबाइल और इंटरनेट के माध्यम से किया गया जिसे नियंत्रित करना सरकार के लिए कठिन था। यह क्रान्तिकारी लहर **'अरब बसन्त'** के नाम से लोकप्रिय हुई। अफ्रीका महाद्वीप में यह लोकतंत्र व राष्ट्रवाद की लहर थी।

चित्र 11.2 : लीबिया वासियों का विरोध प्रदर्शन

जनवरी सन् 2011 में लीबिया के अल बायदा नामक शहर में हो रहे भ्रष्टाचार एवं आवास योजना के अन्तर्गत मकानों को बनाए जाने में हो रही देरी पर लोग विरोध प्रदर्शन करने लगे। बेनगाजी नामक शहर में जनता को आम सुविधाएँ भी प्राप्त नहीं थी। यह शहर हिंसात्मक प्रदर्शनों का केन्द्र बन गया। पुलिस ने इन्हें कुचलने का प्रयास किया। शहर के बहुत से लोग बेरोज़गार थे। कई परिवारों की आय में अनिश्चितता थी। देश के विभिन्न भागों के लोग आपस में इंटरनेट और मोबाइल फोन द्वारा बातचीत करने लगे, परेशानियाँ बाँटने लगे, किन्तु सरकार द्वारा नियंत्रित मीडिया ने इस तरह की सभी खबरों को प्रसारित करने से मना कर दिया। ट्यूनीशिया में लोकतंत्र स्थापित हो गया।

फरवरी सन् 2011 तक यह विरोध प्रदर्शन और हिंसात्मक होने लगे। जनता बेनगाजी शहर की पुलिस के खिलाफ जुलूस निकालने लगी। कुछ प्रदर्शनकारियों ने भी बन्दूकें चलाई। इन प्रदर्शनकारियों में सेना को छोड़कर आए सैनिक भी थे किन्तु अधिकतर आम लोग ही थे। गद्दाफी सरकार का विरोध करने वाले सभी संगठन एक हो गए।

लोग अलग–अलग शहरों में विरोध प्रदर्शन कर रहे थे। इन विद्रोहियों ने सरकारी इमारतों पर आक्रमण किया। स्थानीय रेडियो स्टेशन को भी अपने नियंत्रण में ले लिया। विरोध को कुचलने के लिए कई स्थानों पर पुलिस ने और कुछ स्थानों पर सेना ने गोलियाँ चलाईं। इसके बावजूद विरोध की लहर अन्य शहरों और आस–पास के इलाकों में फैलने लगी। लोगों ने लोकतांत्रिक सरकार के गठन की माँग को लेकर संघर्ष तेज़ कर दिया। गद्दाफी ने संघर्ष को रोकने के लिए

युध्द किया। हवाई जहाजों और सेना के माध्यम से विद्रोह को कुचलने का प्रयास किया। इस तरह देश में गृहयुद्ध छिड़ गया। नागरिक समूह अपने ही लोकतंत्र के लिए संघर्ष करने लगे।

विश्व के कई शक्तिशाली लोकतांत्रिक देश लीबिया में हस्तक्षेप कर गद्दाफी सरकार का अन्त करना चाहते थे। इन देशों ने लीबिया में कई विद्रोही संगठनों की हथियारों और पैसों से सहायता की। संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) ने भी लोकतंत्र के लिए विद्रोहियों का साथ दिया और लीबिया को उड़ान रहित क्षेत्र (no fly zone) घोषित किया ताकि सरकार लोगों पर हवाई जहाज़ों द्वारा आक्रमण न कर सके, किन्तु गद्दाफी सरकार ने हवाई युद्ध जारी रखा। नाटो की सेना फ्रांस, अमेरिका और ब्रिटेन ने मिलकर लीबिया में अपने हवाई जहाज़ों द्वारा गद्दाफी के सरकारी क्षेत्रों पर आक्रमण किया अन्त में यह विद्रोह सफल हुआ। मुअम्मर गद्दाफी भागते हुए पकड़े गए और उन्हें मौत के घाट उतार दिया गया।

लीबिया में लोकतंत्र की स्थापना

नवम्बर सन् 2012 में लीबिया में चुनाव हुए जिसमें कई राजनीतिक दलों ने भाग लिया और लगभग 200 प्रतिनिधि चुने गए। एक नई सरकार की स्थापना हुई। उन्होंने अन्तरिम संविधान की व्यवस्था की। भविष्य में लीबिया में लोकतंत्र स्थायी रूप से स्थापित हो सकता है। लीबिया अन्तर्राष्ट्रीय नज़रों में है और सभी देखना चाहते हैं कि लीबिया में लोकतंत्र को सफलता मिलेगी या नहीं? लीबिया के लोग लोकतंत्र को मजबूत कर पाएँगे या नहीं?

अरब बसन्तश के संबंध में शिक्षक से चर्चा करें।

लीबिया के लोग लोकतंत्र क्यों चाहते थे जबकि उन सबको सर्वश्रेष्ठ जीवन स्तर प्राप्त था।

गद्दाफी सरकार लीबिया में होने वाले विद्रोह पर नियंत्रण क्यों नहीं कर पाई?

लीबिया के लोकतांत्रिक संघर्ष में मोबाइल और इंटरनेट की क्या भूमिका रही?

लोकतांत्रिक संघर्ष के कौन–कौन से प्रमुख मुद्दे थे?

शिक्षा व संचार माध्यम ने जनता पर क्या प्रभाव उत्पन्न की।

म्यांमार (बर्मा)

भारत की तरह म्यांमार भी ब्रिटेन का उपनिवेश था। यह सागौन की लकड़ी, टीन जैसे खनिज, कीमती पत्थर जैसे– नीलम, माणिक व चावल इत्यादि का प्रमुख उत्पादक देश था। भारत की आजादी के 5 महीनों बाद ही म्यांमार को भी स्वतंत्रता मिल गई। वहाँ भी भारत की तरह संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की गई जिसमें दो सदन थे। ऐसा लगा जैसे म्यांमार भी भारत की तरह लोकतांत्रिक देश बनकर उभरेगा किन्तु म्यांमार के पास उस समय कोई मजबूत राजनैतिक दल, कुशल नेतृत्व और जनचेतना नहीं थी जो म्यांमार को सही मार्ग दिखा सके।

म्यांमार में लोकतंत्र

4 जनवरी सन् 1948 को आंग सान (Aung San) नामक एक बर्मन जातीय समूह के नेता के नेतृत्व में म्यांमार को स्वतंत्रता मिली। अलग–अलग जातीय समूहों के नेताओं ने आपसी बातचीत कर समझौते किये। इस समझौते के अनुसार उन्होंने सभी जातीय समूहों के लिए अधिकार सुनिश्चित किए तथा अल्पसंख्यकों को भी लोकतंत्र में सम्मिलित करने का प्रयास किया। इन्हीं समझौतों की वजह से पहले कुछ वर्षों तक म्यांमार में लोकतांत्रिक सरकारें चल पाई। सन्

नक्शा 11.3 : म्यांमार

1951,1956 एवं 1960 में चुनाव हुए जिसमें अनेक राजनीतिक दलों ने भाग लिया तथा लोकतांत्रिक सरकारें चलती रही। स्वतंत्र बर्मा में Sao Shwe Thaik प्रथम राष्ट्रपति एवं U Nu प्रथम प्रधानमंत्री थे।

प्रारंभ में भारत व बर्मा में क्या समानता एवं क्या अंतर था?

लोकतांत्रिक चुनाव में अन्य जातियों और अल्पसंख्यकों को शामिल करना क्यों जरूरी है?

म्यांमार में सैन्य शासन

म्यांमार में जनजातीय अधिकारों से संबंधित जटिल समस्याएँ थी। इनका हल एक मजबूत संस्थाओं वाले प्रशासनिक ढाँचे से ही निकल सकता था। म्यांमार में ऐसे ढाँचों की काफी कमी थी। सेना ने कई जनजातीय क्षेत्रों पर कब्जा कर शासन स्थापित किया। इसके विरोध में कई जनजातियों ने हथियार उठाए। सेना ने इन्हें दबाना शुरू किया।

सेनाध्यक्ष जनरल नेविन ने सन् 1962 में निर्वाचित सरकार का तख्ता पलट दिया और देश का शासन अपने हाथों में ले लिया। उन्होंने उद्योग व खनिज भण्डारों का राष्ट्रीयकरण करने की कोशिश की। निःशुल्क शिक्षा एवं आम आदमी को स्वास्थ्य की सेवाएँ उपलब्ध करवाईं।

सन् 1962 एवं सन् 1965 के बीच जमींदारी और सूदखोरी के खिलाफ महत्वपूर्ण कानून बनाए गए। ये कानून गरीब किसानों की भूमि एवं सम्पत्ति के अधिकारों की सुरक्षा के लिए बनाए गए थे। इन कानूनों में बटाईदारों के हितों की भी सुरक्षा का ध्यान रखा गया।

सैनिक शासन व लोकतंत्र का संघर्ष

म्यांमार में सैनिक शासकों ने जनता को यह दिखाने का प्रयास किया कि वे जनता के हित के लिए काम कर रहे हैं। उन्होंने उद्योगों एवं खदानों का राष्ट्रीयकरण कर दिया। परिणाम यह निकला कि देश के सभी संसाधनों का अधिकार सेना के हाथों में आ गया। जहाँ लीबिया में सेना के शासन से देश की प्रगति एवं कल्याण हुआ वहीं म्यांमार में कोई प्रगति नहीं हुई और म्यांमार आर्थिक रूप से निर्धन देश बनता चला गया। किसानों को अपनी सन्तान सेना के हाथों बेच देनी पड़ती थी। गरीबी के कारण उन्हें खेतों में मजबूरी में काम करना पड़ता था जो सैन्य अधिकारी सरकार चला रहे थे उन पर आरोप लगा कि वे मानव अधिकारों का उल्लंघन कर रहे हैं। नागरिकों को उनके घरों से बेदखल कर दूसरे स्थानों पर भेज रहे हैं। श्रमिकों से ज़ोर–जबरदस्ती काम करवा रहे हैं एवं बाल श्रमिकों पर अत्याचार कर रहे हैं।

म्यांमार में छात्रों द्वारा ही अधिकतर विरोध प्रदर्शन किया जाता था जिसे सेना द्वारा कुचल दिया जाता था। सन् 1988 में सेना के खिलाफ एक बड़ा विरोध प्रदर्शन किया गया जिसे सेना ने बड़ी निर्ममता से कुचल दिया। हज़ारों प्रदर्शनकारी मारे गए। वहाँ सेना के एक दल ने शासन अपने हाथों में ले लिया जिसने चुनाव कराने का वचन दिया। इसी समय म्यांमार में आंग सान सू की ने देश में राजनैतिक सुधार के लिए आन्दोलन प्रारम्भ किया। तब से सू की वहाँ के लोकतंत्र के संघर्ष की प्रमुख नेता बन गई।

चित्र 11.3 : आंग सान सू की

म्यांमार में सैनिक सत्ता किस प्रकार आई?

म्यांमार के सैनिक शासकों ने जनता को अपने विश्वास में लेने के लिए क्या–क्या काम किए?

सैनिक शासकों द्वारा खदानों और उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के बावजूद म्यांमार में अधिक प्रगति क्यों नहीं हो पाई?

म्यांमार के शासकों ने सन् 1990 में चुनाव घोषित किए। इन चुनावों में एक राजनैतिक दल 'नेशनल लीग फॉर डेमोक्रेसी' (National League for Democracy, N.L.D) ने 80 प्रतिशत के भारी बहुमत से चुनाव में जीत हासिल

की जबकि उनकी नेता सू की जेल में थी। सेना ने उन्हें रिहा करने से मना कर दिया और उनके दल को सरकार बनाने की अनुमति नहीं दी। चुनाव खत्म होने के बाद सेना ने उन्हें जेल से निकाल कर उनके घर में ही नजरबन्द कर दिया। जहाँ से वह न तो बाहर घूम सकती थी और न ही किसी से बात कर सकती थी। उन्हें अपने पति के अन्तिम संस्कार में भी भाग लेने नहीं दिया गया और न ही अपने दोनों बेटों से मिलने दिया गया।

विश्व के लोकतांत्रिक देशों ने म्यांमार के सैन्य सरकार पर ज़ोर डाला कि वे अपने देश में जेलों में बन्द सभी राजनैतिक कैदियों को रिहा करें तथा वहाँ लोकतांत्रिक सरकार की स्थापना करें। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर दबाव डालने हेतु सभी देशों ने म्यांमार से व्यापारिक सम्बन्ध तोड़ लिए। इस कारण म्यांमार न तो आयात कर सकता था और न ही निर्यात। इस अन्तर्राष्ट्रीय दबाव के कारण म्यांमार के सैनिक शासन को अपनी नीति में कुछ बदलाव करने पड़े।

आग सान सू की कौन थी? उन्होंने म्यांमार में बदलाव के लिए क्या प्रयास किए?

नेशनल लीग फॉर डेमोक्रेसी को चुनाव में 80 प्रतिशत सीट मिलने के बावजूद म्यांमार के सैनिक शासकों ने सरकार क्यों नहीं बनाने दी?

अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक क्रियाएं किस प्रकार शासन को प्रभावित करती हैं?

विश्व के लोकतांत्रिक देशों द्वारा म्यांमार पर लगाए गए आर्थिक प्रतिबन्धों का क्या प्रभाव पड़ा?

म्यांमार में बदलाव

जनरल थीन–सेन 2007 से यू.एस.डी.पी. से प्रधानमंत्री बने। सन् 2008 में म्यांमार में कई तरह के बदलाव हुए, जैसे– लोकतंत्र की स्थापना के लिए सैनिक शासन ने जनमत संग्रह का आदेश दिया परन्तु जनमत संग्रह नहीं कराया गया। देश का नया नाम बर्मा से बदलकर म्यांमार रख दिया गया। सन् 2010 में संयुक्त राष्ट्र संघ की देखरेख में म्यांमार में चुनाव हुए। सू की को नज़रबन्द ही रखा गया और चुनाव में भाग लेने नहीं दिया गया। उन्हें निर्वाचन प्रक्रिया पूरी होने के बाद ही घर से बाहर निकलने दिया गया। उनकी पार्टी एन.एल.डी. (NLD) ने विरोध स्वरूप चुनाव में भाग लेने से मना कर दिया। परिणाम यह निकला कि सेना द्वारा सहायता प्राप्त यूनियन सॉलिडैरिटि एंड डेवलपमेंट पार्टी (Union Solidarity and Development Party - USDP) ने यह चुनाव जीत लिया। उन पर चुनाव में भ्रष्टाचार के आरोप लगाए गए। इस तरह म्यांमार में सेना का शासन समाप्त हो गया और वहाँ के नए राष्ट्रपति थेन सेन (Then Sein) बन गए फिर भी वहाँ सरकार पर सेना का ही नियंत्रण था। विश्व के अधिकांश देशों ने इस चुनाव को मान्यता नहीं दी। सन् 2011 में म्यांमार में 45 सीटों के लिए उपचुनाव हुए। इन चुनावों में सू की की पार्टी एन.एल.डी. ने भी भाग लिया और 43 सीटें जीत ली। सू की का आज़ाद होना और उनकी पार्टी का चुनाव में भाग लेना म्यांमार में लोकतंत्र के शुरूआत की निशानी थी। 2015 के आम चुनाव के घोषित चुनाव परिणाम के अनुसार सू की की पार्टी को दोनों सदनों में पूर्ण बहुमत मिला। 15 मार्च 2016 में श्रीक्याव के शपथ ग्रहण के साथ म्यांमार में लोकतांत्रिक प्रक्रिया और सुदृढ़ हुई।

लीबिया एवं म्यांमार की तुलना

हमने वर्तमान में हुए दो लोकतांत्रिक संघर्षों के विषय में पढ़ा है। यूँ तो दोनों देश अलग–अलग हैं किन्तु वहाँ के लोग जो चाहते थे उसमें समानताएँ हैं।

लीबिया में कल्याणकारी कार्य किए गए जिसमें जनता की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा किया गया। उन्हें अपना जीवन स्तर शिक्षा एवं नौकरियों द्वारा सुधारने के मौके मिले। म्यांमार में भी कुछ कल्याणकारी कदम उठाए गए एवं भूमि सुधार के कानून भी बनाए गए। सेना ने देश के संसाधनों और निवासियों का शोषण किया जिससे वहाँ की जनता को निर्धनता से गुज़रना पड़ा। दोनों देशों के शासक ऐसे थे जिन्हें सेना का पूरा सहयोग मिला। उन्होंने देश में स्वतंत्र चुनाव होने नहीं दिए और न ही स्वतंत्र राजनैतिक दल बनने दिए। उन्होंने चुनाव में जीतने वालों को सरकार बनाने का भी अवसर नहीं दिया। इन तानाशाहों ने लोगों को अपने विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता और कोई संस्था बनाने की अनुमति नहीं दी। सरकार का विरोध करने की भी आज़ादी नहीं दी।

म्यांमार लीबिया से अलग था। म्यांमार में शासन लोकतंत्र से प्रारम्भ हुआ और सेना के हाथों में चला गया। वहीं लीबिया में राजतंत्र से खत्म होकर सैन्य शासन लागू हो गया। दोनों देशों में एक स्वस्थ लोकतंत्र के लिए कोई भी परिस्थिति नहीं थी। दोनों देश राजनैतिक एवं नैतिक रूप में भिन्न थे जनता एवं शासक वर्ग का किसी मिले–जुले राजनैतिक समझौते पर आना आसान नहीं था।

दोनों देशों के लोग चाहते थे कि उनके देश में ऐसी सरकार बने जो जनता द्वारा स्वतंत्र रूप से चुनी गई हो। यहाँ के लोग अपने विचारों को प्रकट करने की स्वतंत्रता चाहते थे, किसी गलत बात का विरोध करने का हक चाहते थे। वे ऐसा राजनैतिक दल चाहते थे जो स्वतंत्र रूप से कार्य कर सके।

दोनों देशों में शासन का बहुत अधिक केंद्रीकरण हुआ था जिसकी वजह से सन्तुलित विकास सम्भव नहीं था। ये लगातार बढ़ते भ्रष्टाचार से भी बुरी तरह प्रभावित थे। भ्रष्टाचार की वजह से आम लोगों के रोज़मर्रा के सरकारी कार्य भी सामान्य ढंग से नहीं होते थे जिसकी वजह से लोगों में निराशा, गुस्सा तथा विद्रोह की भावनाएँ लगातार बढ़ने लगीं। लोगों को यह विश्वास होने लगा कि उनकी मुश्किलों के हल लोकतंत्र में ही सम्भव हैं।

हमने यहाँ लीबिया और म्यांमार की घटनाओं द्वारा पिछले कुछ दशकों में लोकतंत्र के विस्तार के लिए होने वाले संघर्षों को समझने का प्रयास किया है। बीसवीं शताब्दी में लोकतांत्रिक सरकारों की माँग अनेक देशों में कई रूपों में बढ़ रही है। उपनिवेशवाद से स्वतंत्र होने वाले अधिकतर देशों में पहले लोकतांत्रिक सरकारें ही स्थापित हुई जहाँ लोकतंत्र स्थाई नहीं बन सका वहाँ अभी भी लोग लोकतंत्र की स्थापना के लिए संघर्ष कर रहे हैं। आज के इस दौर में किसी भी देश के नागरिक किसी राजा या तानाशाह का शासन स्वीकार नहीं करना चाहते।

नोबल पुरस्कार

सन् 1991 में सू की को शान्ति के लिए नोबल पुरस्कार दिया गया था जबकि वे नज़रबन्द थीं। उनकी अनुपस्थिति में उनके पुत्र ने नोबल पुरस्कार प्राप्त करते हुए भाषण दिया था, उसके अंश निम्नलिखित हैं–

> **"वह यह भाषण कुछ इस तरह देंगी कि यह नोबल पुरस्कार वो अपने लिए नहीं बल्कि अपने देशवासियों के नाम पर लेंगी। ....यह पुरस्कार भी उन्हीं का है। बर्मा (म्यांमार) में अनेक वर्षों से एक लम्बा संग्राम चल रहा है जो कि शान्ति, स्वतंत्रता एवं लोकतंत्र के लिए है। उसमें जीत भी उन्हीं की होगी। ...मेरे अपने विचार में वे अपने समर्पण और त्याग की एक ऐसी निशानी बन गई है जिनके द्वारा आप बर्मा के नागरिकों की दुर्दशा देख सकते हैं। गाँव में रहने वाले लोगों की दुर्दशा, युवा लोगों की परेशानियाँ जो बर्मा की आशा हैं, जो बर्मा के जंगलों में भागकर छुप गए हैं और जिनकी मलेरिया से मौत हो रही हैं, कैदियों को जेल में यातनाएँ दी जाती हैं।**
>
> **...अन्त में वह कहती कि 'बर्मा में लोकतंत्र के लिए जो संग्राम हो रहा है वह वहाँ के लोगों का संग्राम है जिसके जरिए वे इस विश्व समुदाय में एक सम्पूर्ण और अर्थपूर्ण जीवन स्वतंत्रता और बराबरी से जीना चाहते हैं।"**

सन् 2008 के बाद म्यांमार के सैनिक शासकों ने अपनी नीति में मुख्य रूप से कौन–कौन से बदलाव किए?

सन् 2010 के बाद म्यांमार के सैनिक शासकों ने आंग सान सू की व उनके राजनैतिक दल एन.एल.डी. को सत्ता में आने से रोकने के लिए क्या प्रयास किए?

अभ्यास

1 सही विकल्प चुनिए–

1 लीबिया के राजा कौन थे?

(क) इदरिस (ख) मुसोलिनी (ग) कर्नल गद्दाफी (घ) आंग सान।

2 लीबिया में विद्रोह किस शहर से प्रारम्भ हुआ?

(क) ट्रिपोली (ख) बेनगाजी (ग) अल बायदा (घ) रंगून

3 लीबिया में सन् 2010 की जनगणना के अनुसार साक्षरता का प्रतिशत कितना है?

(क) 50 (ख) 70 (ग) 80 (घ) 90

4 म्यांमार में लोकतंत्र का तख्ता पलटकर कौन शासक बने?

(क) आंग सान (ख) नेविन (ग) आंग सान सू की (घ) थेन सेन।

5 आंग सान सू की को किस क्षेत्र में कार्य करने के लिए नोबल पुरस्कार मिला?

(क) साहित्य (ख) शान्ति (ग) समाज सेवा (घ) चिकित्सा

2 खाली स्थान भरें–

1. लीबिया उत्तरी अफ्रीका का एक..देश था।
2. वर्तमान में म्यांमार के राष्ट्रपति..हैं।
3. लीबिया की जनता मुख्यतः कृषि और ....का कार्य करती थी।
4. म्यांमार..देश का उपनिवेश था।
5. म्यांमार में किसानों को अपनी सन्तानों को..को बेचना पड़ता था।
6. म्यांमार के प्रथम राष्ट्रपति का नाम ....तथा प्रथम प्रधानमंत्री का नाम .... है।

3 निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए–

1. सन् 2011 में लीबिया में विरोध प्रदर्शन क्यों हुआ?
2. लीबिया व म्यांमार की जनता की कठिनाईयों में से कौन–कौन से कष्ट व अत्याचार की कठिनाईयाँ वर्तमान भारत में जनता या आपको अनुभव होती है? सूची बनाइए।
3. शहरीकरण का लीबिया की जनता पर क्या–क्या प्रभाव पड़ा?
4. लीबिया में गद्दाफी शासन के विरुद्ध आन्दोलन में आम जनता के अतिरिक्त किन–किन लोगों ने भाग लिया?
5. म्यांमार में सैनिक शासक नागरिकों पर कौन–कौन से अत्याचार कर रहे थे?
6. सू की को नज़रबन्द क्यों रखा गया था?
7. गद्दाफी द्वारा आर्थिक, सामाजिक उन्नति करने के बाद भी विद्रोह क्यों हुआ?
8. म्यांमार में अमेरिका ने दखल क्यों नहीं दिया?
9. म्यांमार में स्वतंत्रता के बाद भी लोकतंत्र सफल क्यों नहीं हुआ?
10. अमेरिका, फ्रांस एवं ब्रिटेन ने लीबिया पर आक्रमण क्यों किया?
11. लीबिया एवं म्यांमार के सैनिक शासन में क्या अन्तर है?
12. लीबिया में स्वतंत्रता के बाद भी लोकतंत्र की स्थापना क्यों नहीं हो सकी? अपने विचार दीजिए।
13. म्यांमार एवं लीबिया के सैनिक शासन द्वारा जन कल्याण के लिए किए गए कार्यों में क्या–क्या अन्तर हैं?
14. म्यांमार में आग सान सू की का लोकतंत्र की स्थापना के संघर्ष में क्या योगदान है?
15. साक्षरता एवं जन संचार माध्यमों की लोकतंत्र के विषय में जागरूकता पैदा करने में क्या भूमिका हो सकती है?
16. सन् 1990 के चुनाव परिणामों को म्यांमार के सैन्य शासन ने स्वीकार क्यों नहीं किया?

Y1FTIK

**

12

Y1HF8E

लोकतंत्र की प्रमुख विशेषताएँ

सन् 1950 के बाद कई देशों में लोकतंत्र की शुरूआत औपनिवेशिक शासन से मुक्ति के रूप में हुई। सन् 1990 के दशक में लोकतांत्रिक शासन का विस्तार साम्यवादी देशों के पतन से प्रारंभ हुआ। सन् 2010 के बाद से लीबिया और म्यांमार जैसे देशों में अधिनायकतंत्र (तानाशाही) के खिलाफ आवाज़ें उठती रही हैं और लोकतांत्रिक शासन अपनाया जा रहा है।

अधिनायकतंत्र शब्द का प्रयोग आमतौर पर ऐसे व्यक्ति के शासन के लिए किया जाता है जिसके अन्तर्गत कोई व्यक्ति किसी देश की सत्ता पर पूर्ण अधिकार स्थापित कर लेता है। वह शासन के सभी ढाँचों को अपने नियंत्रण में ले लेता है। कर्नल गद्दाफी तथा नेबिन अधिनायकवादी शासन के प्रमुख उदाहरण हैं। ऐसा व्यक्ति सेना का समर्थन प्राप्त करता है। ऐसी स्थिति में सभी विरोधी राजनैतिक दलों को समाप्त कर दिया जाता है और मात्र एक दल होता है।

अधिनायकतंत्र में शासक सारी शक्तियों को अपने हाथों में केन्द्रित कर लेते हैं। अधिनायकतंत्र में कानून का आधार शासक की इच्छा होती है। शासक अपनी आवश्यकताओं के अनुसार कोई भी कानून बना लेता है। शासक द्वारा दिया गया निर्णय ही अधिनायकतंत्र का न्याय होता है। लोकतंत्र अधिनायकतंत्र से बिल्कुल विपरीत शासन प्रणाली है। यहाँ हम लोकतांत्रिक व्यवस्था पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

अधिनायक तंत्र क्या है?

अलोकतंत्र की पहचान किए बिना लोकतंत्र का मूल स्वरूप, विशेषताएँ या पहचान के लक्षण एवं अवधारणा को समझना या अंतर करना कठिन है। कर्नल गद्दाफी व थेन–सेन अपने शासन को गणतंत्र कहते थे, जनता को निःशुल्क उच्चस्तरीय जीवन की सुविधाएँ प्रदान करने का प्रयास किया, परन्तु जनता को चुनाव और प्रतिनिधित्व अधिकारों के बाद भी शासन अलोकतांत्रिक लगता था। इसके पहचान के लक्षण अग्रांकित हैं जिसे निरंकुश शासन कहते हैं। लोकतंत्र जनता के अंकुश में ही होती है!

* एक व्यक्ति की मनमानी का शासन
* एक दल की सरकार और विपक्षी दलों पर प्रतिबंध
* चुनाव व प्रतिनिधित्व का विधि निर्माण में भागीदारी नहीं
* संगठन निर्माण, सत्याग्रह व विचार–अभिव्यक्ति पर प्रतिबंध
* व्यक्तिगत स्वतंत्रता नियंत्रित या प्रतिबंधित
* निष्पक्ष चुनाव व्यवस्था नहीं
* स्वतंत्र–निष्पक्ष न्यायपालिका, जनसंचार व चुनाव आयोग नहीं

कौन–कौन से देश में उपर्युक्त लक्षण कब–कब थे?

कौन–कौन से देश में निरंकुश तंत्र के लक्षण कब–कब अंत हो गए?

उक्त दोनों प्रश्नों के उत्तर विश्व के मानचित्र 12.1, 12.2 और 12.3 का अध्ययन कर विश्लेषण कीजिए।

लोकतंत्र का विश्व विस्तार

हमने इतिहास के खण्ड में यूरोप में लोकतंत्र के विकास और विश्व में लोकतंत्र के प्रसार की घटनाओं को पढ़ा है।

शिक्षक की सहायता से विश्व के मानचित्र क्रमांक 12.1, 12.2 एवं 12.3 में लोकतांत्रिक देशों का अवलोकन करें।

सन् 1900 तक के लोकतांत्रिक सरकार वाले देश का नाम व संख्या पता करें।

सन् 1900 से 1950 के मध्य बने लोकतांत्रिक देशों की पहचान कीजिए?

ऐसे देशों की पहचान कीजिए जहाँ सन् 1950 से 1975 के बीच लोकतंत्र आया?

यूरोप के कुछ ऐसे देशों की पहचान कीजिए जो सन् 1975 से 2000 के बीच लोकतांत्रिक हैं?

सन् 2011 तक कुल लोकतांत्रिक देशों की संख्या ज्ञात कीजिए।

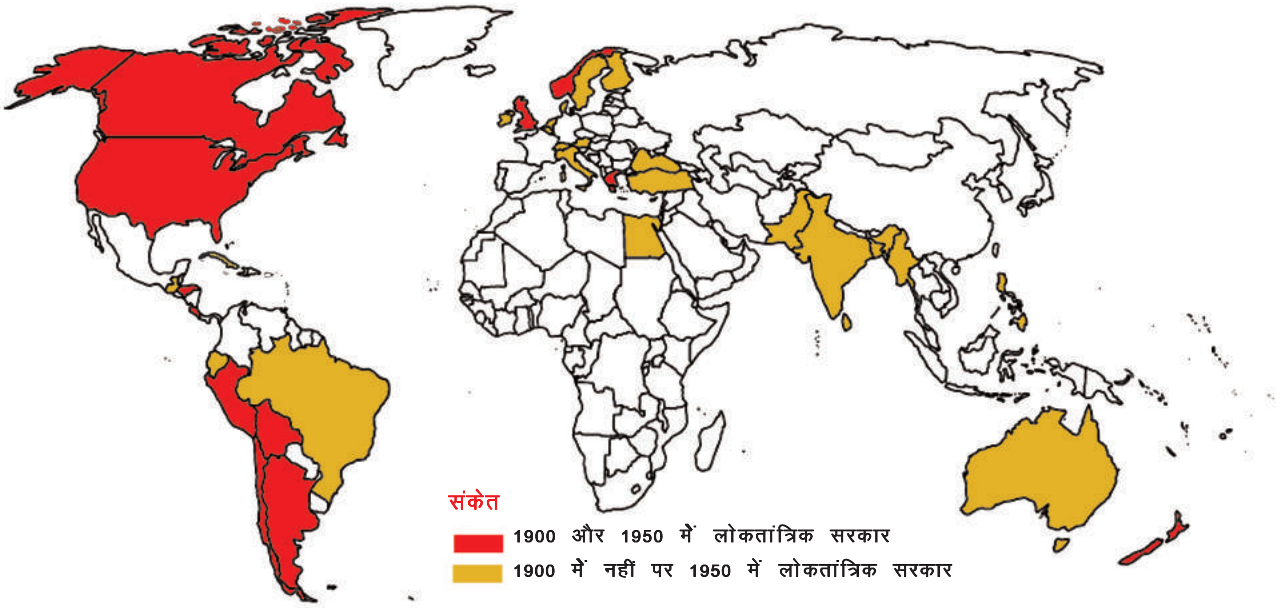

नक्शा 12.1 : लोकतांत्रिक देश सन् 1900 और 1950 के बीच

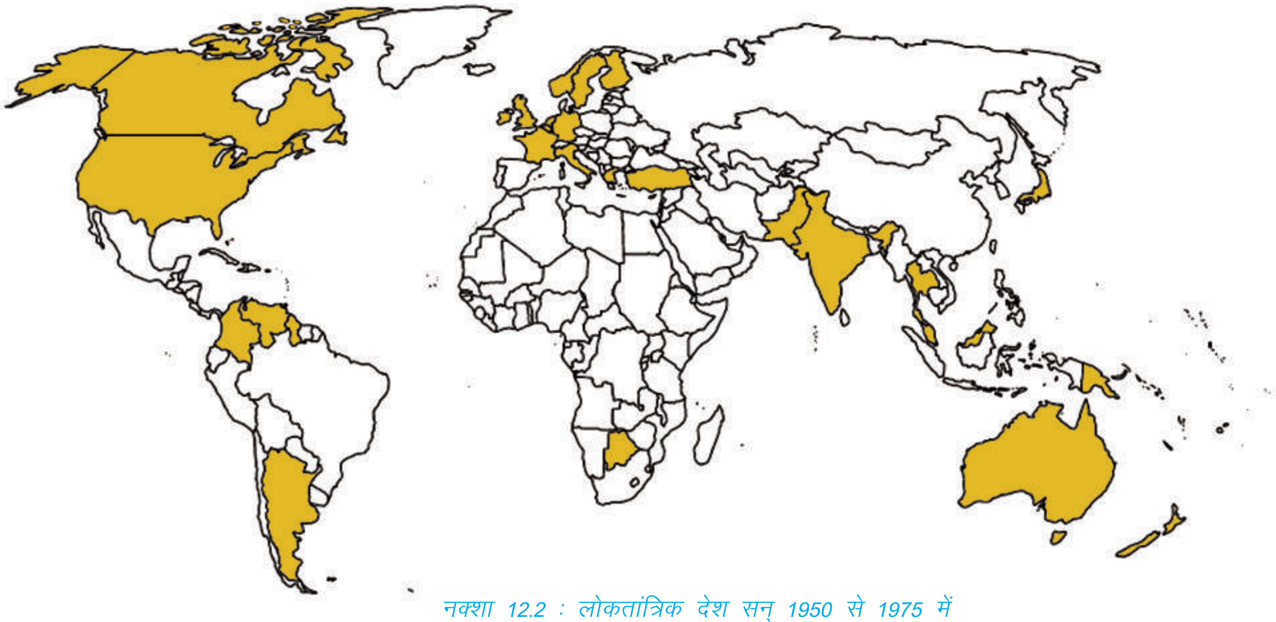

नक्शा 12.2 : लोकतांत्रिक देश सन् 1950 से 1975 में

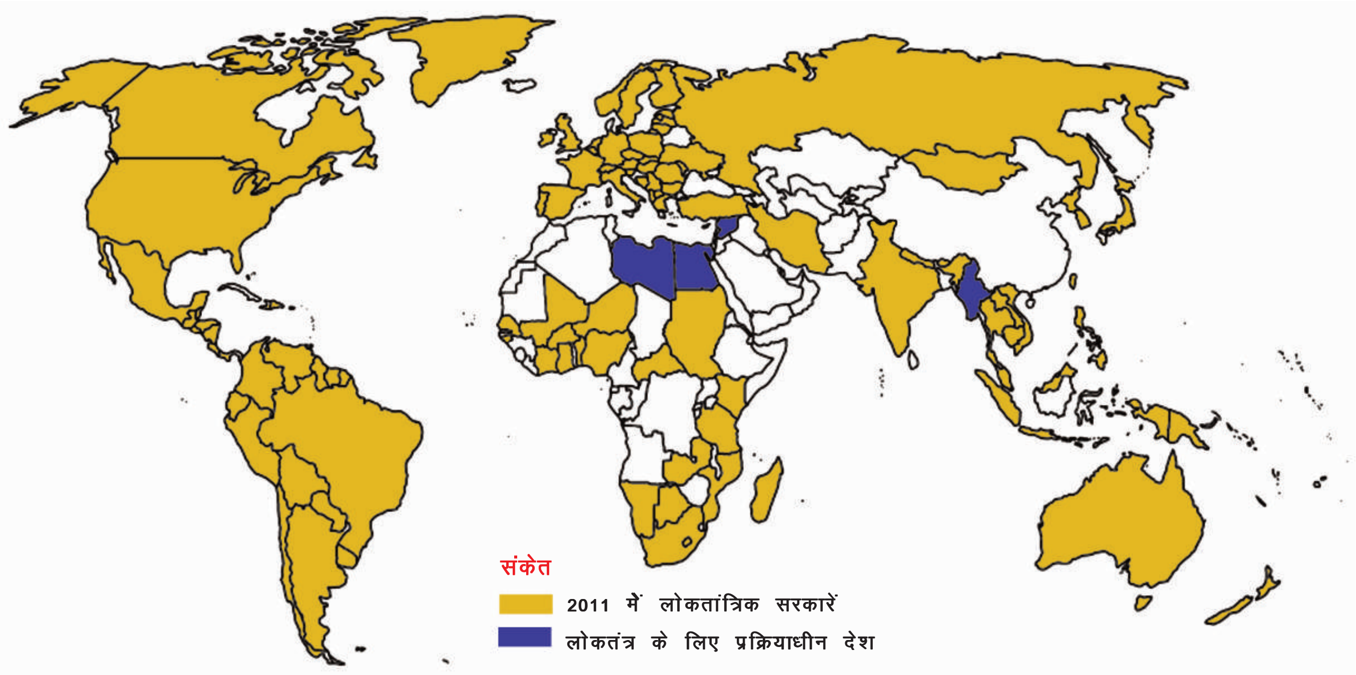

नक्शा 12.3 : लोकतांत्रिक देश सन् 1975 से 2000 में

ऐसे देशों की पहचान कीजिए जिन्होंने सन् 1975 के बाद लोकतंत्र अपनाया।

ऐसे देशों की सूची बनाएँ जिन्होंने सन् 2000 तक भी लोकतांत्रिक प्रणाली को नहीं अपनाया था? ऐसे देशों की संख्या कितनी है?

मानचित्रों को देखते हुए बताएँ कि कौन–सा दौर लोकतंत्र के विस्तार के लिए सबसे महत्वपूर्ण था और क्यों?

पिछले अध्याय में **दो देशों में लोकतंत्र के लिए हुए संघर्ष** को पढ़ने के बाद हम तीन बातें याद कर सकते हैं–

1 लीबिया में स्वतंत्रता के बाद राजतंत्र और कर्नल गद्दाफी का शासन।

2 आंग सान की हत्या के बाद म्यांमार में सैन्य शासन।

3 लीबिया और म्यांमार में लोकतांत्रिक शासन के लिए संघर्ष।

अपने शिक्षक की सहायता से चर्चा कीजिए।

इन दोनों देशों की सरकारों में कौन सी समानताएँ और असमानताएँ हैं? हम इन सरकारों को क्यों तानाशाही सरकार कहते हैं?

लोकतंत्र न होने से लीबिया व म्यांमार की जनता को किन–किन अधिकारों से वंचित किया गया?

यदि गद्दाफी ने लीबिया में लोकतांत्रिक संगठनों का सम्मान करते हुए संस्थाओं को मज़बूती दी होती, तो लीबिया के लोगों पर इसका क्या प्रभाव पड़ता?

लीबिया और म्यांमार के सैनिक शासकों का चुनाव जनता ने नहीं किया जिन लोगों का सेना पर नियंत्रण था, वे स्वयं शासक बन गए। शासन के निर्णयों में जनता की कोई भागीदारी नहीं थी जिन देशों में चुनाव से सरकार बनती है उन्हें लोकतांत्रिक सरकार कहते हैं। यही कारण है कि विश्व के अधिकांश देशों की सरकार स्वयं को लोकतांत्रिक सरकार मानती है। मात्र चुनाव लोकतंत्र की पहचान नहीं है। लोकतंत्र क्या है?

लोकतंत्र शासन का वह रूप है जिसमें जनता शासकों का चुनाव करती है और चयनित शासकों द्वारा शासन किया जाता है। लोकतंत्र में सरकार चुनने और बदलने में जनता की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

लोकतंत्र के विषय में ऊपर दिए गए कथनों से कुछ प्रश्न मन–मस्तिष्क में सहज ही उठते हैं जैसे–

1. **शासक कौन होगा?**
2. **किस तरह का चुनाव लोकतांत्रिक कहा जाएगा?**
3. **किनके द्वारा शासकों का चुनाव किया जाता है?**
4. **शासक चुने जाने के लिए क्या योग्यता होनी चाहिए?**

इन प्रश्नों को समझने के लिए हम लोकतंत्र की मुख्य बातों का विश्लेषण करेंगे।

उत्तरदायी सरकार

हमने लीबिया में देखा कि निर्णय की अन्तिम शक्ति सैनिक संगठन के पास थी। वह जनता द्वारा चुनी हुई नहीं थी। वहाँ की जनता सैनिक संगठन के आदेशों का पालन करने के लिए बाध्य थी। जबकि सैनिक संगठन किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं था। इनका चुनाव प्रतिनिधिगण करते है।

एक लोकतांत्रिक देश में जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधि और उनकी प्रतिनिधि–सभा सर्वोच्च होती है। जितनी भी चुनी हुई सरकारें कार्य कर रही होती हैं, वे विभिन्न तरीकों से जनता के प्रति उत्तरदायी होती हैं। भारत की शासन व्यवस्था पर नज़र डाली जाए तो पता चलता है कि केन्द्र की सरकार व विभिन्न राज्य सरकारें कई तरह से लोगों और उनके प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी होती हैं।

भारत में कार्यपालिका के सभी लोग, जैसे– प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री, मंत्रीपरिषदों के मंत्री व उच्च अधिकारी संसद और राज्य विधानमण्डलों (व्यवस्थापिका) के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इनका चुनाव प्रतिनिधिगण करते हैं।

निश्चित अवधि के बाद चुनाव

सभी सरकारों का चुनाव एक निश्चित समय के लिए किया जाता है। क्या आप बता सकते हैं कि भारत में इसकी अवधि कितने वर्ष के लिए होती है? सरकार सत्ता में पुनः तभी आ सकती है जब जनता उसे पुनः चुने। चुनाव का समय लोगों के लिए वह समय होता है जब वे लोकतंत्र में अपनी शक्ति का अनुभव करते हैं। इस तरह निश्चित अवधि के बाद नियमित चुनाव होने पर जनता का सरकार पर नियंत्रण बना रहता है। यदि जनता जन–प्रतिनिधियों के कार्यों से सन्तुष्ट न हो तो चुनाव के द्वारा सरकार को बदल सकती है।

स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव

स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव करवाने के लिए यह आवश्यक है कि ये चुनाव किसी स्वतंत्र संस्था द्वारा करवाए जाएँ तथा विभिन्न राजनैतिक दलों को इनमें बिना किसी पूर्व शर्त के भाग लेने की अनुमति दी जाए। भारत में चुनाव करवाने के लिए **'चुनाव आयोग'** नाम की संस्था कार्य करती है। हमारे संविधान में चुनाव आयोग को स्वतंत्र रूप से काम करने के लिए कई विशेष अधिकार दिए गए हैं। निष्पक्ष चुनाव के साथ–साथ लोकतंत्र के लिए बहुदलीय प्रतिस्पर्धा की भी आवश्यकता है। इसी से लोगों को विकल्प मिलते हैं जिनमें से वे चुनाव कर सकते हैं।

किन परिस्थितियों में जनता सरकार को बदल सकती है? चर्चा करें।

चुनाव के लिए निश्चित समय अवधि क्यों होती है?

लोकतंत्र में एक से अधिक दलों का होना क्यों आवश्यक है?

सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार (Universal Adult Franchise)

हम कहते हैं कि लोकतंत्र जनता का शासन है अर्थात् हमारे देश में सभी वयस्क व्यक्ति – चाहे महिला हो या पुरुष, अमीर हो या गरीब, किसी भी धर्म के अनुयायी हों, चाहे वे कोई भी भाषा बोलते हों उन्हें चुनाव में मतदान का अधिकार है। यह राजनैतिक समानता है। प्रत्येक व्यक्ति के वोट का समान महत्व है। इसमें गरीब हो या अमीर, शिक्षित या अशिक्षित लोकतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति के वोट की समान कीमत है।

प्रारम्भ में कुछ देशों में मतदान का अधिकार मात्र उन लोगों को ही प्राप्त था जिनके पास सम्पत्ति थी या कर (tax) देते थे। धीरे–धीरे संघर्ष के बाद कई देशों में मताधिकार सभी को दिया जाने लगा। भारत में संविधान लागू होने के समय से ही सभी को सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार प्राप्त है जिसका अर्थ है कि 18 वर्ष या उससे ऊपर की आयु के सभी लोग मतदान कर सकते हैं।

क्या सार्वभौमिक मताधिकार देने के लिए कुछ शर्तें होनी चाहिए? चर्चा करें।

राजनैतिक समानता पर अपने विचार व्यक्त कीजिए?

भारत में इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन से मतदान किस वर्ष प्रारम्भ हुआ?

लोकतंत्र में जनभागीदारी

लोकतंत्र में शासन के संचालन में जनता की भागीदारी होती है। कानून बनाने और उनको लागू करने में भी नागरिकों की सक्रिय भागीदारी होती है। सरकार को जनता से ही समस्याओं एवं आवश्यकताओं की जानकारी मिल सकती है। योजनाओं के क्रियान्वयन में निरीक्षण, परीक्षण, सुझाव, शिकायत करनी चाहिए।

लोकतंत्र की मजबूती के लिए नीति–निर्माण से पूर्व जनता में विभिन्न माध्यमों से व्यापक चर्चा होती है। लोग किसी भी कानून या नीति के विषय में अखबारों में लेख लिखकर, टेलीविज़न एवं इंटरनेट पर होने वाली बहस में भाग लेकर, ज्ञापन देकर, सेमिनारों, कार्यशालाओं, सम्मेलनों व अन्य कई माध्यमों से अपने विचार रखते हैं। ऐसी चर्चाओं को संचालित करने के लिए समितियाँ और समूह बनाए जाते हैं। जनता की उदासीनता लोकतंत्र की सबसे बड़ी शत्रु है।

चित्र 12.1 : मतदान में जनभागीदारी

चित्र 12.2 : इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन

आप लोकतंत्र में अपनी भागीदारी किस–किस तरह से निभा सकते हैं? आपस में चर्चा कीजिए।

आपके विचार में जनभागीदारी के बिना लोकतंत्र सफल होगा या नहीं कारण दीजिए?

कानून का शासन

कानून का शासन लोकतंत्र की एक सबसे बड़ी विशेषता है। कानून के शासन से आशय है कि कोई भी सरकार सभी कार्य कानून के अनुसार करे तथा ऐसे कार्य नहीं किए जाएँ जो कानून के अनुसार न हो। कानून के शासन का यह भी अर्थ है कि देश के सभी नागरिकों पर सारे कानून समान रूप से लागू होंगे। किसी भी व्यक्ति को कानून से किसी भी तरह की छूट नहीं मिलेगी। ऐसे बहुत से उदाहरण मिलते हैं जब देश के बड़े अधिकारियों और नेताओं को सामान्य नागरिकों की तरह कानून का पालन करते हुए न्यायालय में जाना पड़ा। उन्हें आम नागरिकों की तरह ही कानूनी प्रक्रिया का सामना करना पड़ा।

कानून का सम्मान

लोकतंत्र में हम ऐसी संस्थाओं पर निर्भर रहते हैं जो संविधान या निर्धारित कानून के अनुसार कार्य करती हैं। किसी

को भी कोई गैर–कानूनी कार्य करने का अधिकार नहीं है। इस भावना का सम्मान ही कानून का सम्मान करना है।

एक लोकतांत्रिक सरकार सिर्फ इस कारण से मनमानी नहीं कर सकती कि उसने चुनाव जीता है। उसे भी कुछ बुनियादी तौर–तरीकों व स्थापित कानूनों का पालन करना होता है। न्यायालय की स्वतंत्रता का सम्मान करना और उसके आदेशों का पालन करना, शासन और नागरिकों का दायित्व होता है।

आपके आसपास की उन घटनाओं की सूची बनाएँ जिनमें कानून का सम्मान नहीं किया गया। शिक्षक की सहायता से इस सूची पर चर्चा कीजिए।

मानव अधिकार एवं लोकतंत्र

मानव अधिकार वे आवश्यकताएँ हैं जो किसी व्यक्ति को गरिमापूर्ण जीवन जीने तथा जीवन में विकास के लिए ज़रूरी हैं। इन अधिकारों के बिना लोगों का सम्पूर्ण विकास नहीं हो सकता। ऐसे अधिकार लोकतांत्रिक व्यवस्था में लोगों को प्राप्त होते हैं। दूसरे अर्थों में यदि लोगों के अपने विचारों को व्यक्त करने, विभिन्न विषयों पर बहस करने, बातचीत करने, संगठन बनाने और अन्य मानव अधिकारों द्वारा ही लोकतंत्र को अधिक–से–अधिक मजबूत बनाया जा सकता है।

मानव अधिकारों के न होने पर लोगों की लोकतंत्र में भागीदारी कैसे प्रभावित होगी ?

अल्पसंख्यकों के अधिकार

अधिकांश देशों में जाति, धर्म–सम्प्रदाय, भाषा, रंग, क्षेत्र, लिंग या राजनैतिक विचार के आधार पर कुछ लोगों की जनसंख्या कम होती है, इन्हें अल्पसंख्यक कहा जाता है। अधिकतर देशों में बहुसंख्यकों का शासन होता है। परन्तु लोकतंत्र के अर्थ में एकरूपता नहीं है। लोकतंत्र समाज में तरह–तरह की विविधताओं को स्वीकार करता है। इसलिए अल्पसंख्यकों के मत या राय का सम्मान करना लोकतांत्रिक मूल्यों का हिस्सा है। अतः अल्पसंख्यकों को संविधान द्वारा कई अधिकार दिए जाते हैं।

किसी भी क्षेत्र में अल्पसंख्यक किन्हें कहा जाता है? एक उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

यदि अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यकों के बराबर अधिकार न दिए जाएँ तो उन पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

लोकतंत्र में विविधता को स्वीकार करना क्यों ज़रुरी है?

लोकतंत्र और समावेशीकरण

लोकतंत्र में बहुमत के अनुसार तय किया जाता है कि सरकार कैसे बनेगी। अलग–अलग विचार होने पर भी हम बहुमत से लिए गए निर्णय मान लेते हैं। कई मायनों में यह उपयोगी और सरल तरीका है, परन्तु कुछ मुद्दों में यह समावेशी सिद्ध नहीं होता है। अल्पसंख्यक लोग एक अलगाव महसूस करते हैं। लोकतंत्र को समाज में समावेशीकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा देना चाहिए जिससे अल्पसंख्यकों की भागीदारी सुनिश्चित हो पाए। वे अपने–आप को बेगाना न समझें। इसे एक उदाहरण से समझने की कोशिश करते हैं। बेल्जियम यूरोप का एक छोटा देश है। यहाँ समाज की जातीय और भाषाई विभाजन कुछ इस तरह से है – 59 प्रतिशत लोग डच बोलते हैं, 40 प्रतिशत लोग फ्रेंच और थोड़े से लोग जर्मन भाषा बोलते हैं। वे प्रमुख रूप से अलग–अलग क्षेत्र में निवास करते हैं। परन्तु राजधानी ब्रुसेल्स के 80 प्रतिशत लोग फ्रेंच और 20 प्रतिशत लोग डच बोलते हैं। तीनों समुदायों के बीच टकराव की स्थिति बनी रहती थी, खासकर राजधानी ब्रुसेल्स में जहाँ डच बोलने वाले कम हैं। ऐसी स्थिति में बेल्जियम में समाजों का समावेशीकरण करने के लिए कुछ खास प्रावधान किए गए–

संविधान में इस बात का स्पष्ट प्रावधान है कि केन्द्रीय सरकार में डच और फ्रेंच भाषी मंत्रियों की संख्या समान रहेगी। कुछ विशेष कानून तभी बन सकते हैं जब दोनों भाषाई समूह के सांसदों का बहुमत उसके पक्ष में हो। इस प्रकार किसी एक समुदाय के लोग एकतरफा फैसला नहीं कर सकते।

- संविधान ने शासन की अनेक शक्तियाँ क्षेत्रीय सरकारों के सुपुर्द कर दी है। यानी राज्य सरकारें इन मामलों में केन्द्रीय सरकार के अधीन नहीं हैं।
- ब्रुसेल्स में अलग सरकार है और इसमें दोनों समुदायों का समान प्रतिनिधित्व है। फ्रेंच भाषी लोगों ने ब्रुसेल्स में समान प्रतिनिधित्व के इस प्रस्ताव को स्वीकार किया, क्योंकि डच भाषी लोगों ने केन्द्रीय सरकार में बराबरी का प्रतिनिधित्व स्वीकार किया था।

इस तरह हम देखते हैं कि बेल्जियम के लोगों ने किस समझदारी के साथ अलग–अलग भाषाएँ बोलने वाले लोगों को शासन की प्रक्रिया में शामिल किया।

समावेशीकरण का क्या आशय है? एक उदाहरण देकर समझाइए।

विभिन्न समाजों के बीच समावेशीकरण क्यों ज़रूरी है?

लोकतंत्र को और बेहतर बनाने के लिए क्या–क्या किया जाना चाहिए? आपस में चर्चा कीजिए।

यदि आपको सरपंच या महापौर बना दिया जाए तो लोकतांत्रिक मूल्यों के आधार पर ऐसे कुछ कार्यों की सूची बनाएँ जो आप करना चाहेंगे।

लोकतंत्र के पक्ष एवं विपक्ष में तर्क

लोकतंत्र के पक्ष में तर्क	लोकतंत्र के विपक्ष में तर्क
लोकतंत्र जनता का शासन है इसलिए एक निश्चित समय सीमा के बाद चुनाव ज़रूरी है। लोकतंत्र में यह महत्वपूर्ण है कि सभी सरकारों को संविधान के अनुसार काम करना पड़ता है।	लोकतंत्र में प्रतिनिधि बदलते रहते हैं। इससे अस्थिरता पैदा होती है।
लोगों की भागीदारी व्यापक होने पर ज़्यादा पारदर्शिता आती है और नैतिक मूल्यों के कई उदाहरण सामने आते हैं। अलग–अलग राय का समावेश किया जाता है।	लोकतंत्र का मतलब सिर्फ राजनैतिक लड़ाई और सत्ता का खेल है। यहाँ बहुमत की राय की प्रधानता होती है।
क्योंकि यह प्रणाली अधिक लोगों की भागीदारी पर निर्भर है, इसलिए समय लगता है, परन्तु इससे किसी भी विषय के कई गुण–दोष सामने आ जाते हैं और बेहतर निर्णय लेने की सम्भावना बनती है।	लोकतांत्रिक व्यवस्था में इतने सारे लोगों से बहस और चर्चा करनी पड़ती है जिससे हर फैसले में देरी होती है।
चुनाव सुधार द्वारा यह खर्च कम किए जा रहे हैं। इसी प्रक्रिया में नागरिकों के हितों की सुरक्षा सब से अधिक है। लोकतंत्र का निरन्तर विकास हो रहा है। जैसे–जैसे लोकतंत्र मजबूत होगा इसमें व्याप्त खामियाँ दूर होती जाएँगी।	लोकतंत्र में चुनावी लड़ाई महत्वपूर्ण और खर्चीली होती है, इसलिए इसमें भ्रष्टाचार होता है।

लोकतंत्र के और कौन–कौन से गुण एवं दोष हैं? इस सूची में जोड़ने हेतु चर्चा करें।

अधिनायकतंत्र और लोकतंत्र दोनों की आवधारणाओं को समझने का प्रयास किया है। हमने देखा है कि अधिनायकतंत्र के तहत लीबिया के कर्नल गद्दाफी तथा म्यांमार के नेबिन जैसे सैनिक नेता किस तरह एक दल व एक नेता का शासन स्थापित करने की कोशिश करते हैं तथा वे किन–किन तरीकों से शासन के सभी अंगों पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लगातार उसे मजबूत करने की कोशिश करते हैं।

अधिनायकतंत्र के विपरीत लोकतंत्र में जनता के प्रतिनिधियों के शासन की कल्पना की जाती है तथा यह प्रयास किया जाता है कि शासन के सभी कार्यों में जनता की अधिक से अधिक भागीदारी हो। अधिनायकतंत्र एक दल और एक नेता की क्षमता पर विश्वास करता है। एक व्यक्ति का शासन कालान्तर में निरंकुशता की ओर बढ़ता है और लोगों

की उपेक्षा करता है। कर्नल गद्दाफी इसके उदाहरण हैं। जबकि लोकतंत्र में जनता के निर्णय करने की सामूहिक क्षमताओं पर भरोसा किया जाता है और माना जाता है कि लोकतंत्र में लोग सामूहिक रूप से सही निर्णय ले सकते हैं।

अधिनायकतंत्र में नागरिकों के अधिकारों व नागरिकों की गरिमा का कोई स्थान नहीं होता। जबकि लोकतंत्र नागरिक अधिकारों के बिना चल ही नहीं सकता।

अधिनायकतंत्र में मीडिया तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रताएँ शासन की इच्छा पर निर्भर होती हैं जबकि लोकतांत्रिक राजनीति में स्वतंत्र प्रचार माध्यम (मीडिया) की भूमिका अहम होती है। व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं के बिना लोकतंत्र काम नहीं कर सकता।

अभ्यास

1. निम्नलिखित शब्दों को चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

(लोकतांत्रिक, सम्मान, गलती, शासन व्यवस्था, जवाबदेही)

.... शासन पद्धति दूसरों से बेहतर है, क्योंकि यह शासन का अधिक ....वाला स्वरूप है। लोकतंत्र नागरिकों का .... बढ़ाता है। इसमें ....सुधारने की सम्भावना रहती है। इसी वजह से लोकतंत्र को सबसे अच्छी ....माना जाता है।

2. दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनिए –

अ लोकतंत्र किसका शासन है –

(1) राजा का (2) जनता का

(3) सैनिक का (4) सामंत का

ब लीबिया में निर्णय लेने की अन्तिम शक्ति किसके पास थी –

(1) जनता के पास (2) जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के पास

(3) सैनिक संगठन के पास (4) विधायकों के पास

स भारत में कौन–सी शासन प्रणाली है –

(1) अधिनायक तंत्र (2) राजतंत्र

(3) सैन्य तंत्र (4) लोकतंत्र

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए–

(1) अधिनायक तंत्र किसे कहते हैं?

(2) लीबिया और म्यांमार में सैनिक संगठन किसके प्रति उत्तरदायी था?

(3) लोकतंत्र का प्रमुख शत्रु कौन है?

(4) लोकतंत्र में जनभागीदारी को समझाइए।

(5) लोकतंत्र के माध्यम से चुनी हुई सरकार मनमानी क्यों नहीं कर सकती?

(6) लोकतंत्र की कौन–कौन सी विशेषताएँ हैं?

(7) लोकतंत्र में दोष अधिक है या गुण। चर्चा कर सूचीबद्ध कीजिए।

(8) स्वतंत्र–निष्पक्ष चुनाव के लिए कौन–कौन सी व्यवस्थाएँ होनी चाहिए? सुझावों की सूची बनाइए।

परियोजना–

लोकतंत्र की भावना प्रकट करने वाले समाचार या घटनाएँ, समाचार पत्र या पत्रिकाओं से एकत्र कीजिए।

**

Y1PPK8

13

अधिकार

पिछले अध्यायों में हमने पढ़ा कि लोकतंत्र क्या है और इसका दुनिया के अलग–अलग देशों में कैसे विस्तार हुआ है? अधिकारों की अवधारणा भी कुछ शताब्दियों से उभर रही है और लोकतंत्र में बदलाव ला रही है।

इस अध्याय में हम वास्तविक जीवन की कुछ ऐतिहासिक घटनाओं से बात प्रारंभ करते हैं जिनसे यह पता लग सके कि अधिकारों के बिना लोगों का जीवन कितना कठिन होता था। हम ये समझने की कोशिश करेंगे कि अधिकारों का क्या आशय है, हमें इनकी आवश्यकता क्यों है और लोकतंत्र का विस्तार करने में अधिकार क्या भूमिका निभा सकते हैं?

अधिकारों के बिना जीवन–दास व्यापार

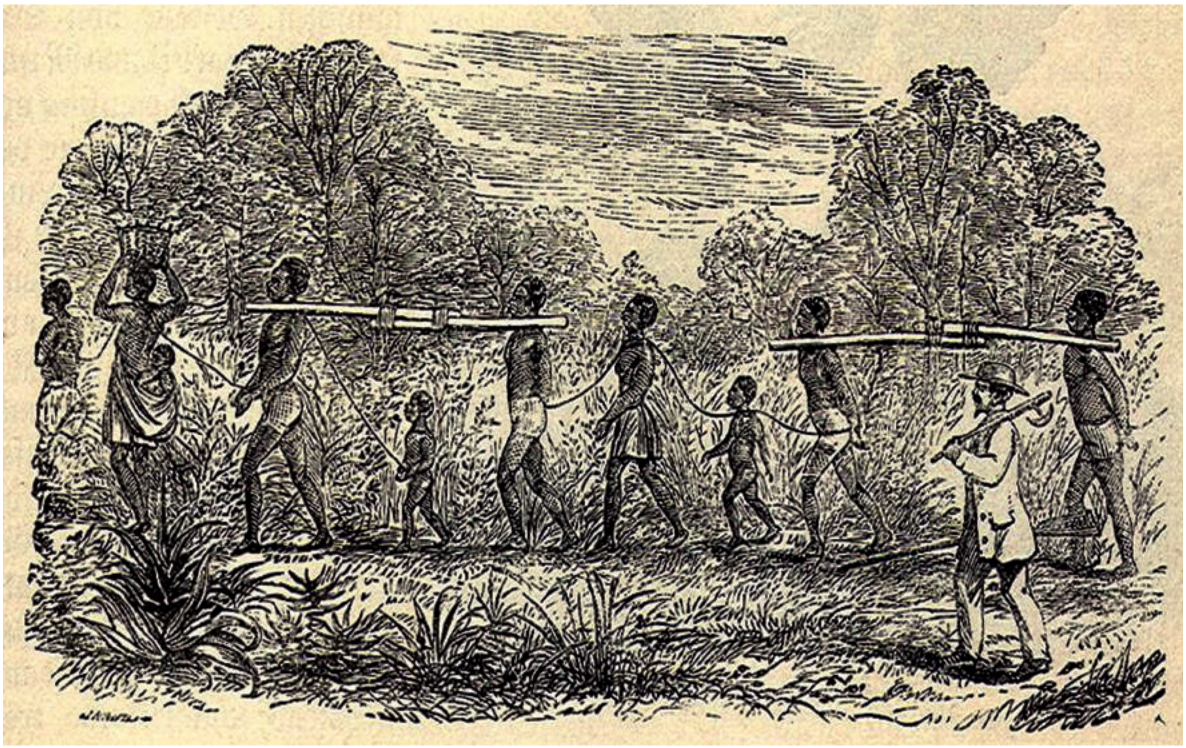

चित्र 13.1 : यह दृश्य क्या कह रहा है?

हमने इतिहास के अध्यायों में सन् 1789 में हुई फ्रांसीसी क्रांति के बारे में पढ़ा है। फ्रांसीसी क्रांति की सबसे बड़ी सफलता मनुष्य के अधिकारों की अवधारणा को उभारना है। इसी फ्रांसीसी क्रांति के समय फ्रांस तथा यूरोप के अन्य देशों में अफ्रीकी और एशियाई देशों के लोगों को दास बनाकर काम करवाने की प्रथा प्रचलित थी।

दास व्यापार 17वीं सदी में एशियाई और अफ्रीकी देशों में जोरों से चल रहा था। इसमें प्रमुख रूप से स्पेन, पुर्तगाल, इंग्लैंड, फ्रांस आदि देश शामिल थे। उदाहरण के लिए फ्रांसीसी सौदागर बोर्दे या नान्ते बन्दरगाहों से अफ्रीका तट

पर जहाज ले जाते थे जहाँ वे स्थानीय सरदारों से दास खरीदते थे। दासों को दागकर एवं हथकड़ियाँ डाल कर अटलांटिक महासागर के पार कैरिबियाई देशों तक तीन महीने लंबी समुद्री यात्रा हेतु ज़हाजों में ठूँस दिया जाता था। वहाँ उन्हें अमेरिका के बागान मालिक खरीद लेते थे। इस लंबी यात्रा के दौरान दासों को तरह–तरह के कष्टों का सामना करना पड़ता था। उन्हें समय पर भोजन नहीं मिलता था और कई दास बीमार पड़ जाते थे। व्यापारी उनके साथ पशुओं जैसा व्यवहार करते थे। दास श्रम के आधार पर यूरोपीय बाजारों में चीनी, कॉफी एवं नील की बढ़ती मांग को पूरा करना मुमकिन हुआ। बोर्दे और नान्ते जैसे बन्दरगाह दास–व्यापार के कारण समृद्ध नगर बन गए।

फ्रांस की नेशनल असेंबली में लंबी बहस चली कि व्यक्ति के मौलिक अधिकार उपनिवेशों में रहने वाली प्रजा समेत समस्त फ्रांसीसी प्रजा को प्रदान किए जाएँ या नहीं। लेकिन दास–व्यापार पर निर्भर व्यापारियों की खिलाफत के भय से नेशनल असेंबली में कोई कानून पारित नहीं किया गया। अंततः सन् 1794 के सम्मेलन ने फ्रांसीसी उपनिवेशों में दासों की मुक्ति का कानून पारित कर दिया। यह कानून कुछ समय तक ही लागू रहा। दस वर्ष बाद नेपोलियन ने दास–प्रथा फिर से शुरू कर दी। बागान मालिकों को अपने आर्थिक हित साधने हेतु अफ्रीकी अश्वेत लोगों को दास बनाने की आजादी मिल गई। फ्रांसीसी उपनिवेशों से अंतिम रूप से दास–प्रथा का उन्मूलन सन् 1848 में किया गया। अमेरिका में दास प्रथा को सन् 1865 में समाप्त किया गया किन्तु उन्हें नागरिकों के समान अधिकार बीसवीं शताब्दी तक नहीं मिल पाए।

दास प्रथा से लोगों के किस तरह के अधिकार प्रभावित होते थे?

अफ्रीका तट से लाए जाने वाले दासों की तुलना किसी भी लोकतांत्रिक देश के नागरिकों की जीवन शैली से कीजिए।

अफ्रीकी तथा यूरोपीय देश व्यापार के लिए एक–दूसरे पर किन–किन चीजों के लिए निर्भर थे?

अमेरिका के संविधान में आजादी के तुरंत बाद ही अपने नागरिकों को कई अधिकार दिए गए, लेकिन महिलाओं और अश्वेतों को नागरिक अधिकार हासिल करने के लिए लगातार संघर्ष करना पड़ा। श्वेत महिलाओं को मताधिकार सन् 1920 में दिया गया। अश्वेतों एवं अमेरिका के मूल निवासियों (रेड इंडियनों) की स्थिति तो बहुत ही खराब थी। उन्हें अमेरिका में सिर्फ अपने अश्वेत रंग व अलग नस्ल का होने की वजह से तरह–तरह के भेदभाव का सामना करना पड़ता था। उन्हें बस, गाड़ी, पार्क, रेस्टोरेंट, सिनेमाघर जैसे सार्वजनिक स्थानों पर श्वेत अमेरिकी लोगों के साथ बैठने नहीं दिया जाता था। वे लोग श्वेत अमेरिकी लोगों के साथ बराबरी से बात नहीं कर सकते थे। उन्हें खाने–पीने तथा मनोरंजन के सार्वजनिक स्थानों पर समान अवसर प्राप्त नहीं थे। सन् 1956 में अमेरिका की एक अश्वेत महिला नागरिक रोजा पार्क के साथ बस में सीट के लिए हुए भेदभाव की घटना ने अश्वेत नागरिकों में विरोध की एक बड़ी लहर पैदा की। अमेरिकी अश्वेतों ने मार्टिन लूथर किंग जूनियर के नेतृत्व में अपने अधिकारों के लिए एक व्यापक आंदोलन प्रारंभ किया जिसे नागरिक अधिकार (Civil Rights) आंदोलन के रुप में याद किया जाता है।

सार्वजनिक स्थान किन्हें कहते हैं, कुछ उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

आंदोलन के तहत् अश्वेत लोगों ने अमेरिका के विभिन्न स्थानों पर धरने दिए तथा लगातार प्रदर्शन किए। उनके प्रदर्शनों तथा दबाव की वजह से सन् 1964 में अमेरिकी सरकार को अपने सभी नागरिकों को वयस्क मताधिकार प्रदान करना पड़ा।

इस आंदोलन का नेतृत्व मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने किया जो कि अपने समय के एक समाज सुधारक तथा मानवाधिकार कार्यकर्ता थे। मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने इस बात पर जोर दिया कि हमें लंबी पदयात्रा तथा प्रदर्शन की सीधी कार्यवाहियों से अश्वेतों के लिए सामान्य अधिकार हासिल करने के प्रयास करने होंगे। उन्होंने 28 अगस्त सन् 1963 को वाशिंगटन डी.सी. में लिंकन स्मारक के नीचे लगभग दो लाख पचास हजार लोगों की भीड़ के सामने एक बहुत ही शक्तिशाली एवं भावनात्मक भाषण दिया। इस भाषण को किसी भी मानवाधिकार कार्यकर्ता द्वारा दिए

जाने वाले सबसे प्रभावशाली भाषणों में से एक माना जाता है। इस भाषण के कुछ अंश इस प्रकार हैं–

चित्र 13.2 : मार्टिन लूथर किंग जूनियर भाषण देते हुए

मैं आपके साथ इस अभियान में शामिल होते हुए गर्व और खुशी महसूस कर रहा हूँ, जिसे इतिहास में एक महान ऐतिहासिक अभियान के रूप में याद किया जाएगा।

लगभग 100 वर्ष पहले एक अमेरिकी जिसकी परछाई में हम खड़े हैं, ने अश्वेतों के मुक्ति की घोषणा के पत्र पर हस्ताक्षर किए थे। इस आदेश से लाखों अश्वेत नागरिकों को आशा की किरण दिखाई दी थी कि हम भी सुखद और सम्मानपूर्वक जीवन जी पाएँगे। यह महान आदेश हम अश्वेतों के लिए एक लंबी और अंधेरी रात के बाद चमचमाती सुबह के समान था। हमें लगा हम अन्याय की लपटों में झुलसने के बाद न्याय की ठंडक और चाँदनी को हासिल कर पाएँगे। लेकिन उस महान आदेश के 100 वर्ष बीतने के बाद भी अश्वेत आज भी स्वतंत्र नहीं हैं। 100 वर्ष बाद भी अश्वेतों का जीवन तरह–तरह के प्रतिबंधों के घावों की वजह से निःशक्त है। हम आज भी अलगाव का जीवन जीने के लिए अभिशप्त हैं। हमारा जीवन अभी भी भेदभावों की जंजीरों से जकड़ा हुआ है। 100 वर्ष बाद भी अश्वेतों का जीवन भौतिक समृद्धि के विशाल सागर के मध्य गरीबी के एक बर्फीले द्वीप की तरह अकेला है। 100 वर्ष बाद भी अश्वेत अमेरिकी समाज के एक अंधेरे कोने में दबे हुए हैं और हम अपने आप को अपने ही देश में निर्वासितों की तरह महसूस करते हैं। इसलिए हम आज यहाँ अपनी शर्मनाक स्थितियों को नाटकीय अभिनय द्वारा सबके सामने पेश करने के लिए इकट्ठे हुए हैं।

मेरा एक स्वप्न है– यह ऐसा स्वप्न है जो कि स्वतंत्र, समृद्ध और प्रगतिशील अमेरिका के स्वप्न से जुड़ा हुआ है। मेरा यह स्वप्न है, एक दिन यह देश अपने स्वार्थों से ऊपर उठेगा और अमेरिकी होने का वास्तविक अर्थ समझेगा। हम इस सत्य को जो कि स्वयं सिद्ध है, पूरी मजबूती के साथ स्वीकार करते हैं कि सभी लोगों को बराबरी से बनाया गया है तथा सभी लोग बराबर हैं।

मेरा यह स्वप्न है कि एक दिन जार्जिया की लाल पहाड़ियों पर पूर्व दासों के पुत्र अपने श्वेत भाइयों के साथ भाईचारे के साथ मेज पर बैठेंगे। मेरा यह स्वप्न है कि पसीने तथा गर्मी से भरा हुआ मिसीसिपी राज्य एक दिन स्वतंत्रता तथा न्याय के सागर के रुप में परिवर्तित होगा।

मेरा यह स्वप्न है कि एक दिन ऐसा भी आएगा जिस दिन मेरे चार छोटे बच्चों को उनके रंग या चमड़ी से नहीं बल्कि उनके चरित्र से पहचाना जाएगा। मेरा यह स्वप्न है कि एक दिन अल्बामा में छोटे–छोटे अश्वेत लड़के–लड़कियाँ अपने जैसे श्वेत बच्चों से भाइयों और बहनों की तरह हाथ मिलाएँगे और मिलकर एक साथ खेलेंगे। यह ऐसा दिन होगा जिस दिन ईश्वर के सभी बच्चे आजादी के गीतों को नए अर्थों के साथ गाएँगे।

इस भाषण में अश्वेतों की किन–किन वेदनाओं का उल्लेख किया गया है?

इस भाषण में मार्टिन लूथर किंग जूनियर के स्वप्नों का अमेरिका किस तरह का है? स्पष्ट करें।

अमेरिकी अश्वेतों द्वारा मताधिकार की प्राप्ति के लिए चलाए गए आन्दोलन में किन–किन तरीकों का प्रयोग किया गया?

लोकतंत्र में अधिकारों की जरूरत

अधिकारों की अवधारणा सिर्फ लोकतांत्रिक व्यवस्था से जुड़ी नहीं है। अन्य व्यवस्थाओं में भी अधिकारों की बात की जाती है, जैसे– काम करने का अधिकार हो या स्थानीय प्रशासन में शामिल होना हो लेकिन लोकतांत्रिक शासन में अधिकार और महत्वपूर्ण हो जाते हैं क्योंकि... सरकार बनाने और चलाने में लोगों की भागीदारी होनी चाहिए। लोकतंत्र की मूलभूत आवश्यकता है लोगों द्वारा चुने गए प्रतिनिधि लोगों के हित में काम करें एवं लोगों के प्रति जवाबदेह हों। यदि आम लोगों को व्यापक अधिकार न मिले हों तो केवल कुछ लोगों द्वारा ही सरकार बनाई जा सकती है। जैसे– संयुक्त राज्य अमेरिका के उदाहरण में हमने देखा। अधिकार न हों, तो शासन द्वारा बनाई जाने वाली नीतियाँ और कानून एक तरफ हो जाती हैं। लोगों को इन पर विचार रखने व इन्हें बदलने के अवसर नहीं होते। यदि कहीं भी लोकतंत्र में नागरिकों के अधिकार सुरक्षित न हों, तो शासन द्वारा नागरिकों पर अत्याचार व उनका दमन आसानी से किया जा सकता है।

चित्र 13.3 : संसद भवन

अधिकार सभी मनुष्यों के लिए जरुरी हैं। इसलिए लिंग, रंग, नस्ल, जाति, धर्म, क्षेत्र, देश या अन्य किसी आधार पर अधिकारों को देने में भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए। यदि कुछ लोगों को अधिकारों से वंचित किया जाता है तो इसका अर्थ यह भी है कि उन्हें जीवन में आगे बढ़ने से रोका जा रहा है।

स्वतंत्र व्यक्ति के अधिकार हमें सृजनात्मक और मौलिक होने का मौका देते हैं, जैसे– संगीत, नृत्य, लेखन आदि में हम मौलिक रचनाएँ कर सकते हैं। शिक्षा का अधिकार हमें विकसित करने में मदद करता है। हमें जीवन में सूझ–बूझ के साथ चलने में सक्षम बनाता है, अर्थात् अधिकार राज्य द्वारा व्यक्ति को दी गई कुछ कार्य करने की स्वतंत्रताएँ या सुविधाएँ हैं जिससे व्यक्ति अपनी शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक शक्तियों का पूर्ण विकास कर सके।

अधिकारों के बिना किसी व्यक्ति को किन–किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है?

किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास में अधिकार किस तरह से सहायक होते हैं?

अधिकारों को कैसे सुनिश्चित किया जाता है?

अधिकारों का संवैधानिक संदर्भ

अधिकारों के दावों की नैतिक तथा सामाजिक मान्यता चाहे जितनी हो उनकी सफलता कानून के समर्थन से ही है। यही कारण है कि अधिकारों की कानूनी मान्यता को महत्व दिया जाता है। अधिकार अपने वर्तमान स्वरूप में जिस तरह समझे जाते हैं वह किसी एक देश या एक व्यक्ति द्वारा निर्धारित स्थिति नहीं है और न ही इनका विकास एक दिन में हुआ है।

मानवीय आवश्यकताओं के विचार, समझ और विकास में बदलाव के अनुसार अधिकारों का स्वरूप बदलता रहा है तथा इनका दायरा भी बढ़ता गया है। अधिकार आमतौर पर उस स्थिति में ही अधिकारों का दर्जा हासिल करते हैं जब लोगों की आवश्यकताओं को कानूनी रूप से मान्यता दी जाए। जब तक किसी अधिकार को कानूनी रूप नहीं मिलता तब तक किसी भी अधिकार के लिए वास्तव में लोगों का राज्य के प्रति दावा नहीं बनता। उदाहरण के लिए, सन् 2002 में भारत की संसद ने संविधान के 86वें संविधान संशोधन द्वारा शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार के रूप में कानूनी स्वीकृति दी। इसके बाद यह कानूनी रूप से नागरिकों का मौलिक अधिकार बन गया। कोई भी अधिकार कानूनी रूप से स्वीकार किया जाना आवश्यक है, ताकि किसी भी देश या प्रांत के सभी समाज के लोग उसे स्वीकार कर सकें।

अधिकारों की कानूनी मान्यता ऐतिहासिक रूप से लगभग 800 वर्ष पुरानी है। सबसे पहले इंग्लैंड में वहाँ के राजा ने सन् 1215 में एक अधिकार–पत्र को कानूनी रूप से स्वीकार किया, जिसे मैग्नाकार्टा कहा जाता है।

अधिकारों का घोषणा पत्र

अधिकारों के इस घोषणा पत्र में इग्लैंड के राजा ने वहाँ के लोगों को कुछ अधिकार दिए। इनमें लोगों द्वारा सीमित संख्या में अपने प्रतिनिधि चुनना तथा अपनी मर्जी से कोई भी व्यापार–व्यवसाय करना प्रमुख अधिकार थे।

इस पर चर्चा करें

अधिकारों को कानूनी मान्यता कैसे मिलती है?

शिक्षा के अधिकार के बिना हमारा जीवन कैसा था? चर्चा करें।

निम्नलिखित कथन अधिकार है या नहीं, स्पष्ट कीजिए–

(अ) राजा का आदेश

(ब) किसी समाज द्वारा तय नियम

(स) संसद द्वारा बनाया नियम

(द) संसद द्वारा नियम बनाकर प्रदान की गई कोई सुविधा

सन् 1776 में इंग्लैंड से आजादी प्राप्त करने वाले 13 उपनिवेशों ने अपने आप को संयुक्त राज्य अमेरिका के नाम से स्वतंत्र देश के रुप में संगठित किया तथा अपना नया संविधान बनाया। इस संविधान में उन्होंने 'बिल ऑफ राइट्स' के माध्यम से अपने नागरिकों को कानूनी रूप से कई मौलिक अधिकार दिए। इन अधिकारों में स्वतंत्रता का अधिकार, समानता का अधिकार तथा संपत्ति का अधिकार आदि प्रमुख हैं।

सन् 1789 में होने वाली फ्रांसीसी क्रांति के पश्चात् फ्रांस के लोगों ने अधिकारों का घोषणा पत्र जारी किया जिसमें कई अधिकारों को कानूनी रूप से मान्यता दी गई। इन अधिकारों में स्वतंत्रता, समानता, सम्पत्ति, शोषण से रक्षा का अधिकार भी था। फ्रांसीसी लोगों के लिए अधिकारों का घोषणा पत्र जारी होने के बाद विश्व के अधिकतर लोकतांत्रिक देशों ने अपने नागरिकों को कई अधिकार कानूनी रूप से प्रदान किए। किसी भी देश के कानूनी अधिकारों का सबसे प्रमुख स्रोत उस देश का संविधान होता है। ऐसे देश अपने संविधान में अधिकारों को किसी न किसी रूप में शामिल करते हैं। उदाहरण के लिए भारत के संविधान में मौलिक अधिकार कानूनी अधिकारों के रूप में दिए गए हैं। यदि भारत की केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य की राज्य सरकार इन अधिकारों को प्रदान न करें तो नागरिक सीधे राज्य के उच्च न्यायालय या देश के सर्वोच्च न्यायालय में सरकार के विरुद्ध मुकदमा दायर कर सकते हैं।

भारत के संविधान में दिए गए मौलिक अधिकार अन्य कानूनी अधिकारों का मुख्य स्रोत है तथा वे इन्हें वैधता भी प्रदान करते हैं जिसका अर्थ यह है कि संविधान में दिए गए अन्य अधिकार किसी न किसी मौलिक अधिकार से संबंधित हो सकते हैं। हमारे संविधान में वर्तमान में 6 मौलिक अधिकार दिए गए हैं। क्या आप इन्हें बता सकते हैं? हमने कक्षा

आठवीं की सामाजिक विज्ञान की पुस्तक के नागरिक शास्त्र के खण्ड में इन मौलिक अधिकारों के विषय में पढ़ा है। इन पर हम एक–एक करके विचार करते हैं।

नीचे दिए गए कथनों को पढ़कर बताइए कि ये कथन कौन से अधिकार से संबंधित हैं।

(1) प्रधानमंत्री हो या सुदूर गाँव का कोई कृषि मजदूर, सब पर एक ही कानून लागू होता है। जन्म या पद के आधार पर व्यक्ति को कानूनी तौर पर कोई विशेषाधिकार नहीं मिला है। कुछ वर्ष पूर्व देश के एक पूर्व प्रधानमंत्री पर धोखाधड़ी का मामला चला था। सारे मामले पर विचार करने के बाद अदालत ने उनको निर्दोष घोषित किया था, परंतु जब तक मामला चला उन्हें किसी दूसरे आम नागरिक की तरह ही अदालत में जाना पड़ा। अपने पक्ष में साक्ष्य देने पड़े, कागजात प्रस्तुत करने पड़े।

यह हमारा कौन सा अधिकार है?

(2) अ. किस अधिकार के चलते लाखों लोग गाँवों से निकलकर शहरों में और देश के गरीब क्षेत्रों से निकलकर समृद्ध क्षेत्रों में आकर काम करते हैं और बस जाते हैं?

ब. किस अधिकार से आप अपने विचारों का परचा छपाकर या अखबारों व पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित करवाकर भी व्यक्त कर सकते हैं?

(3) 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को कारखाना, खदान, बंदरगाह और रेलवे जैसे स्थानों पर कोई भी जोखिमपूर्ण काम नहीं करा सकते हैं। आज गाँव का मुखिया जबरदस्ती काम नहीं करा सकता है।

ये हमारे कौन से अधिकार हैं?

(4) अ. क्या धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार में हमें देवी–देवताओं या किसी अन्य शक्ति को खुश करने के लिए बलि देने का अधिकार है?

ब. क्या किसी विधवा का मुंडन करा सकते हैं या उसे मात्र सफेद कपड़े पहनने हेतु मजबूर कर सकते हैं?

उक्त कथन कौन से मौलिक अधिकार के गलत इस्तेमाल के अंतर्गत आता है?

(5) अल्पसंख्यकों को भाषा, संस्कृति और धर्म के विशेष संरक्षण की आवश्यकता क्यों होती है?

अल्पसंख्यक – ये राष्ट्रीय स्तर पर धार्मिक अल्पसंख्यक मात्र नहीं हैं। किसी स्थान पर एक खास भाषा को बोलने वालों का बहुमत होगा, वहाँ पृथक भाषा बोलने वाले अल्पसंख्यक होंगे, जैसे– आन्ध्र प्रदेश में तेलुगू भाषियों का बहुमत है, पर कर्नाटक में वे अल्पसंख्यक हैं। इसी प्रकार धर्म और संस्कृति के आधार पर भी किसी समूह का अल्पसंख्यक या बहुसंख्यक होना तय होता है।

यह संरक्षण संविधान के किस मौलिक अधिकार के द्वारा दिया जाता है?

(6) हमारे आस–पास एक कारखाना है जिसमें निकलने वाले बेकार पदार्थों से हमारे इलाके का पीने का पानी गंदा हो रहा है। पानी में गंदगी की वजह से कई तरह की बीमारियाँ फैल रही हैं जैसे– डायरिया, पीलिया, खुजली आदि जिससे हमारे जीवन जीने के अधिकार का हनन हो रहा है।

इस अधिकार को प्राप्त करने के लिए हम उच्च या उच्चतम न्यायालय में किस मौलिक अधिकार के तहत मुकदमा दायर कर सकते हैं?

अधिकारों को संरक्षण देने वाली संस्थाएँ

लोगों को अधिकार प्रदान करने के लिए सिर्फ कानूनी प्रावधान कर देने से ही यह सुनिश्चित नहीं होता कि अधिकार सही ढंग से लागू हो रहे हैं। अधिकार सही रूप में लागू करने के लिए यह जरुरी है कि कुछ ऐसी संस्थाएँ हों जो अधिकारों का संरक्षण करे। ऐसी संस्थाओं को लगातार यह देखना होता है कि अधिकार सही ढंग से लागू हो रहे

हैं या नहीं। ऐसी संस्थाएँ केन्द्रीय व राज्य दोनों स्तर पर होती हैं, जैसे मानव अधिकार आयोग, बाल अधिकार आयोग, महिला अधिकार आयोग आदि। अब हम अधिकारों को संरक्षण देने वाली कुछ संस्थाओं का अध्ययन करेंगे।

न्यायालय (Court)

हम पिछली कक्षाओं में न्यायालय के बारे में पढ़ चुके हैं। हम यह जानते हैं कि न्यायालय केवल न्याय नहीं करते बल्कि ये संविधान के संरक्षक भी हैं। यदि कोई सरकार या व्यक्ति हमारे किसी अन्य कानूनी अधिकारों का उल्लघंन करता है, तो हम उनके खिलाफ न्यायालय में जा सकते हैं। अधिकारों के उल्लघंन के ऐसे मामले चाहे पर्यावरण, शिक्षा या हमारे जीवन के किसी भी क्षेत्र से जुड़े हों। हमारे संविधान में दिए गए मौलिक अधिकारों के विषय में यह विशेष प्रावधान है कि यदि किसी व्यक्ति के किसी मौलिक अधिकार का उल्लंघन होता है तो वह व्यक्ति सीधे भारत के सर्वोच्च न्यायालय या संबंधित राज्य के उच्च न्यायालय में मुकद्मा दायर कर सकता है।

न्यायालय के अलावा कई अन्य संस्थाएँ व आयोग भी हमारे अधिकारों के संरक्षक के रूप में कार्य करते हैं।

मानवाधिकार आयोग (Human Rights Commission)

10 दिसम्बर सन् 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में मानवाधिकारों के सार्वजनिक घोषणा पत्र को अंगीकृत किया गया। (इसलिए प्रतिवर्ष 10 दिसम्बर को मानवाधिकार दिवस मनाया जाता है)। मानव अधिकारों में मान्यता है कि आंतरिक दृष्टि से सभी मनुष्य समान हैं और कोई भी व्यक्ति दूसरों का नौकर होने के लिए पैदा नहीं हुआ है। इस विचार का प्रयोग नस्ल, जाति, ध र्म और लिंग पर आधारित मौजूदा असमानताओं को चुनौती देने के लिए किया जा रहा है। सभी आधुनिक लोकतांत्रिक देशों में विभिन्न संरचनाएँ स्थापित की गई हैं जो अधिकारों के संरक्षण के लिए कुछ नियम बनाती हैं और लोगों को जागरूक करने का कार्य करती हैं। इस घोषणा पत्र में मनुष्य की सभी बुनियादी आवश्यकताओं तथा लोकतंत्र के मुख्य बिन्दुओं, जैसे– स्वतंत्रता, समानता, न्याय तथा व्यक्तिगत गरिमा आदि को स्वीकार करते हुए कई अधिकार शामिल किए गए। इन अधिकारों को सही ढंग से लागू करवाने तथा मानव अधिकारों के उल्लंघन को रोकने के लिए सभी देशों में मानव अधिकार आयोग का गठन किया गया।

भारत में सन् 1993 में कानून द्वारा एक स्वतंत्र राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग गठित किया गया। आयोग में सेवानिवृत्त न्यायाधीश नियुक्त किए जाते हैं। यह आयोग स्वयं किसी को दण्ड नहीं दे सकता। आयोग मानवाधिकार के उल्लंघन के किसी मामले में स्वतंत्र और विश्वसनीय जाँच करता है। यह उन मामलों की भी जाँच करता है जहाँ ऐसे उल्लंघन में या इन्हें रोकने में सरकारी अधिकारियों पर उपेक्षा बरतने का आरोप हो। किसी न्यायालय की तरह यह चश्मदीद गवाहों को समन भेजकर बुला सकता है, किसी सरकारी अधिकारी से पूछताछ कर सकता है और सरकारी दस्तावेजों की मांग कर सकता है।

समन
न्यायालय द्वारा किसी व्यक्ति को न्यायालय में उपस्थित होने के लिए जारी किया गया आदेश।

आयोग किसी कारागार में जाकर जाँच कर सकता है या घटनास्थल पर अपनी जाँच टीम भेज सकता है। मानवाधिकार आयोग में सामाजिक बहिष्कार, घरेलू हिंसा, बच्चों को प्रताड़ित करने संबंधी शिकायत, बाल विवाह, दहेज प्रताड़ना, जेलों में होने वाले अत्याचार, बाल–श्रम, बंधुआ मजदूर, प्रदूषण, राजस्व, मानव देह–व्यापार आदि प्रकरण शामिल हैं।

पूरे देश के लिए राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की तरह प्रत्येक राज्य में राज्य मानव अधिकार आयोग का गठन किया जाता है। इसमें राज्य की एक समिति द्वारा नियुक्तियाँ की जाती हैं। यह समिति मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में कार्य करती है। आयोग में एक अध्यक्ष और 7 सदस्य होते हैं। इनका कार्यकाल 5 वर्ष का होता है। राज्य मानव अधिकार आयोग अपने राज्य में होने वाले मानव अधिकारों के उल्लंघन को रोकने की कोशिश करता है।

छत्तीसगढ़ राज्य मानवाधिकार आयोग में 10 दिसम्बर सन् 2014 तक 1,121 प्रकरण दर्ज थे, जिसमें से 1,090 लोगों को न्याय मिला है और 730 मामलों पर अभी विवेचना की जा रही है। इस आयोग के कार्य का एक उदाहरण देखते हैं– केन्द्रीय जेल बिलासपुर में आजीवन कारावास की सजा काट रहे मनोज सिंह हर्निया की बीमारी से पीड़ित थे। लेकिन गार्ड उपलब्ध न होने की वजह से उसका इलाज नहीं किया जा रहा था। इस पर बंदी ने आयोग में शिकायत की। इस पर आयोग में संज्ञान लिया गया। इसके चलते जेल अधीक्षक बिलासपुर द्वारा मनोज सिंह को रायपुर मेडिकल कालेज में भर्ती करा कर चिकित्सीय लाभ दिया गया।

जहाँ मानव अधिकार आयोग नहीं होता, वहाँ लोगों को कौन–कौन सी समस्याओं का सामना करना पड़ता है और क्यों ?

क्या मानव अधिकार आयोग वास्तव में सभी लोगों के अधिकारों को संरक्षण दे पाता है?

निम्नलिखित मामले किन–किन मानव अधिकारों का उल्लंघन करते हैं, आपस में चर्चा कीजिए–

1) भारत में सन् 1998–99 में पुलिस हिरासत में 183 तथा न्यायिक हिरासत में 1,114 लोगों की मौत हुई।

2) मेरठ जेल में करीब 3,000 कैदी रखे गये थे, जबकि उस जेल में कैदियों को रखने की क्षमता 650 व्यक्तियों की है।

पता– छत्तीसगढ़ मानव अधिकार आयोग, डी.के.एस. भवन के पास, रायपुर पिन न. 492001, 0771–2235594

सूचना का अधिकार आयोग (Right to Informmation Comission)

मालती भिलाई के पास एक बस्ती में रहती थी। वह कई महीनों से अपना राशन कार्ड बनवाने की कोशिश कर रही थी। उसने चौथीं बार अपना फार्म भरवा के विकासखण्ड कार्यालय में जमा किया। कुछ दिन बाद जब वह विकासखण्ड कार्यालय में अपना राशन कार्ड लेने गई तो संबंधित अधिकारी ने कहा कि आपका आवेदन– पत्र प्राप्त नहीं हुआ है। मालती ने अपने आवेदन की पावती दिखाई तो अधिकारी ने कहा उसे उनका आवेदन ढूंढना पड़ेगा। मालती उनके इस उत्तर से बहुत उदास और परेशान हुई। वह अपने घर जा रही थी तो रास्ते में उसे अपने पड़ोस में रहने वाला एक लड़का रमेश मिला। रमेश ने उसे परेशान देखकर पूछा क्या बात है? आप इतनी दुखी क्यों हो? मालती ने बताया वह चार बार राशन कार्ड के लिए फार्म भरकर आवेदन दे चुकी है, लेकिन विकासखण्ड कार्यालय में हर बार उसका आवेदन गुम हो जाता है। रमेश ने कहा आप

रजिस्ट्री सं० डी० एल०–(एन) 04/0007/2003–05 Registered No. DL. - (N) 04/0007/2003-05

भारत का राजपत्र
The Gazette of India

असाधारण
EXTRAORDINARY
भाग II – खण्ड I
Part II - Section I
प्राधिकार से प्रकाशित
Published by authority

सं० 25। नई दिल्ली, मंगलवार, जून 21, 2005/ज्येष्ठ 31, 1927
No. 25| New Delhi, Tuesday, June 21, 2005/Jyaistha 31, 1927

इस भाग में भिन्न पृष्ठ संख्या दी जाती है जिससे कि यह अलग संकलन के रूप में रखा जा सके।
Separate paging is given to this Part in order that it may be filed as a separate compilation

जनसूचना अधिकार के अंतर्गत अपने आवेदन के विषय में जानकारी क्यों नहीं मांगतीं? रमेश ने मालती को बताया सन् 2005 में बने एक कानून के अनुसार हम किसी भी कार्यालय से कोई भी जानकारी एक फार्म भरकर निश्चित राशि जमा करके ले सकते हैं। इस कानून को जनसूचना का अधिकार कहते हैं। मालती ने कहा बेटा मुझे इस कानून के बारे में कुछ पता नहीं है। रमेश ने कहा चाची आप चिन्ता मत कीजिए मैं कल सूचना के अधिकार का प्रपत्र लाऊँगा, उसे भरकर हम आपके राशन कार्ड के विषय में विकासखण्ड कार्यालय से जानकारी माँगेंगे। अगले दिन मालती ने रमेश की सहायता से जनसूचना अधिकार–अधिनियम के अंतर्गत विकासखण्ड कार्यालय में अपने राशन कार्ड की स्थिति की जानकारी मांगी। लगभग बीस दिन के बाद मालती के घर एक पत्र आया जिसमें बताया गया राशन कार्ड बनकर तैयार है, वह संबंधित अधिकारी से पावती देकर राशन कार्ड ले सकती हैं।

इस तरह सूचना का अधिकार हमें अपने हितों की सुरक्षा करने का अधिकार देता है। भारत सरकार ने हमें यह अधिकार 12 अक्टूबर सन् 2005 में दिया है। केन्द्रीय और राज्य स्तर पर सूचना आयोग का गठन किया गया है। सूचना के अधिकार के तहत् हम दस्तावेजों व अभिलेखों का अवलोकन कर सकते हैं तथा किसी संस्था से अभिलेख की प्रमाणित प्रतिलिपि ले सकते हैं इसके अंतर्गत वीडियो कैसेट भी लिया जा सकता है। किसी संस्था द्वारा जानकारी उपलब्ध न करवाए जाने की स्थिति में हम उस राज्य के सूचना आयोग को शिकायत कर सकते हैं।

सूचना अधिकार में हमें चाही गई जानकारी 30 दिनों के अंदर और किसी व्यक्ति के जीवन तथा स्वतंत्रता से जुड़ी हों तो 48 घण्टे के भीतर दिए जाने का प्रावधान है। जिस संस्था से सूचना चाही गई है उस संस्था या अधिकारी द्वारा समय सीमा में जानकारी उपलब्ध नहीं कराने पर उन्हें प्रतिदिन ₹250 रू. या अधिकतम 25,000 रू. तक जुर्माना किया जा सकता है। सूचना के अधिकार से सरकारी, गैर सरकारी संस्थाओं में पारदर्शिता आई है और अब अभिलेखों के रख–रखाव में सावधानी बरती जाती है।

जब सूचना का अधिकार नहीं था तो लोगों को विभिन्न विभागों से जानकारी लेने में किन–किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता रहा होगा? आपस में चर्चा करें।

सूचना का अधिकार आने से विभिन्न विभागों के कार्यों में पारदर्शिता कैसे आई है?

वर्तमान में छत्तीसगढ़ राज्य एवं केन्द्र के सूचना आयुक्त कौन–कौन हैं?

नीचे दिए गए सूचना के अधिकार के प्रपत्र को भरिए–

(सूचना का अधिकार अधिनियम के अंतर्गत आवेदन का संभावित प्रारूप)

1. आवेदक का नाम – ....
2. पूरा पता – ....
3. दूरभाष संख्या (यदि हो तो) – ....
4. आवेदन देने की दिनांक – ....
5. कार्यालय का नाम – ....
6. क्या चाहते हैं – ....

   (नकल / कार्य निरीक्षण / रिकॉर्ड निरीक्षण / रिकार्ड की प्रमाणित प्रति / प्रमाणित नमूना)
7. आवेदन के साथ जमा किया गया शुल्क ₹ 10 / –

   (नगद / चालान / मनीआर्डर / नॉन ज्युडीशियल स्टाम्प)
8. क्या आवेदक गरीबी रेखा के नीचे आते हैं – हाँ / नहीं
   (यदि हॉ, तो बी.पी.एल. सूची का अनुक्रमांक)

आवेदक के हस्ताक्षर

बाल अधिकार संरक्षण आयोग (Child Right Protection Commission)

सोमारु एक बड़े होटल में काम करता है। उस होटल का मालिक उससे अत्यधिक काम करवाता था और रोज सोमारु को होटल से 10 बजे रात को छुट्टी मिलती थी। एक दिन एक शिक्षक जब उस होटल के पास से रात में गुजर रहे थे तो उन्होंने सोमारु को होटल से निकलते देखा। शिक्षक ने पूछा कि तुम इतनी रात तक यहाँ क्या कर रहे हो? सोमारु ने बताया वह यहाँ पर काम करता है। शिक्षक ने पूछा– वह यहाँ काम क्यों करता है, स्कूल क्यों नही जाता है? सोमारु ने बताया कि उसके माता–पिता मजदूर हैं और उन्हें काम करने के बाद कम पैसा मिलता है। इससे उनके घर का खर्चा नहीं चलता, इसलिए उसे भी काम करना पड़ता है।

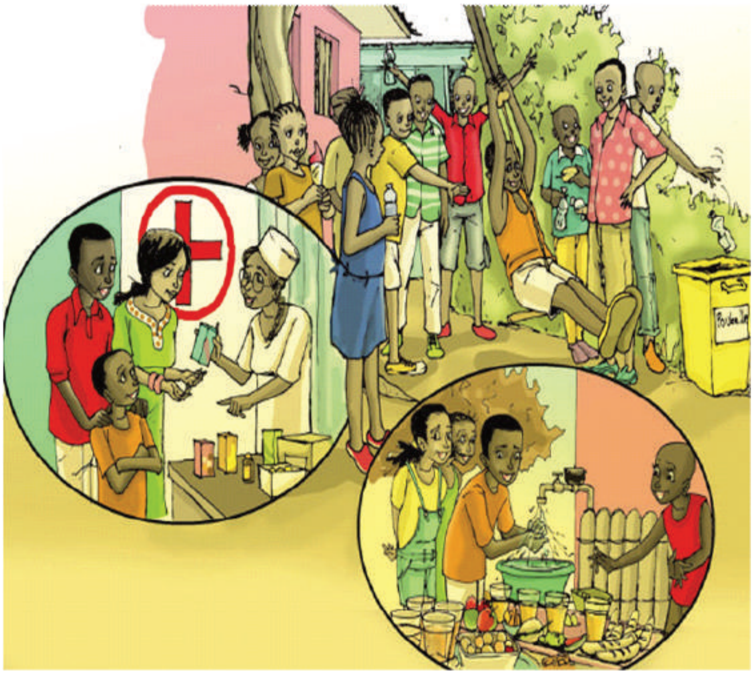

हमारे समाज और पूरी दुनिया में खाने कमाने के साधनों जैसे– जल, जंगल, भूमि, खनिज भण्डार, कारखानों आदि का बंटवारा सही नहीं है, जिसकी वजह से कुछ लोग बहुत अमीर तथा कुछ बहुत गरीब हो गए हैं। गरीब लोगों के पास इतना काम और पैसा नहीं होता कि अपने बच्चों को आसानी से पढ़ा सकें। उनके बच्चे भी पढ़ने के दिनों में सोमारु की तरह काम पर लग जाते हैं और पढ़ाई नहीं कर पाते हैं। 14 वर्ष से

कम आयु के बच्चों के काम करने को ही बाल–श्रम कहते हैं। बाल श्रम के अलावा बच्चों के जीवन से जुड़ी बहुत सी आवश्यकताएँ हैं, जिन्हें पूरा किए बिना बच्चों का विकास नहीं हो सकता। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बच्चों के अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए सभी देशों में बाल अधिकार आयोगों की स्थापना की गई है। विभिन्न देशों के बीच बाल अधिकारों के बारे में होने वाले समझौतों में यह कहा गया है कि युद्ध जैसी संकट वाली स्थितियों में भी बाल अधिकारों की रक्षा की जानी चाहिए।

भारत में भी राष्ट्रीय तथा राज्य स्तर पर बाल अधिकार आयोग बनाए गए हैं। बाल अधिकार आयोग का कार्य बच्चों के अधिकारों के उल्लंघन को रोकना है। यह उल्लंघन चाहे सामाजिक संस्थाओं द्वारा किया जा रहा हो या सरकार स्वयं कर रही हो। बाल अधिकार आयोग विशेष रूप से बच्चों पर होने वाली हिंसा, स्वास्थ्य, शिक्षा, क्रय–विक्रय तथा उनके श्रम के शोषण जैसे मुद्दों पर विशेष रूप से ध्यान केंद्रित करता है। बाल अधिकार आयोग समय–समय पर अधिकारों की स्थिति के विषय में प्रतिवेदन जारी करता है और सभी संस्थाओं को आवश्यक दिशा–निर्देश भी देता है।

बाल श्रमिकों से आमतौर पर कौन–कौन से कार्य कराए जाते हैं? सूची बनाइए।

बाल अधिकार संरक्षण आयोग का गठन क्यों किया गया?

पता– छत्तीसगढ़ राज्य बाल अधिकार संरक्षण आयोग,
ए–34, सेक्टर – 1, शंकर नगर निगम जोन कार्यालय,
पानी टंकी के पास, रायपुर ।
टोल फ्री 18002330055 फोन 0771–2420095

अधिकारों के बदलते संदर्भ में लोकतंत्र का अधिकारों के साथ संबंध

हमने अधिकारों की चर्चा करते हुए शुरुआत में कहा है कि अधिकार मनुष्य के जीवन की आवश्यकताओं की अवधारणा या विचार में बदलाव के साथ बदलते रहते हैं। कुछ मूलभूत आवश्यकताओं के अलावा जीवन के बहुत से बिन्दु समय–समय पर समाज और मानवीय जीवन में महत्व हासिल करते हैं। पूरी दुनिया में इसी वजह से अधिकारों के संदर्भ पिछले कई दशकों में बदले हैं। उदाहरण के लिए यूरोप के कई देशों ने खेलों के अधिकार को बच्चों के मूल अधिकार के रूप में स्वीकार किया है। इसी तरह बहुत से देशों में विशेष आवश्यकताओं वाले लोगों के लिए कुछ खास अधिकारों की व्यवस्था की गई है। भारत में भी विशेष आवश्यकताओं वाले लोगों के लिए पी डब्लू डी अधिकार अधिनियम सन् 1995 को पारित किया गया है। इसमें विशेष आवश्यकता वाले लोगों के लिए शिक्षा, नौकरियों तथा पुनर्वास जैसे विषयों पर विशेष व्यवस्था की गई है।

इसी तरह आज से 50 वर्ष पूर्व शायद यह कल्पना करना संभव नहीं था कि बच्चों के लिए विशेष अधिकारों की आवश्यकता पड़ेगी। पूरी दुनिया तथा भारत में लगातार बढ़ते हुए बाल–श्रम की वजह से सन् 1986 में भारत में बाल–श्रम निषेध अधिनियम बनाया गया। इसका उद्देश्य 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को खतरनाक माने जाने वाले कामों में लगाए जाने से रोकना था। जनसूचना अधिकार अधिनियम सन् 2005 को भी अधिकारों के बदलते संदर्भ और अधिकारों के बढ़ते दायरों के रूप में देखा जा सकता है। आज से 30–40 वर्ष पहले शायद किसी ने कल्पना नहीं की होगी और न ही सोचा होगा कि जन सूचना अधिकार जैसा कोई अधिकार देश के नागरिकों को प्राप्त होगा। इस अधिकार की आवश्यकता इसलिए महसूस की गई, क्योंकि बहुत से लोगों ने पाया कि विभिन्न सरकारी योजनाओं तथा उनसे प्राप्त होने वाले लाभों की जानकारी उन्हें ठीक ढंग से नहीं मिल पाती जिसके कारण वे इन योजनाओं का लाभ नहीं उठा पाते। चाहे राजस्थान के लोगों की न्यूनतम मजदूरी की सही दर का मामला हो या किसी ग्राम पंचायत को सरकारी योजनाओं से प्राप्त होने वाली राशि का मामला हो, ऐसे कई मामलों में लोग जानकारी के अभाव में कई लाभों से वंचित रहते थे। अतः धीरे–धीरे यह माँग जोर पकड़ने लगी कि देश के लोगों को सूचना का अधिकार प्राप्त होना चाहिए। यह कैसे प्राप्त हुआ, इसे हम कक्षा–10 में पढ़ेंगे।

पिछले कई वर्षों में भारत के सर्वोच्च न्यायालय तथा कई प्रदेशों में उच्च न्यायालयों ने अलग–अलग मुकदमों में कई

विषयों की व्याख्या मौलिक अधिकारों से जोड़कर की है। न्यायालय ने ऐसे निर्णय दिए हैं, जिनसे कई विषयों को संविधान में दिए गए मौलिक अधिकारों के साथ जोड़कर देखा गया है। न्यायालयों ने माना है कि पीने के स्वच्छ पानी, प्रदूषण रहित वातावरण, भोजन की आवश्यकता की पूर्ति व शिक्षा जैसे विषयों को जीवन जीने की स्वतंत्रता के साथ जोड़कर देखा जाना चाहिए। उदाहरण के लिए भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने सन् 1992 में मोहिनी जैन व कर्नाटक सरकार के बीच चल रहे मुकदमे मे निर्णय देते हुए कहा कि शिक्षा प्राप्ति के विषय को जीवन जीने की स्वतंत्रता के मूल अधिकार के हिस्से के रूप में देखा जाना चाहिए। क्योंकि शिक्षा से ही मनुष्य अपना जीवन सम्मानजनक ढंग से जी सकता है तथा जीवन में प्रगति कर सकता है। इसी आधार पर संविधान के 86वें संविधान संशोधन (सन् 2002) के द्वारा शिक्षा को मौलिक अधिकार के रूप में संसद द्वारा पारित किया गया। इस उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि समाज द्वारा की जाने वाली यदि कोई मांग उचित तथा सार्वजनिक हित में हो, तो संसद तथा न्यायालय उसे कानून द्वारा पारित करके अधिकार के रूप में मान्यता देते हैं।

आज के लोकतांत्रिक दौर में जहाँ प्रत्येक देश अपने आप को लोकतांत्रिक कहलवाना चाहता है, अधिकार नागरिकों के सम्मान का सबसे महत्वपूर्ण माध्यम है। शासन के निकायों के अलावा ऐसे बहुत सी सार्वजनिक संस्थाएँ व संगठन बनाए गए हैं जो नागरिकों के अधिकार को लागू करवाने का प्रयास करते हैं। आज भी दुनिया के कई देशों तथा भारत के अनेक नागरिकों को कुछ अधिकार प्राप्त नहीं हुए हैं। लोगों के जीवन की बदलती एवं बढ़ती हुई आवश्यकताओं के अनुसार नागरिकों के द्वारा नए–नए अधिकारों की मांग की जा रही है। इसी वजह से अधिकारों का दायरा बढ़ता जा रहा है। अभी भी लोग अधिकारों को प्राप्त करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। यहाँ नागरिकों की जिम्मेदारी बनती है कि वे अधिकारों के महत्व को समझें तथा अपने अधिकारों को हासिल करने की पूरी कोशिश करें। नागरिकों का अधिकारों के लिए **सजग रहना** इसलिए भी महत्वपूर्ण है, ताकि कोई भी सरकार निरंकुश व तानाशाह न बन सके।

पता–

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

मानव अधिकार भवन, ब्लॉक – सी, जी.पी.ओ. कम्प्लेक्स, आई.एन.ए. नई दिल्ली

फोन न. 011 24651330

अभ्यास

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

1. सन् .... में फ्रांसीसी क्रांति हुई।
2. .... शताब्दी में दास प्रथा प्रारंभ हुई।
3. महिलाओं के हितों की रक्षा के लिए .... का गठन किया गया है।
4. संविधान के अनुसार .... वर्ष से कम आयु के बच्चे बाल श्रमिक हैं।
5. मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने .... लोगों के अधिकारों के लिए होने वाले आंदोलन का नेतृत्व किया।
6. वर्तमान में राष्ट्रीय महिला आयोग की अध्यक्ष हैं ....

2. सही विकल्प चुनिए–

1. हमें शिक्षा का मौलिक अधिकार किस संविधान संशोधन में मिला?

1. 82वें	2. 84वें
3. 86वें	4. 100वें

2. वर्तमान भारत में वयस्क मताधिकार की आयु निर्धारित है –

   1. 16 वर्ष 2. 18 वर्ष

   3. 21 वर्ष 4. 25 वर्ष

3. अश्वेत मूलतः निवासी हैं –

   1. अमेरिका 2. यूरोप

   3. अफ्रीका 4. एशिया

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए–

1. दास प्रथा किसे कहते हैं?
2. समन का क्या आशय है?
3. मानवाधिकारों का हनन कैसे होता है?
4. अधिकारों का संरक्षण मानव अधिकार आयोग किस प्रकार करता है?
5. अमेरिका में रहने वाले अश्वेत लोगों को वयस्क मताधिकार कब प्राप्त हुआ?
6. भारतीय संविधान में कौन–कौन से मौलिक अधिकार भारतीयों को प्रदान किए गए हैं?
7. महिला आयोग कौन–कौन से कार्य करता है?
8. बाल संरक्षण अधिकार आयोग के गठन का क्या उद्धेश्य है?
9. अमेरिका में श्वेतों द्वारा अश्वेतों के साथ भेदभाव किए जाने का मुख्य कारण क्या रहा होगा?
10. आपके जीवन में सूचना के अधिकार का क्या महत्व है?
11. चर्चा कीजिए कि मौलिक अधिकार का विश्वव्यापी रूप मानवाधिकार है?

Y28GNI

**

14

जेण्डर समानता और महिला अधिकार

पिछले अध्यायों में हमने लोकतंत्र व अधिकारों के विषय में पढ़ा है। हमने पढ़ा कि एक सफल लोकतंत्र वह है, जिसमें समाज के सभी लोगों की अधिक से अधिक भागीदारी हो। हमने यह भी पढ़ा कि लोकतंत्र को सही ढंग से चलाने के लिए नागरिकों के पास अधिकारों का होना ज़रूरी है। यही कारण है कि लोकतांत्रिक देशों में बहुत से अधिकारों को कानूनी रूप से मान्यता दी जाती है।

इस अध्याय में हम यह समझने की कोशिश करेंगे कि लोकतंत्र में समाज के सभी वर्गों, खासतौर पर महिलाओं की भागीदारी को समान महत्व दिया गया है या नहीं? जो अधिकार देश के संविधान व कानून द्वारा सबको दिए गए हैं, क्या महिलाएँ उन्हें वास्तव में उपयोग कर पा रही हैं? आखिर ऐसे कौन से कारण हैं जिनकी वजह से जीवन के कई क्षेत्रों में महिलाओं को विकास के समान अवसर नहीं मिल पाते? आइए, हम इसे जानने की कोशिश करेंगे। नीचे दिए गए चित्र में दैनिक उपयोग की वस्तुओं को ध्यान से देखिए–

चित्र के आधार पर निम्नलिखित प्रश्नों पर चर्चा करें–

चित्र 14.1 : लड़के और लड़कियों के द्वारा

चित्र 1 में दिखाई गई सायकल का उपयोग कौन करता है?

चित्र 1 तथा 2 में दिखाई गई सायकल लड़के और लड़कियों के लिए अलग–अलग क्यों बनाई गई होंगी?

चित्र 3 व 4 में क्या अन्तर है और क्यों?

चित्र 3 व 4 में दिखाए गए दोनों हैंडबैगों का उपयोग कौन–कौन करते हैं?

चित्र 1 से 8 तक जो वस्तुएँ दिखाई गई हैं इन्हें लड़के और लड़कियाँ उपयोग कर सकते हैं या नहीं?

हमें हमारे आस–पास के समाज में लड़के और लड़कियों तथा महिलाओं और पुरुषों में भी कुछ स्पष्ट अन्तर दिखाई देते हैं। ये अन्तर शुरुआत से दिखने लगते हैं जैसे बचपन से लड़के और लड़कियों को एक खास तरह से व्यवहार करना, कपड़े पहनना, खेलना आदि सिखाया जाता है। घर में माता–पिता के द्वारा लड़कों को खेलने के लिए हवाई जहाज़, कार आदि दी जाती हैं जबकि लड़कियों को गुड़िया, बर्तन, चूल्हा–चौकी आदि दिए जाते हैं।

अगर आज हम गौर करें तो प्रतिदिन की छोटी–छोटी बातों में लड़के और लड़कियों में अन्तर दिखाई देता है, जैसे– व्यावहारिक तौर पर लड़कियों को भावुक समझा जाता है, वे विनम्र मानी जाती हैं। इसके विपरीत लड़के कठोर समझे जाते हैं। इन्हीं बातों का प्रभाव बाद में उनके जीवन पर पड़ता

है, जैसे– तकनीकी शिक्षा एवं उच्च शिक्षा का क्षेत्र लड़कों के लिए उचित समझा जाता है; जबकि लड़कियों को शिक्षण, नर्स आदि कार्यों के लिए उचित समझा जाता है।

लड़की और लड़के के पालन–पोषण के दौरान कुछ मान्यताएँ उनके मन में बैठा दी जाती हैं, जैसे – घर के सभी कार्य करना, बच्चों का पालन–पोषण करना औरतों की ज़िम्मेदारी है; जबकि पुरुष घर के बाहर का काम करते हैं। ऐसा नहीं है कि पुरुष घर के सभी कार्य नहीं कर सकते। इस तरह के भेदभाव वाले पूर्वाग्रह को जेण्डर भेद कहते हैं।

जेण्डर क्या है?

मनुष्य का जन्म एक सामान्य प्राकृतिक जैविक प्रक्रिया है जिसे हम लड़का या लड़की के रूप में पहचानते हैं परन्तु शारीरिक बनावट व क्षमता के अनुरूप समाज द्वारा पुरूष एवं महिला के लिए विभन्न भूमिकाएँ एवं पहनावा मान्य किए गए जो धीरे–धीरे स्थिर होते गए। समाज द्वारा पुरुष एवं महिला के लिए निर्धारित इसी दृष्टिकोण को ही सामाजिक लिंगभेद या जेंडर कहा जाता है।

नीचे लिखे शब्दों का सम्बन्ध आम तौर पर किससे जोड़ा जाता है? तालिका में भरें–

सुन्दरता, कोमलता, कठोरता, गुस्सा, सहनशीलता, बहादुरी, बातूनी, भावुक, श्रृंगार, मेहनत,बौद्धिक कार्य, गृह कार्य, बस चलाना, गाड़ी चलाना, कम्प्यूटर पर काम करना, तकनीकी कार्य।

लड़की	लड़का	दोनों

हमने जिन शब्दों को लड़कियों से जोड़ा है, उन्हें किन कारणों से लड़कियों के ही साथ जोड़ा है?

हमने जिन शब्दों को लड़कों के साथ जोड़ा है, इन्हें उनके साथ क्यों जोड़ा है?

हमने कुछ शब्दों को लड़के व लड़कियों दोनों के साथ जोड़ा है, क्यों?

बच्चे के जन्म के साथ ही लड़के और लड़कियों को उनके अलग–अलग रूप में ढालने की सामाजिक और सांस्कृतिक प्रक्रियाएँ होती हैं। समाज के द्वारा लिंगभेद के आधार पर भूमिकाओं का निर्धारण किया जाता है। लिंगभेद पर आधारित भूमिकाओं के विभाजन को ही 'जेण्डरीकरण' कहा जाता है। उदाहरण के लिए, समाज में यह माना जाता है कि पुरुष अधिक ताकतवर होते हैं, इसलिए वे कठोर तथा ताकत से जुड़े काम आसानी से कर सकते हैं। इसी तरह समाज में यह भी मान्यता है कि महिलाएँ स्वभाव से कोमल व दयालू होती हैं, इसलिए वे बच्चों की देखभाल अच्छी तरह कर सकती हैं।

आम तौर पर महिला–पुरुष की भूमिका का आधार जैविक बनावट को माना जाता है; किन्तु हमें यह जानना आवश्यक है कि इन भूमिकाओं का आधार केवल लैंगिक ही नहीं है, बल्कि सामाजिक प्रक्रिया भी है। कुछ प्रचलित मान्यताएँ हैं, जो इन सामाजिक भूमिकाओं को बनाने में प्रभावी होती हैं।

जेण्डर शब्द से क्या अभिप्राय है?

क्या विनम्रता, कोमलता, सहनशीलता केवल महिलाओं में ही होती है? कारण सहित चर्चा कीजिए।

अभी तक हमने अध्ययन किया है कि जेण्डर भेद समाज द्वारा स्थापित मान्यताएँ हैं। हम आगे पढ़ेंगे कि जेण्डर के आधार पर श्रम तथा उसके मूल्य का विभाजन किस तरह होता है।

तीसरा लिंग – दुनिया में पुरुष व महिला के अलावा कुछ लोग शारीरिक रूप से पूर्णतः न पुरुष होते हैं और न महिला, जिन्हें तीसरा जेण्डर ;जैपतक ळमदकमतद्ध कहा जाता है। सर्वोच्च न्यायालय ने सुझाव दिया है कि व्यक्तिगत जानकारी माँगने वाले प्रपत्रों में तीसरे लिंग का भी प्रावधान (चतवअपेपवद) होना चाहिए।

क्या श्रम का विभाजन लिंग आधारित है?

महिला व पुरुष के व्यवहार व जीवन के फैसले विभिन्न आधारों से प्रभावित होते हैं। उनमें से एक बड़ा आधार जैविक माना जाता है।

नीचे कुछ कार्यों की सूची दी जा रही है। कृपया बताएँ कि आपके अनुसार कौन से कार्य पुरुषों के लिए, कौन से कार्य महिलाओं के लिए तथा कौन से कार्य दोनों के लिए उपयुक्त हैं?

कार्यों की सूची–

क्र.	कार्य	केवल पुरुष	केवल महिला	दोनों
1.	कारखानों में काम			
2.	मजदूरी			
3.	नर्स			
4.	डॉक्टरी			
5.	वकालत			
6.	व्यापार			
7.	ब्यूटी पार्लर			
8.	ट्रैक्टर चालक			
9.	खेल			
10.	शिक्षकीय			

आपने जिन कामों को केवल पुरुषों के लिए उपयुक्त चुना, ऐसा क्यों? आपस में चर्चा कीजिए।

जो काम आपने केवल महिलाओं के लिए चुना है, उन्हें पुरुष क्यों नहीं कर सकते?

आपने जो काम महिला और पुरुष दोनों के लिए चुना है, आप क्यों मानते हैं कि वह दोनों के लिए उपयुक्त है?

समाज द्वारा लिंग के आधार पर श्रम विभाजन को प्राकृतिक तौर पर देखा जाता है, जबकि केवल महिला का गर्भ धारण करना ही प्राकृतिक है। शेष ज़िम्मेदारियों का महिला व पुरुष के बीच बँटवारा समाज के द्वारा किया गया है। यह बँटवारा समाज में पुरुषों के अधिक प्रभाव के आधार पर हुआ है। इसमें महिलाओं को ऐसी ज़िम्मेदारियाँ सौंपी गई हैं, जो नीरस, उबाऊ तथा अधिक परिश्रम की माँग करती हैं। बच्चों के जन्म के बाद लालन–पालन करने की प्राथमिक ज़िम्मेदारी महिलाओं की मानी जाती है। इस प्राथमिक ज़िम्मेदारी के साथ घर का काम, जैसे– खाना बनाना, साफ–सफाई एवं अन्य कार्य भी महिलाओं की ज़िम्मेदारी बन जाती है। ये सब कार्य महिलाओं के कार्य कहलाते हैं। एक अलग नज़र से देखा जाए तो बच्चों के पालन–पोषण की ज़िम्मेदारी सिर्फ माँ की ही नहीं है बल्कि पिता की भी है।

पुरुष घर के बाहर का काम करते हैं। ऐसा नहीं है कि पुरुष घर के सारे काम नहीं कर सकते। वे सोचते हैं, कि ये सभी काम करना महिलाओं की ज़िम्मेदारी है। इस पारम्परिक सोच को बदलने की आवश्यकता है।

वहीं, इन सारे कार्यों के लिए अगर पैसे मिलते हैं तो पुरुष बाहर ऐसे काम करते हैं, जैसे– होटल में खाना बनाने और दुकानों में सिलाई का काम पुरुष करते हैं।

घर में श्रम के अतिरिक्त बाहर होने वाले श्रम के लिए जो वेतन दिया जाता है, उस वेतन के निर्धारण में भी लिंग के आधार पर भेदभाव देखा जाता है। महिलाओं को खेती या मज़दूरी के काम में भी पुरुषों से कम मज़दूरी दी जाती है। वहीं दूसरों के घरों में काम करने वाली महिलाओं को पूरे दिन कार्य करने पर भी सम्मानजनक मज़दूरी नहीं मिलती। सोचकर देखिए कि पुरुषों और महिलाओं के श्रम का मूल्यांकन सही न करते हुए कम मज़दूरी देना कहाँ तक उचित है?

जेण्डर आधारित कार्य के समय में अन्तर

यह जानना रोचक होगा कि वास्तव में महिलाएँ कितने घण्टे कार्य करती हैं और पुरुष कितने घण्टे कार्य करते हैं? दोनों के कार्यों और काम के घण्टों में कितना अन्तर है? यह एक सर्वेक्षण से पता चलता है।

इसे जानने के लिए हम अध्याय – **आर्थिक क्रियाओं की समझ** में तालिकाओं को देखें।

आप अपने परिवार या आसपास रहने वाले परिवारों में भी महिलाओं व पुरुषों द्वारा दैनिक किए जाने वाले कार्यों एवं काम के घण्टों के बारे में जानकारी प्राप्त करें एवं समूह में चर्चा करें।

अगर कोई पुरुष अविवाहित है और अपने घर में महिला एवं पुरुष द्वारा किए जाने वाले दोनों कार्यों को करता है तो उसमें उसका कितना अतिरिक्त समय लगेगा? यदि वही पुरुष तीनों समय का खाना होटल में खाए तो उसे प्रतिदिन कितने पैसे खर्च करने होंगे?

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि महिलाओं के साथ कार्य एवं पारिश्रमिक में भेदभाव किया जाता है। इस सम्बन्ध में शासन स्तर पर समान वेतन सम्बन्धी कानून बनाए गए हैं, फिर भी यह हक महिलाओं को अशासकीय क्षेत्र में नहीं मिलता। कृषि क्षेत्र में उन्हें न तो समान मज़दूरी दी जाती है और न ही कृषक समझा जाता है। असंगठित क्षेत्र में महिला को पुरुष की तुलना में लगभग 60 प्रतिशत पारिश्रमिक ही दिया जाता है।

इन बातों से यह स्पष्ट है कि श्रम रोज़गार एवं पारिश्रमिक के क्षेत्र में महिलाओं के प्रति काफी भेदभाव और असमानता है। श्यामलाल के परिवार की तरह ऐसे न जाने कितनी की कहानियाँ हैं, जिनमें लड़कियाँ अशिक्षित रह जाती हैं; चूँकि परिवार में सारे निर्णय सिर्फ पुरुष लेते हैं, इस तरह महिलाओं का शोषण होते रहते हैं।

श्यामलाल ने जिस तरह के विचार व्यक्त किए और अपनी पत्नी रामबती को काम पर जाने से रोका, इस तरह के विचारों वाले लोग हमारे समाज में अधिक संख्या में हैं। ऐसे लोग पुराने समय से चले आ रहे रीति–रिवाज़ों तथा आदतों की वजह से ऐसा मानते हैं कि घर में या घर से बाहर निर्णय लेने का अधिकार केवल पुरुषों का ही होना चाहिए तथा महिलाओं को उनकी बातों को मानकर, बिना कोई प्रश्न किए, निर्णयों को स्वीकार करना चाहिए।

क्या आपने सोचा है कि जिन रीति–रिवाज़ों को लोग मानते आ रहे हैं उन्हें किसने बनाया? पुराने रीति–रिवाज़ों से पुरुषों का वर्चस्व कैसे बढ़ता है? महिलाएँ ऐसे रीति–रिवाज़ों को क्यों नहीं तोड़ पातीं?

श्यामलाल अपनी पत्नी रामबती को बाहर काम करने के लिए जाने से किन कारणों से रोकते हैं? क्या यह कारण न्याय की दृष्टि से उचित है?

यदि श्यामलाल की पत्नी रामबती कारखाने या किसी और स्थान पर जाकर काम करती तो उसके परिवार की किन–किन स्थितियों में सुधार होता?

आपके विचार में श्यामलाल और उसकी पत्नी रामबती में किसकी बात सही थी और क्यों? शिक्षक के साथ चर्चा करें।

जेण्डर भेद के एक और पक्ष को समझने के लिए निम्नलिखित परिस्थिति पर विचार करते हैं–

श्यामलाल का परिवार नया रायपुर में रहता था। उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। श्यामलाल ही घर के मुखिया थे। किसी को भी अपनी राय देने का मौका नहीं मिलता था। पत्नी रामबती अगर कुछ सलाह भी दे तो वह झिड़क देते थे, "तुम घर के बारे में सोचो, मुझे सलाह देने की आवश्यकता नहीं है। रामबती सहनशील, समाज की परम्पराओं को मानने वाली महिला थी।

बच्चों की अच्छी परवरिश, बेटी की शादी का खर्च आदि भी जुटाना था। इसलिए वह अपने पति से कहती थी कि वह भी किसी फैक्टरी में काम करने जाएगी, इससे वह अपनी शिक्षा व हुनर का उपयोग भी कर पाएगी तथा परिवार की आय में अपना हाथ बटा पाएगी। श्यामलाल यह सुनकर गुस्से से कहते, "तू घर के बाहर काम करने जाएगी, गैर पुरुषों के साथ काम करेगी, समाज में मेरी फजीहत कराएगी? चुपचाप घर में रह, मैं जितना कमाता हूँ उतने में गुज़ारा कर। हमारे घर से आज तक कोई महिला कार्य करने बाहर नहीं निकली है।" उसकी पत्नी सोचती कि ये तो संकुचित विचार हैं, पर चुप हो जाती।

रूढ़ियों को तोड़ने के प्रयास

ऊपर की कहानी में हमने देखा कि, रामबती ने पुराने विचारों को मान लिया तथा काम करने का विचार त्याग दिया। पूरी दुनिया के साथ–साथ भारत में भी 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ से कई समाज सुधारकों, जैसे– राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द विद्यासागर व ज्योतिबा फुले आदि ने महिलाओं की सामाजिक स्थिति में सुधार के लिए पुराने विचारों तथा रूढ़ियों का विरोध शुरू किया।

उदाहरण के लिए राजा राममोहन राय ने सभी के लिए आधुनिक शिक्षा प्रदान करने के साथ–साथ सती प्रथा को रोकने के लिए कानून बनाने की बात की। ईश्वरचन्द विद्यासागर ने भी विशेष रूप से विधवा पुनर्विवाह, विवाह के बाद लड़कियों को ससुराल भेजने के लिए न्यूनतम उम्र तथा लड़कियों की शिक्षा के लिए प्रयास किए। ज्योतिबा फुले व सावित्री बाई फुले ने कमज़ोर वर्गों के बीच शिक्षा व समाज सुधार के कई कार्य किए।

सावित्रीबाई फुले (1831–1897)

चित्र 14.2 : सावित्रीबाई फुले

भारतीय समाज में निम्न वर्ग के साथ भेदभाव, हिंसा और अत्याचार होते थे। विशेष वर्ग के लोग श्रेष्ठ व पूजनीय माने जाते थे। वे ही समाज के नियम बनाते और धर्मनीति और पाप का भय दिखा कर नियमों का पालन करवाते थे। इस समय स्त्रियों को शिक्षा, सम्पत्ति, स्वतंत्रता, समानता एवं सम्मान पाने का अधिकार नहीं था।

स्त्री शिक्षा के प्रति आम धारणा थी कि यदि वे पढ़ लेंगी तो विधवा हो जाएँगी। सावित्रीबाई फुले का मानना था कि सही शिक्षा से ही स्त्रियों को सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति मिल सकती है। उन्होंने शिक्षा को अपना अस्त्र बनाया। सावित्रीबाई ने तय किया कि शिक्षा के सहारे ही लोगों के मन–मस्तिष्क में बदलाव लाया जा सकता है एवं वैज्ञानिक सोच पैदा की जा सकती है।

सावित्रीबाई फुले के समय कमज़ोर वर्ग के लोगों को किन–किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था और क्यों?

सावित्रीबाई फुले स्त्रियों तथा कमज़ोर वर्ग की मुक्ति के लिए शिक्षा को महत्वपूर्ण साधन क्यों मानती थीं?

सावित्रीबाई ने अपने पति ज्योतिबा फुले के साथ बराबरी से सहभागिता निभाते हुए कमज़ोर वर्गों के लिए शिक्षा का काम शुरू किया। उन्होंने सन् 1848 में लड़कियों के लिए पहला स्कूल खोला। इसके बाद उन्होंने सन् 1897 तक 17 स्कूल और खोले। सावित्रीबाई फुले खुद अनपढ़ थीं। अपने पति ज्योतिबा फुले के सहयोग व प्रोत्साहन से उन्होंने स्वयं पढ़ना–लिखना सीखा था। वे अपने स्कूल की पहली महिला शिक्षिका बनीं। उन्होंने कमजोर वर्ग के बच्चों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया। उनके स्कूल के पाठ्यक्रम के अनुसार विद्यार्थियों में नीतिबोध कथा, बालबोध, शुद्ध व्याकरण, गणित, भूगोल, मराठों का इतिहास, एशिया, यूरोप और भारत के मानचित्रों की समझ विकसित करने का प्रयास किया जाता था।

फुले दम्पति को विशेष वर्ग के लोगों द्वारा घोर विरोध का सामना करना पड़ा था। इन जातियों के प्रभावशाली लोगों के डर से ज्योतिबा के परिवार ने भी स्कूल बन्द करने का दबाव डाला तथा उन्हें घर से निकाल दिया। सावित्रीबाई को विशेष वर्ग के लोगों ने कई तरह से प्रताड़ित किया। उनके स्कूल के मुख्य द्वार और स्कूल के आँगन में गन्दगी फैला दी जाती थी। लोग उन्हें रास्ता चलते भला–बुरा कहते थे। उन्होंने इन सब बाधाओं और प्रताड़नाओं का शान्ति और दिलेरी से सामना किया वे अपने रास्ते से बिल्कुल नहीं डगमगाई और लगातार अपना काम करती रहीं।

सावित्रीबाई व ज्योतिबा फुले नाटकों, गीतों, कविताओं जैसी ललित कलाओं द्वारा कई गतिविधियाँ करवाते थे। इन गतिविधियों का मुख्य उद्देश्य बच्चों में समाज सुधार और आगे बढ़ने की चेतना का विकास करना था।

सावित्रीबाई एक कवयित्री भी थी, उनकी कविताओं में समाज के शोषित लोगों के प्रति अपार सहानुभूति थी। उनका काव्य संग्रह ***"काव्य फुले"*** बहुत महत्वपूर्ण है। ऐसा माना जाता है कि मराठी साहित्य में नवजागरण आन्दोलन का प्रारम्भ इसी पुस्तक द्वारा हुआ।

वे भारत की शुरुआती महिला समाज सुधारकों में से एक थीं। यह प्रयास इसलिए भी महवपूर्ण था क्योंकि उनके इन प्रयासों ने शोषित महिलाओं को अपने अधिकारों के लिए संघर्ष का रास्ता दिखाया था।

सावित्रीबाई फुले ने स्त्रियों की शिक्षा के लिए क्या प्रयास किए?

सावित्रीबाई फुले के स्त्री शिक्षा तथा समाज सुधार के प्रयासों का दूरगामी क्या प्रभाव पड़ा?

आपके विचार से ज्योतिबा फुले ने अपनी पत्नी सावित्रीबाई को पढ़ने में सहयोग और प्रोत्साहन क्यों दिया होगा?

महिलाओं का राजनैतिक अधिकारों के लिए संघर्ष

भारत में महिलाएँ कुल जनसंख्या की लगभग आधी हैं। क्या उनकी भागीदारी बराबर की है? क्या कोई लोकतंत्र आधी जनता, यानी महिलाओं की भागीदारी के बिना सफल हो सकता है?

दुनिया के अधिकतर लोकतांत्रिक देशों में महिलाओं को इन अधिकारों को हासिल करने के लिए लम्बा संघर्ष करना पड़ा। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा लगातार कई अधिकारों की माँग की। महिलाओं ने अपने मताधिकार के लिए बार–बार

चित्र 14.3 : महिलाएँ अपने मताधिकार का प्रयोग करते हुए

चित्र 14.4 : महिलाओं का समान अधिकार का नारा

माँग उठाई और अन्तर्राष्ट्रीय वयस्क मताधिकार आन्दोलन के साथ भी जुड़ीं। सन् 1913 में बुडापेस्ट (यूरोप महाद्वीप) में होने वाले वयस्क मताधिकार गठबन्धन सम्मेलन में कुमुदनी मिश्रा को भारतीय महिला प्रतिनिधि के रुप में बुलाया गया।

सन् 1917 में जब प्रशासनिक सुधारों पर चर्चा हो रही थी, तो महिलाओं ने अपनी माँगों के सम्बन्ध में कहा कि उन्हें शिक्षा एवं स्वास्थ्य की सुविधाएँ मिलनी चाहिए। सन् 1921 में पहली बार मद्रास विधानसभा ने महिलाओं को वोट देने का अधिकार दिया। सन् 1935 के अधिनियम में महिलाओं के लिए विधानसभा में अलग से सीटों का आरक्षण किया गया। सभी महिलाओं को वयस्क मताधिकार भारत का संविधान बनने पर ही मिल पाया।

स्वतंत्रता के बाद जैसे–जैसे महिला संगठन मजबूत होने लगे, महिलाएँ केवल अपने निजी जीवन से जुड़े अधिकारों, जैसे–शिक्षा, नौकरी, व्यक्तिगत सुरक्षा व दहेज से मुक्ति, सम्पत्ति में भागीदारी आदि अधिकारों से आगे बढ़कर राजनैतिक संस्थाओं में अधिक भागीदारी की माँग करने लगीं। पुत्र और पुत्री को पिता की सम्पत्ति में समान अधिकार है – यह कानून सन् 1956 में बन गया था। इस कानून को बनवाने के लिए कानून के समर्थकों को बहुत संघर्ष करना पड़ा। पुराने रीति–रिवाज़ों को मानने वालों ने इसे परिवारों को बाँटने वाला कानून बताया। इसका समर्थन करने वालों ने न्याय तथा समानता जैसे लोकतांत्रिक मूल्यों के आधार पर इसके पक्ष में ज़ोर दिया। सन् 1956 के इस कानून में कई कमियाँ थीं जिन्हें दूर करने के लिए सन् 2005 में इस कानून को और भी सशक्त बनाया गया।

चित्र 14.5 : विभिन्न राजनैतिक संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी

महिलाओं का मानना है कि यदि उन्हें राजनैतिक संस्थाओं में प्रतिनिधित्व मिले, तो वे अपने जीवन से जुड़े विषयों पर जनमत और कानून बनवा पाएँगी तथा अपने विषय में व्यक्तिगत तथा राजनैतिक निर्णय आसानी से ले पाएँगी।

लोकतंत्र में महिलाओं की भागीदारी कैसे सुनिश्चित हो सकती है?

भारत में स्वतंत्रता से पूर्व महिलाएँ कौन–कौन से अधिकारों की माँग कर रही थीं?

विभिन्न राजनैतिक संस्थाओं में महिलाओं का प्रतिनिधित्व

भारत में 73वें व 74वें संविधान संशोधनों द्वारा महिलाओं को स्थानीय प्रशासन के निकायों जैसे– ग्राम, जनपद व जिला पंचायत, नगर पालिका और नगर निगमों में 33 प्रतिशत सीटों पर आरक्षण दिया गया था। वर्तमान में कई राज्यों में यह आरक्षण 50 प्रतिशत हो गया है।

स्थानीय स्वशासन में महिला पंचों व सरपंचों को तरह–तरह की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इनमें से एक बड़ी कठिनाई थी कि महिला पंचों व सरपंचों द्वारा लिए गए निर्णयों को मानने के लिए पुरुष मानसिक रूप से तैयार नहीं थे। स्थानीय शासन की संस्थाओं के पास इतने अधिकार नहीं थे जिनसे वे समाज में अधिक प्रभाव डाल पातीं तथा अपनी क्षमताओं से समाज में कोई बड़ा बदलाव ला सकतीं। यही वजह थी कि महिलाओं ने राज्य विधानसभा तथा संसद में 33 प्रतिशत आरक्षण की माँग रखी। संविधान के 81वें संशोधन द्वारा महिलाओं के लिए संसद में 33 प्रतिशत आरक्षण के विधेयक को प्रस्तावित किया गया, लेकिन आज तक यह विधेयक संसद में पारित नहीं हो पाया है। सभी राजनैतिक दल 33 प्रतिशत आरक्षण पर सैद्धान्तिक रूप से सहमत हैं, परन्तु विभिन्न कारणों से राजनैतिक दलों में इस विधेयक के स्वरूप पर सहमति नहीं बन पा रही है।

महिलाओं की लोकसभा में भागीदारी

लोकसभा	कुल सीटें	महिला सदस्य	प्रतिशत
1952	489	अनुपलब्ध	......
1957	494	22	4.4
1962	494	31	6.3
1967	520	29	5.6
1971	518	21	4.2
1977	542	19	3.5
1980	542	28	5.2
1984	542	42	7.7
1989	543	29	5.3
1991	543	37	6.8
1996	543	40	7.4
1998	543	43	7.9
1999	543	49	9.0
2004	543	45	8.2
2009	543	59	10.9
2014	543	62	11.4

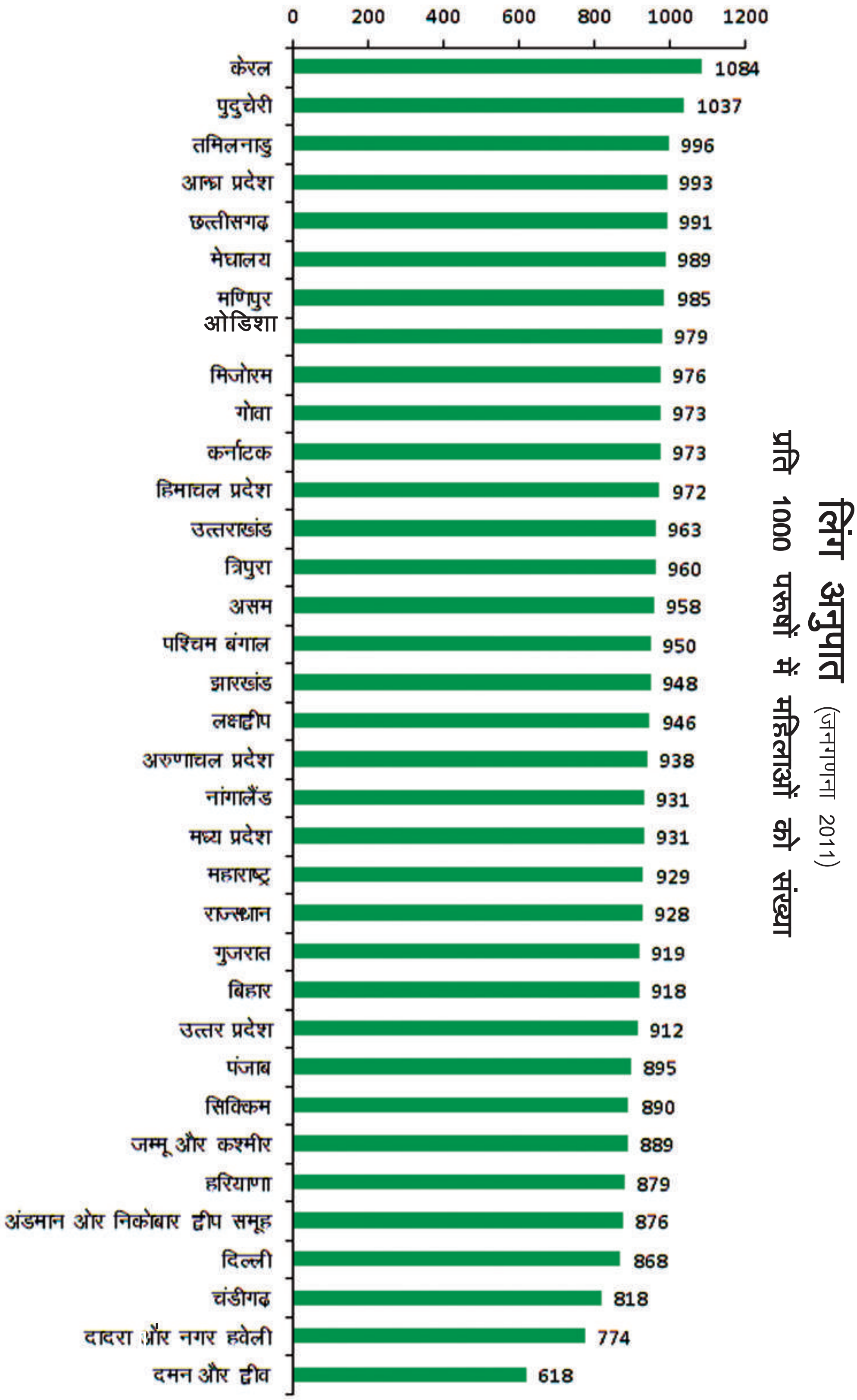

चित्र 14.6 : विभिन्न राज्यों और संघ शासित प्रदेशों में महिलाओं की भागीदारी (स्रोत– www.census2011.co.in/sexratio.php)

छत्तीसगढ़ और हरियाणा की तुलना करते हुए बताएँ कि दोनों के लिंगानुपात में कितना अन्तर है व क्यों है?

स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं में प्रतिनिधि चुने जाने के बाद महिलाओं को किस–किस तरह के अनुभव हुए?

महिलाओं ने राज्य की विधान सभाओं एवं संसद में आरक्षण की माँग क्यों की?

उपरोक्त तालिका में आप देख सकते हैं कि लोकसभा में महिलाओं की संख्या बहुत कम है। इसके क्या कारण हो सकते हैं?

किसी समाज में यदि कोई भेदभाव न हो तो लिंगानुपात लगभग समान होता है। भारत के अलग–अलग राज्यों के सन्दर्भ में हम देखते हैं कि लिंग–अनुपात काफी असमान है। इससे यह स्पष्ट होता है कि आज भी समाज में अधिकतर लोग लड़का ही चाहते हैं।

महिलाओं के द्वारा आर्थिक आत्मनिर्भरता के प्रयास

राजनैतिक अधिकारों के साथ–साथ महिलाओं ने आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनने की भी कई कोशिशें की हैं, क्योंकि आर्थिक स्वतंत्रता के बिना महिलाओं को निर्णय लेने में स्वतंत्रता नहीं मिल सकती। पिछले कुछ दशकों में महिलाओं ने न केवल सरकारी योजनाओं से आर्थिक लाभ उठाने की कोशिश की है, बल्कि अपनी ओर से भी कई प्रयास किए हैं। ऐसे ही एक प्रयास को हम यहाँ देखने की कोशिश करते हैं।

माता राजमोहिनी देवी

माता राजमोहनी देवी का जन्म सरगुजा जिले (वर्तमान में बलरामपुर जिला) के सरसेडा (शारदापुर) गाँव में 7 जुलाई सन् 1914 ई. को एक गरीब कृषक परिवार में हुआ। उनके पिता का नाम वीरदास तथा माता का नाम शीतला देवी था। राजमोहिनी देवी का बाल्यकाल शिक्षा–विहीन व्यतीत हुआ। ग्राम गोविन्दपुर के रंजीत गोंड़ से विवाह उपरांत लगभग बीस वर्षों तक उनका जीवन गृहस्थ रूप में बीता। उस समय निरक्षरता के कारण छत्तीसगढ़ के गाँव–गाँव में अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता, मद्यपान जैसी समस्याएँ विकराल रूप धारण कर चुकी थीं।

चित्र 14.7 : माता राज मोहिनी देवी

पुरुष प्रधान समाज में नारी उत्पीड़न को देख उनका हृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने गाँव के लोगों को सुखी जीवन की सीख देने का बीड़ा उठाया उनसे गाँव वाले अत्यधिक प्रभावित हुए। शराब की लत के कारण ग्रामवासी न केवल आर्थिक रूप से कमजोर हो गए थे बल्कि उनमें नैतिक गिरावट भी आ गई थी। उन्होंने शराब–बन्दी के लिए नारी शक्ति का आह्वान किया। हजारों महिलाएँ उनके आन्दोलन में भाग लेने आगे आईं। 28 मार्च सन् 1953 ई. में भट्ठीतोड़ सत्याग्रह शुरू किया गया। इस सत्याग्रह में लगभग 50 हजार लोग शामिल थे। इसका प्रभाव उत्तर प्रदेश के दुद्धी, सिंगरौली, अगोरी और विजयगढ, बिहार के राँची और (राँची अब झारंखण्ड) पटना, केरल और मध्यप्रदेश की शराब भट्ठियों पर भी पड़ा। इस सत्याग्रह का संदेश था **शराब से तन–मन–धन तीनों का नुकसान होता है।**

माता राजमोहिनी देवी ने सन् 1963–64 में अखिल भारतीय नशाबंदी सभा के सम्मेलन में शराब–बंदी पर भाषण दिया। इस भाषण से खुश होकर श्री लाल बहादुर शास्त्री और मोरारजी देसाई ने उन्हें बधाई भी दी थी। ग्रामवासियों की सेवा के लिए उन्होंने सेवा मण्डल का गठन किया। माता जी को समाज और देश सेवा के लिए तत्कालीन मुख्यमंत्री पं. रविशंकर शुक्ल

और भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने भी अंबिकापुर में बधाई दी। समाज के कमजोर वर्गों की उत्कृष्ट सेवा के लिए राजमोहिनी देवी को 19 नवम्बर सन् 1986 ई. में इंदिरा गाँधी पुरस्कार एवं 25 मार्च 1989 को राष्ट्रपति द्वारा पद्‌मश्री की उपाधि से सम्मानित किया गया। 6 जनवरी सन् 1994 ई. को ऐसी महिमा मण्डित छत्तीसगढ़ की संत माता का लम्बी बीमारी के बाद निधन हो गया। उनके द्वारा सामाजिक उत्थान के लिए किए गए कार्य सदैव अविस्मरणीय रहेंगे।

सरगुजा जिले में महिला सशक्तीकरण के प्रयास

देश व राज्य के अन्य इलाकों की तरह सरगुजा जिले में महिलाओं द्वारा सशक्तीकरण के प्रयास किए जा रहे हैं। जिले की प्रथम महिला जिलाधीश के मार्गदर्शन में महिलाओं के 12,000 स्व– सहायता समूह बनाए गए हैं जिनकी सहायता से महिलाएँ ऑटो, जीप, ट्रेक्टर, हारवेस्टर तथा वैन चालकों के रूप में कार्य कर रही हैं। इनके अलावा सेफ्टी नेपकिन तथा अण्डों के छिलकों से खाद पाउडर बनाने का काम भी महिलाओं द्वारा किया जा रहा है। इन महिलाओं के कामों से प्रभावित होकर अन्य ग्रामीण व शहरी महिलाएँ लगातार स्व–रोजगार के कार्यों से जुड़ने का कार्य कर रही हैं।

चित्र 14.8 : सवारी के लिए प्रतीक्षा करती महिलाएँ

माता राजमोहनी ने सन् .... में .... सत्याग्रह शुरू किया।

माता राजमोहिनी देवी के जीवन काल में छत्तीसगढ़ के गाँवों में कौन–कौन सी समस्याएँ थीं?

क्या वर्तमान में ये समस्याएँ विद्यमान हैं? यदि हाँ तो इन्हें दूर करने के लिए छत्तीसगढ़ के युवाओं की क्या भूमिका हो सकती है?

आपके आस–पास, महिला सशक्तीकरण के लिए किए जा रहे प्रयासों पर चर्चा कीजिए।

शराब से मनुष्य को होने वाले नुकसान पर चर्चा कीजिए।

यौन उत्पीड़न और छेड़छाड़ तथा इन्हें रोकने के उपाय

प्रायः अखबारों तथा टेलीविज़न के समाचार चैनल पर ऐसी खबरें पढ़ने और देखने को मिलती है कि परिवारों और सार्वजनिक स्थानों पर लड़कियों और महिलाओं के साथ यौन उत्पीड़न तथा छेड़छाड़ की घटनाएँ होती हैं। ऐसी घटनाओं में कई परिवारों के पुरुष, लड़के, लड़कियों के परिचित या दूर के रिश्तेदार और कई बार अनजान लोग शामिल होते हैं। यौन उत्पीड़न और छेड़छाड़ में लड़कियों के साथ ज़ोर–ज़बरदस्ती की गई हरकतें, उन पर की जाने वाली भद्दी टिप्पणियाँ, गन्दे इशारे तथा दुर्व्यवहार शामिल हैं। यौन उत्पीड़न और छेड़छाड़ कानूनी रुप से दण्डनीय अपराध है जिनके साबित होने पर दण्ड दिया जा सकता है। लड़कियों को ऐसे किसी भी अपराध को किसी दबाव की वजह से चुपचाप सहन नहीं करना चाहिए। उन्हें अपने माता–पिता, बड़े भाई–बहनों, शिक्षिकाओं या अन्य किसी समझदार और विश्वासपात्र लोगों से बातचीत करनी चाहिए। ऐसे अपराधों को रोकने के लिए सभी परिवारों और विद्यालयों में बच्चों को अच्छी आदतें सिखानी चाहिए। समाज को लड़कियों के प्रति संवेदनशील बनने का प्रयास करना चाहिए, ताकि ऐसे अपराधों को रोका जा सके। ऐसा करना सभी की सामाजिक ज़िम्मेदारी है, क्योंकि ऐसे अपराधों से न सिर्फ सम्बन्धित लड़कियों के सम्मान और गरिमा को ठेस पहुँचती है, बल्कि सारे समाज का अपमान होता है। यौन उत्पीड़न और छेड़छाड़ के सम्बन्ध में पुलिस हेल्पलाइन पर भी शिकायत की जा सकती है?

चित्र 14.9 : बदनीयत से भी डरें और हर नज़र से हम डरें, फ़रियाद हम किस से करें गर हाथ अपनों के बढ़े

कैश कमेटी

(Committee Against Sexual Harassment; CASH)

इस कमेटी को विशाखा कमेटी भी कहा जाता है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने विशाखा मुकदमे का फैसला देते हुए यह दिशा–निर्देश दिए कि महिलाओं के साथ कार्यस्थलों पर होने वाले यौन उत्पीड़न और छेड़छाड़ की घटनाओं को रोकने के लिए सभी कार्यालयों तथा संस्थाओं, जैसे– स्कूलों, कॉलेजों, सरकारी कार्यालयों, निजी संस्थाओं व कम्पनियों के कार्यालयों आदि में महिलाओं के साथ होने वाली यौन उत्पीड़न और छेड़छाड़ की घटनाओं की शिकायतों का निवारण करने के लिए यौन उत्पीड़न शिकायत निवारण कमेटियों अर्थात Committee Against Sexual Harassment का गठन किया जाए। इस कमेटी में सम्बन्धित संस्था या कार्यालय की तीन वरिष्ठ महिला सदस्यों को शामिल किया जाना चाहिए। कमेटी के सदस्यों के नामों की जानकारी संस्था के सूचना पट पर स्थाई रुप से लिखी जानी चाहिए ताकि कार्यालय की सभी महिला कर्मचारियों को इसके विषय में पता लग सके। कैश कमेटी की यह ज़िम्मेदारी होती है कि वह अपनी संस्था में किसी भी महिला द्वारा यौन उत्पीड़न और छेड़छाड़ की शिकायत की स्वतंत्र निष्पक्ष जाँच करे। यदि उक्त शिकायत सही पाई जाए तो सम्बन्धित व्यक्ति के खिलाफ कमेटी कानूनी और विभागीय कार्यवाही की सिफारिश कर सकती है। कैश कमेटी का गठन करना सभी संस्थाओं के लिए अनिवार्य है। इनका गठन सुनिश्चित करने की ज़िम्मेदारी संस्था प्रमुख की होती है।

इस अध्याय के विभिन्न हिस्सों में हमने जेण्डर शब्द तथा लिंगभेद के विषय में अपनी समझ बनाने की कोशिश की है। हमने कई उदाहरणों के माध्यम से यह समझने की कोशिश की है कि महिला और पुरुष आम तौर पर जो कार्य करते हैं, वे उनके समाज द्वारा निर्धारित किए जाते हैं, जो कि स्थिर नहीं हैं तथा इनमें जागरूकता बढ़ने के साथ–साथ बदलाव हो रहा है। महिलाएँ राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक समानताओं को हासिल करने की कोशिश कर रही हैं। समानता का विचार लोकतंत्र का सबसे महत्वपूर्ण आधार है, यही कारण है कि लोकतांत्रिक देश होने की वजह से भारत का संविधान देश के नागरिकों को, जिनमें महिलाएँ भी शामिल हैं, राजनैतिक समानता का वादा करता है।

परिचर्चा

माता–पिता बच्चों की परवरिश में लिंग आधारित भेदों को दूर कैसे करें?

लड़कियों को उनकी रुचि के अनुसार शिक्षा एवं लक्ष्य हासिल करने में माता–पिता का क्या योगदान हो सकता है?

कार्यस्थल पर महिलाओं के प्रति संवेदनशील कैसे बनें?

महिलाओं के प्रति होने वाली हिंसा को रोकने में पुरुषों को कैसे संवेदनशील बनाया जा सकता है?

महिला आयोग (Women's Commission)

विगत दिनों काम की तलाश में एक महिला आई। वह लोगों के घर में झाड़ू–पोंछा, बर्तन का काम करती थी। उसका पति

शराब का बुरी तरह से आदी था। वह मारपीट कर उससे पैसे छीन लेता था, रात में शराब पीकर आता था और अक्सर अकारण उसकी बेरहमी से पिटाई भी करता था। एक दिन उसके मार खाए चेहरे को देखकर, मैंने पूछा तुम इस मारपीट का विरोध क्यों नहीं करतीं? तब उसने एक बेजान सी दलील दी– ''मैं क्या कर सकती हूँ? मैं तो केवल एक महिला हूँ मेरी कौन सुनेगा?''

इस तरह की बहुत सी महिलाएँ हैं जो विभिन्न कष्टों को झेल रहीं हैं और उन्हें न्याय के लिए महिला पुलिस थानों, न्यायालय या मानवाधिकार आयोग जाने में झिझक होती है। इसलिए विशेष तौर पर महिलाओं की समस्या को निपटाने के लिए महिला आयोग का गठन राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर किया गया है। महिला आयोग सभी महिलाओं को जागरूक करने के लिए तथा महिलाओं से संबंधित कानूनों की जानकारी देने के लिए जगह–जगह विविध कार्यक्रम आयोजित करता है।

एक बार एक शिक्षिका महिला आयोग द्वारा शाला में आयोजित कार्यक्रम में शामिल हुई उनके द्वारा दी गई प्रमुख जानकारियाँ आप सभी को भी दी जा रही है।

महिला आयोग का गठन महिलाओं की आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति में सुधार करने तथा सरकार को सलाह देने के लिए किया जाता है। महिला आयोग महिलाओं को संवैधानिक तथा कानूनी संरक्षण दिलाने, बंदी महिलाओं की स्थिति की जाँच करने, महिलाओं में आत्मविश्वास तथा आत्मनिर्भरता बढ़ाने के लिए कार्य करता है। राष्ट्रीय महिला आयोग बाल विवाह रोकने, अनाथ महिलाओं, विधवाओं व तलाकशुदा महिलाओं के निर्वाह के लिए आर्थिक सहायता दिलाने, कन्या भ्रूण हत्या रोकने, अल्पसंख्यक तथा पिछड़ी जाति की महिलाओं के उत्थान के लिए प्रयास करता है साथ ही, यह महिलाओं को शोषण और अन्याय के विरुद्ध लड़ने के लिए जागरूक करता है।

महिला आयोग की आवश्यकता क्यों महसूस की गई?

महिला आयोग पीड़ित महिलाओं को कैसे सहायता करता है?

पता– छत्तीसगढ़ राज्य महिला आयोग, गायत्री भवन–13, जल विहार कॉलोनी, रायपुर, फोन 0771–4241400

अभ्यास

प्रश्न 1 सही विकल्प चुनिए –

अ. जेण्डर क्या है?

क) शारीरिक भेद ख) आर्थिक भेद

ग) सामाजिक भेद घ) राजनीतिक भेद

ब. महिलाओं के घरेलू श्रम को समझा जाता है –

क) बहुत अधिक आय वाला कार्य

ख) बिना किसी मज़दूरी वाला कार्य

ग) बिना किसी उपयोग का कार्य

घ) महिलाओं का स्वाभाविक कार्य

स. साफ–सफाई, खाना बनाना, कपड़े धोना आदि काम पुरुष घर में करना पसन्द नहीं करते लेकिन बाहर ऐसे काम करते हुए दिखते हैं, ऐसा क्यों है?

क) क्योंकि उससे आय होती है

ख) कार्य को सम्मानजनक नहीं माना जाता

ग) ऐसे कार्यों के लिए पैसे नहीं मिलते

घ) ऐसे कार्यों के लिए बहुत अधिक मेहनत करनी पड़ती है

द. बहुत से लोग जेण्डर आधारित भूमिकाओं का पालन करते हैं क्योंकि–

क) वे पुराने रीति–रिवाज़ों को मानते हैं तथा उससे बाहर नहीं निकल पाते हैं।

ख) वे ऐसी भूमिकाओं में बदलाव को कानून के खिलाफ समझते हैं।

ग) वे सोचते हैं कि भूमिकाएँ बदलने से महिलाओं के साथ अन्याय होगा।

घ) उन्हें भूमिकाओं को बदलना कठिन लगता है।

2. रिक्त स्थान की पूर्ति करें –

क) प्रारम्भ में महिलाओं ने अपने जीवन से जुड़े .... अधिकारों की माँग की।

ख) स्थानीय स्वशासन के निकायों में महिलाओं को .... प्रतिशत आरक्षण प्राप्त है।

ग) महिलाएँ .... में 33 प्रतिशत आरक्षण की माँग कर रही हैं।

घ) महिलाएँ आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए .... बना रही हैं।

3. नीचे लिखे गए प्रश्नों के उत्तर दें–

1. महिलाओं के विषय में कौन–कौन से पूर्वाग्रह होते हैं?
2. महिलाओं के घर या बाहर किए जाने वाले कार्यों में मुख्य रूप से क्या अन्तर है?
3. सावित्रीबाई फुले द्वारा चलाए जा रहे स्कूलों में क्या पढ़ाया जाता था?
4. महिलाओं ने अपने अधिकारों को हासिल करने के लिए क्या प्रयास किया?
5. समाज में जेण्डर भेद किन–किन कारणों से उत्पन्न होता है?
6. अगर महिलाओं को निर्णय लेने वाली संस्थाओं में समान भागीदारी मिले तो इसका महिलाओं की स्थिति पर क्या प्रभाव पड़ेगा ?
7. महिलाओं को आर्थिक रुप से आत्मनिर्भर बनाने के लिए किस–किस तरह के प्रयास किए जा रहे हैं?
8. समाज में मौजूद जेण्डर भेद को समाप्त करने के लिए क्या–क्या किया जाना चाहिए?

परियोजना कार्य

1. आपके आस –पास काम करने वाले महिला स्वयं सहायता समूह कौन–कौन से कार्य कर रहे हैं, उनकी एक सूची बनाइए।
2. महिलाओं द्वारा चलाए जा रहे स्वयं सहायता समूह से कौन–कौन से लाभ पहुँच रहे हैं? एक केस स्टडी तैयार कीजिए।

Y2R8RT

**

अर्थशास्त्र

15

आर्थिक क्रियाओं की समझ

आर्थिक क्रियाएँ

हमारे आस–पास के लोग अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए विभिन्न प्रकार के काम करते हैं। कहीं–कहीं इन कार्यों से वस्तुओं का उत्पादन होता है, जैसे– बाँस की टोकरी बनाना, कपड़ा बुनना, खेत में फसल उगाना या कारखाने में सीमेंट तैयार करना आदि।

चित्र 15.1 : आर्थिक सेवा के उदाहरण

दूसरी ओर कई अन्य कार्यों द्वारा लोगों को सुविधा या सेवा प्रदान की जाती है। उदाहरण के लिए किराना व्यापारी सेवा प्रदान करता है और बस चलाने वाला परिवहन की सुविधा या सेवा देने का काम करता है। इसी तरह बाल काटने वाली भी सुविधा या सेवा प्रदान करती है। यह कार्य वह सेवा भावना वाला कार्य नहीं है जो हम बिना पैसे की अपेक्षा से करते हैं। यहाँ सेवा खरीदी जाती है। वस्तुओं की तरह यहाँ भी पैसे चुकाकर लोग किसी सुविधा या सेवा को खरीदते हैं।

इनमें से अधिकांश क्रियाएँ ऐसी हैं जिनके लिए हम धन का लेन–देन करते हैं। कुछ ऐसी भी क्रियाएँ हैं जहाँ वस्तुओं एवं सेवाओं को प्राप्त करने के लिए धन का लेन–देन नहीं करना पड़ता है। इनके बारे में आप इसी अध्याय में आगे पढ़ेंगे।

आइए इस सूची पर विचार करें –

सूची क्रमांक 1.1

1.किसान द्वारा अनाज उगाना एवं बेचना।

2.मिट्टी से मटके बनाकर बेचना।

3. व्यापारियों द्वारा उत्पादित सामग्री को खरीदना एवं बाज़ार में बेचना।
4. स्कूल में शिक्षक द्वारा विद्यार्थियों को पढ़ाना।
5. दुकान लगाकर बिस्किट व नमकीन बेचना।
6. बढ़ई द्वारा फर्नीचर बनाकर बेचना।
7. कारखाने द्वारा कागज़ बनाकर बेचना।
8. जंगल से शहद एकत्र करना एवं बेचना।
9. कोसे से धागा तैयार कर साड़ी बनाना एवं बेचना।
10. मछली पालन करना एवं बेचना।
11. एक कम्पनी द्वारा बॉक्साइट का खनन करना एवं दूसरी कम्पनी को बेचना।

चित्र 15.2 : विभिन्न आर्थिक गतिविधियाँ

आप अपने अनुभव के आधार पर आर्थिक क्रियाओं की इस सूची को आगे बढ़ाएँ, जहाँ किसी वस्तु या सेवा का उत्पादन किया जा रहा हो और उसे प्राप्त करने के लिए मुद्रा का भुगतान किया जाता हो।

12. ....
13. ....
14. ....
15. ....
16. ....
17. ....
18. ....
19. ....
20. ....

उपर्युक्त सूची को देखने से स्पष्ट है कि लोग अलग–अलग आर्थिक क्रियाओं में लगे हुए हैं। इन्हीं आर्थिक क्रियाओं से उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है।

वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन, धन (मुद्रा) की प्राप्ति और विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली सभी क्रियाएँ आर्थिक क्रियाएँ कहलाती हैं।

उपर्युक्त सूची से वस्तु के उत्पादन एवं सेवा प्रदान करने के कार्य को छाँटकर अलग–अलग करें।

उदाहरणों के आधार पर आर्थिक क्रिया को समझाएँ।

ऐसी आर्थिक क्रियाओं की सूची बनाएँ जो–

अ. पूरे वर्षभर चलती रहती हैं।

ब. वर्ष में कुछ दिन या कुछ महीने चलती हैं।

अर्थव्यवस्था के क्षेत्र (Sectors of the Economy)

विभिन्न प्रकार की आर्थिक क्रियाएँ किसी न किसी क्षेत्र विशेष से सम्बन्धित होती हैं। उत्पादन के आधार पर आर्थिक क्रियाओं को हम निश्चित क्षेत्र (क्षेत्रक या सेक्टर) में वर्गीकृत कर सकते हैं। इन्हें कृषि क्षेत्र, उद्योग क्षेत्र और सेवा क्षेत्र में विभाजित किया गया है। ऐसा करने से इन क्षेत्रों का भारत के कुल उत्पादन में योगदान आसानी से ज्ञात किया जा सकता है।

1. कृषि एवं सम्बन्धित क्षेत्र (Agriculture and allied Sector)

इस क्षेत्र में उत्पादन की प्रक्रिया मुख्यतः प्रकृति पर निर्भर होती है। इसमें प्राकृतिक प्रक्रियाओं एवं संसाधनों का उपयोग किया जाता है। इसमें विभिन्न प्रकार की फसलें, जैसे– धान, गेहूँ, मक्का, बाजरा, कपास आदि का उत्पादन किया जाता है। कृषि से सम्बन्धित क्षेत्र में वनोपज भी आती है। उनसे हमें फल, जड़ी–बूटियाँ, फूल, गोंद, शहद, सहित कई उपयोगी वनस्पतियाँ प्राप्त होती हैं। इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों में पशुपालन, मत्स्य पालन जैसे क्षेत्र भी सम्मिलित होते हैं।

चित्र 15.3 : कृषि कार्य करते हुए

चित्र 15.4 : स्टील रोलिंग मिल

2. उद्योग क्षेत्र (Industrial Sector)

इस क्षेत्र में लोग अपने श्रम एवं मशीन/औज़ार के प्रयोग से विनिर्माण (मैन्यूफैक्चरिंग) के कार्य करके वस्तु का उत्पादन करते हैं, जैसे – बाँस को विनिर्मित कर टोकरी बनाना, गन्ने से गुड़ बनाना, चमड़े से जूता बनाना, चूना पत्थर से सीमेंट बनाना आदि।

उद्योग का अध्ययन मुख्य रूप से कुटीर उद्योग (सूक्ष्म उद्योग), लघु उद्योग, मध्यम उद्योग एवं वृहद उद्योग के रूप में किया जाता है। घरों में बहुत छोटे पैमाने और अधिकतर परिवार के सदस्यों से की जाने वाली वस्तुओं के उत्पादन को हम कुटीर उद्योग की श्रेणी में रखते हैं।

कुटीर उद्योगों की तुलना में लघु उद्योगों में श्रमिकों की संख्या और पूँजी की मात्रा अधिक होती है। इनमें कुछ छोटी या मध्यम मशीनों का उपयोग करके उत्पादन किया जाता है, जैसे– धान मिल, छपाई कारखाना, ईंट भट्ठा व छोटे कलपुर्जों को बनाने वाला कारखाना। ऐसे उद्योग लघु उद्योगों की श्रेणी में आते हैं।

वृहद उद्योग में लघु उद्योगों की अपेक्षा और भी ज़्यादा पूँजी और संसाधनों का उपयोग किया जाता है। वस्तुओं का उत्पादन बड़े कारखानों में होता है जिसके लिए बड़ी संख्या में श्रमिकों की आवश्यकता होती है। सीमेंट एवं इस्पात के कारखाने इसके उदाहरण हैं।

कृषि उत्पादन में प्रकृति की भूमिका स्पष्ट करें।

अपने आस–पास के उद्यमों को कुटीर उद्योग, लघु उद्योग और वृहद उद्योगों में वर्गीकृत कर निम्नलिखित तालिका भरें–

क्र.	कुटीर उद्योग	लघु उद्योग	वृहद उद्योग
1	उद्यम का नाम	उद्यम का नाम	उद्यम का नाम ....
2	प्रयुक्त कच्चे माल की सूची	प्रयुक्त कच्चे माल की सूची	प्रयुक्त कच्चे माल की सूची ....
3	प्रयुक्त कच्चा माल कहाँ से प्राप्त किया जाता है?........................	प्रयुक्त कच्चा माल कहाँ से प्राप्त किया जाता है?........................	प्रयुक्त कच्चा माल कहाँ से प्राप्त किया जाता है?........................
4	तैयार उत्पाद	तैयार उत्पाद	तैयार उत्पाद ....

सूची 1.2

3. सेवा क्षेत्र (Service Sector)

इस क्षेत्र में विशिष्ट प्रकार की सेवाएँ, जैसे– चिकित्सा, नर्सिंग, वकालत, अध्यापन आदि पेशेवरों द्वारा दी गई सेवाओं को शामिल किया जाता है। इसके अतिरिक्त इनमें उन सेवाओं को भी सम्मिलित किया जाता है जो

उत्पादन की प्रक्रिया में सहयोग प्रदान करती हैं, जैसे– उत्पादों को बाज़ार तक ट्रेक्टर या ट्रक द्वारा पहुँचाना, व्यापारी द्वारा दूर–दूर के बाज़ारों तक वस्तुओं को पहुँचाना, बैंकिंग सेवाएँ देना तथा दूरसंचार सम्बन्धी सेवाएँ प्रदान करना। सभी शासकीय सेवाएँ भी इस क्षेत्र में शामिल की जाती हैं।

सूची 1.1 के कार्यों को निम्नलिखित क्षेत्रों में वर्गीकृत कीजिए–

क्र.	कृषि एवं सम्बन्धित क्षेत्र	उद्योग क्षेत्र	सेवा क्षेत्र
1	किसान द्वारा अनाज उत्पादन करना एवं उसे बाज़ार में बेचना	बाँस की टोकरी बनाना	शिक्षक द्वारा विद्यार्थियों को पढ़ाया जाना।
2			
3			
4			

यातायात एवं संचार के साधन वस्तुओं के उत्पादन में किस प्रकार मददगार होते हैं?

परियोजना कार्य– स्थानीय बाज़ार में जाकर सेवा क्षेत्र सम्बन्धी गतिविधियों की सूची बनाइए जैसे– सामान उतारना और चढ़ाना, लोगों को एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाना, सामान बेचना, मरम्मत करना आदि।

वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन की गणना क्यों और कैसे?

आज लोग विभिन्न प्रकार की आर्थिक गतिविधियों में लगे हुए हैं और बड़ी संख्या में वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन कर रहे हैं। किसी भी राष्ट्र के कुल उत्पादन को जानने के लिए हमें राष्ट्र की सभी उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का कुल उत्पादन जानना आवश्यक होता है।

आप सोचते होंगे कि हज़ारों वस्तुओं एवं सेवाओं की गणना करना असम्भव है और पेचीदा भी। हम चाहें तो सभी वस्तुओं की एक सूची बना सकते हैं, परन्तु सभी वस्तुओं की मात्रा की अगर गणना करना चाहें तो वह मुश्किल होगा क्योंकि विभिन्न वस्तुओं व सेवाओं के मापन का पैमाना अलग–अलग है।

इस समस्या के समाधान के लिए हम मुद्रा रूपी मानदण्ड का प्रयोग करके वस्तुओं और सेवाओं के मूल्यों का योग करेंगे। यदि 500 किलोग्राम शक्कर 30 रुपये प्रति किलो की दर से बेची जाती है तो शक्कर का मूल्य 15,000 रुपए हुआ। 30 रुपए प्रति लीटर की दर से 100 लीटर दूध का मूल्य 3,000 रुपए हुआ। एक डॉक्टर द्वारा आँख के ऑपरेशन के लिए 5,000 रुपए प्रति ऑपरेशन की दर से 10 ऑपरेशन का मूल्य 50,000 रुपए हुआ ।

अब इन तीनों उत्पादन के **कुल मूल्य** को जानने के लिए निम्नलिखित तालिका को पूरा करें–

क्र.	वस्तु/सेवाओं का नाम	मात्रा	दर 'रुपयों में'	योग 'रुपयों में'
1	शक्कर	500 कि.ग्रा.	30 रुपए प्रति कि.ग्रा.	15,000
2	दूध	....	30 रुपए प्रति लीटर	3,000
3	आँख का ऑपरेशन	10	....	....
				68,000

चित्र 15.5 : राइस मिल

कुल उत्पादन को जानने के लिए हमने तीनों वस्तु/सेवा का मूल्य जोड़ा, परन्तु सभी वस्तुओं और सेवाओं की गणना करें तो यह किस प्रकार होगी? कई वस्तुओं का किन्हीं अन्य वस्तुओं के उत्पादन में उपयोग किया जाता है। ऐसी परिस्थिति में सभी वस्तुओं का मूल्य जोड़ना क्या उचित होगा? प्रत्येक उत्पादित और बेची गई वस्तु या सेवा की गणना करने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि अन्तिम रूप से जिन वस्तुओं का हम उपभोग करते हैं, उनके मूल्यों की गणना करनी चाहिए। इसे हम एक उदाहरण के द्वारा अच्छी तरह समझ सकते हैं –

चित्र 15.6 मुरमुरे बनाने वाला दुकानदार

माना कि एक किसान किसी राइस मिल को 10 रुपए प्रति किलो ग्राम की दर से 100 कि.ग्रा. धान बेचता है। इस प्रकार धान का विक्रय मूल्य 1,000 रुपए हुआ। यहाँ किसान धान उत्पादन के लिए स्वयं के घर का बीज प्रयोग करता है। फिर राइस मिल वाला 100 कि.ग्रा. धान से 60 कि.ग्रा. चावल तैयार करता है जिसे वह 20 रुपए प्रति कि.ग्रा की दर से किसी मुरमुरा दुकानदार को बेच देता है। इस तरह चावल का विक्रय मूल्य 1,200 रुपए हुआ। अगले चरण में मुरमुरा दुकानदार उस चावल से 55 कि.ग्रा. मुरमुरा तैयार कर 50 रुपए प्रति कि.ग्रा. की दर से उपभोक्ता को बेचता है। अतः उस चावल का मुरमुरा अन्तिम उत्पाद के रूप में उपभोक्ता तक पहुँचता है। इस उदाहरण में मुरमुरा दुकानदार के लिए धान एवं चावल **मध्यवर्ती वस्तुएँ** हुईं।

अन्तिम वस्तुओं के मूल्य में मध्यवर्ती वस्तुओं का मूल्य शामिल होता है। यहाँ मुरमुरा का विक्रय मूल्य अन्तिम वस्तु के रूप में 2,750 रुपए हुआ तथा मध्यवर्ती वस्तु धान एवं चावल का मूल्य क्रमशः 1000 रूपये एवं 1,200 रुपए हुआ। यहाँ धान, चावल तथा मुरमुरा के मूल्यों की अलग–अलग गणना करना ठीक नहीं है। इससे एक ही वस्तु के मूल्य की गणना बार–बार होगी। ऐसा करने से दोहरी गणना हो जाएगी।

शिक्षक के साथ चर्चा करें

मध्यवर्ती वस्तुएँ अन्तिम वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन में प्रयोग की जाती हैं। अन्तिम वस्तुओं का हम उपभोक्ता के रूप में उपभोग करते हैं। अन्तिम वस्तु उत्पादन की प्रक्रिया में और आगे किसी चरण में शामिल नहीं होती। अर्थात् उत्पादन की प्रक्रिया यहाँ समाप्त हो जाती है।

कुल उत्पादन के लिए मूल्य–संवर्धन (Value Added) विधि

ऊपर दिए गए उदाहरण में धान, चावल तथा मुरमुरा के मूल्यों की गणना एक अन्य विधि द्वारा भी की जा सकती है। इस उदाहरण को एक तालिका के रूप में लिखकर समझ सकते हैं।

क्र.	वस्तु	कुल मूल्य (रुपयों में)	इस चरण के लिए खरीदा गया कच्चा माल मध्यवर्ती मूल्य (रुपयों में)	इस चरण में मूल्य संवर्धन (रुपयों में)
1	धान	1,000	0	1,000 – 0 = 1,000
2	चावल	1,200	1,000	1,200 – 1,000 = 200
3	मुरमुरा	2,750	1,200	2,750 – 1,200 = 1,550
	उत्पादन का कुल मूल्य			1,000 + 200 + 1,550 = 2,750

यहाँ हम देखते हैं कि प्रत्येक चरण पर मूल्य जोड़ा जा रहा है जिससे मूल्य–संवर्धन हो रहा है। पहले चरण में धान का मूल्य संवर्धन 1,000 रुपए है। चूँकि धान का बीज किसान के घर का था, उसे कुछ खरीदना नहीं पड़ा। दूसरे चरण में राइस मिल ने धान 1,000 रुपए में खरीदा और 1,200 रुपए में चावल बेचा। इस चरण में संवर्धन मूल्य 200 रुपए हुआ। तीसरे चरण में मुरमुरा कारखाने वाले ने चावल को 1,200 रुपए में खरीदा तथा 2,750 रुपए में बेचा जिससे संवर्धन मूल्य 1,550 रुपए हुआ। इस तरह किसी वस्तु के उत्पादन के प्रत्येक चरण में मूल्यों में वृद्धि होती है। यही **मूल्य संवर्धन** कहलाता है।

परियोजना कार्य– अपने घर के लिए क्रय किए जाने वाले मासिक किराना सामान एवं सेवाओं के मूल्यों की गणना कीजिए।

मोटर साइकिल के उत्पादन में किन–किन मध्यवर्ती वस्तुओं का उपयोग होता है? चर्चा करें।

क्या कोई वस्तु एक परिस्थिति में अन्तिम उत्पाद और दूसरी परिस्थिति में मध्यवर्ती उत्पाद हो सकती है? एक उदाहरण देकर समझाएँ।

एक अन्य उदाहरण के द्वारा मूल्य संवर्धन को विस्तार से समझाएँ।

सकल घरेलू उत्पाद (GROSS DOMESTIC PRODUCT- G.D.P.)

किसी वित्तीय वर्ष में प्रत्येक क्षेत्र (क्षेत्रक) की अन्तिम वस्तुओं और सेवाओं के मूल्यों का योग उस देश के कुल उत्पादन को दर्शाता है। ये सभी उत्पादन देश की सीमा के भीतर हुए हैं। अर्थात एक वर्ष में किसी देश में उत्पादित कुल अन्तिम वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्यों के योग को ही सकल घरेलू उत्पाद कहा जाता है। घरेलू अर्थात् देश के भीतर।

सकल घरेलू उत्पाद की गणना का कार्य केन्द्र सरकार के सांख्यिकी मंत्रालय द्वारा किया जाता है। यह मंत्रालय केन्द्र एवं राज्यों के विभिन्न सरकारी विभागों की सहायता से अंतिम वस्तुओं एवं सेवाओं की कुल संख्या और उनके मूल्यों से सम्बन्धित सूचनाएँ एकत्रित करता है और इनकी सहायता से सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) ज्ञात किया जाता है।

छत्तीसगढ राज्य का सकल घरेलू उत्पाद (करोड़ रुपए में)

क्षेत्र	2004–05	प्रतिशत	2014–15	प्रतिशत
कृषि एवं संबंन्धित	10,159	21	18,727	
उद्योग	21,221	44	42,282	
सेवा	16,482	35	39,833	
कुल	47,862	100	1,00,842	100

छत्तीसगढ़ का सकल घरेलू उत्पाद (आधार वर्ष 2004–05 स्थिर मूल्यों पर)

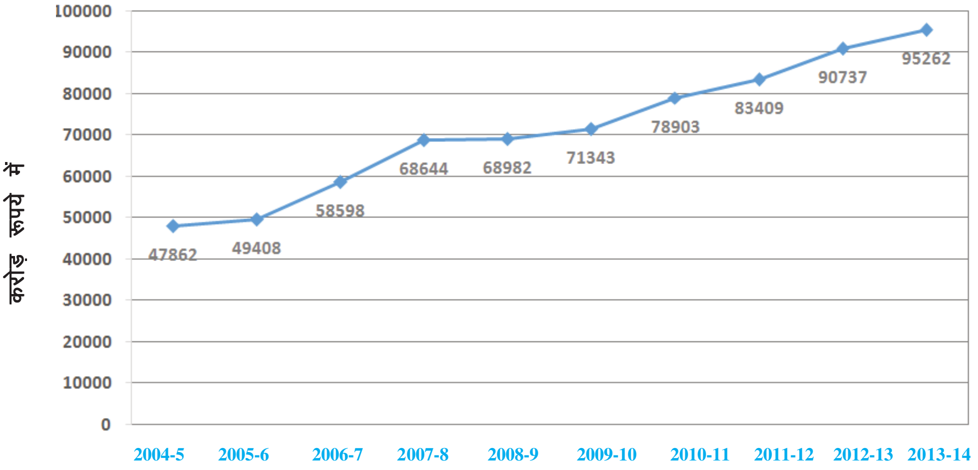

(स्रोत छ.ग. आर्थिक सर्वेक्षण, 2014–15)

चित्र 15.7 छत्तीसगढ़ का सकल घरेलू उत्पाद

उपर्युक्त रेखाचित्र से स्पष्ट है कि वर्ष 2004–05 से 2013–14 की अवधि में छ.ग. राज्य के सकल घरेलू उत्पाद की प्रवृत्ति बढ़ने की है।

सकल घरेलु उत्पाद को अपने शब्दों में समझाइए।

छत्तीसगढ़ में 2004–05 से 2014–15 के बीच हर क्षेत्र के उत्पाद में लगभग कितना परिवर्तन आया? शिक्षक के साथ चर्चा करें।

पिछले वर्ष 2014–15 के लिए क्षेत्रवार प्रतिशत निकाल कर तालिका को पूरा करें

विगत दस वर्षों में अर्थव्यवस्था के किस क्षेत्र का महत्व बढ़ रहा है?

गैर भुगतान क्रियाओं की समझ एवं महत्व

चित्र 15.8 : दूध दुहना

हम पूर्व में पढ़ चुके हैं कि सकल घरेलू उत्पाद की गणना करते समय अन्तिम उत्पाद के मूल्य को ही लिया जाता है। जिस मूल्य पर वे खरीदी या बेची जाती हैं, उसी के आधार पर वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्यों की गणना की जाती है। हम अपने जीवन में बहुत से ऐसे कार्य करते हैं जिसके लिए कोई कीमत प्रदान नहीं की जाती है पर ये कार्य हमारे जीवन के लिए बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। स्पष्ट है कि ऐसे कार्य जो बेचे या खरीदे नहीं जाते और जिनके लिए मुद्रा का भुगतान नहीं किया जाता उन्हें सकल घरेलू उत्पाद की गणना करते समय शामिल नहीं किया जाता क्योंकि ये गैर भुगतान

चित्र 15.9 : घर की सफाई करना

क्रियाएँ हैं। इससे सकल घरेलू उत्पाद वास्तव में कम दिखाई देता है। अगर ये महत्वपूर्ण उत्पादन के कार्य शामिल करके गिने जाएँ तो सकल घरेलू उत्पाद का मूल्य बढ़ जाएगा।

ऐसे कार्यों की गणना भले ही आर्थिक क्षेत्र में न हो फिर भी इनका एक विशेष महत्व है। ऐसे ही कार्यों से हमारा परिवार एवं समाज चलता है। इनमें से अधिकांश कार्य महिलाओं द्वारा किए जाते हैं। इन कार्यों के लिए उन्हें पारिश्रमिक प्रदान नहीं किया जाता है, जैसे–घर में खाना बनाना, बच्चों की देखभाल करना आदि।

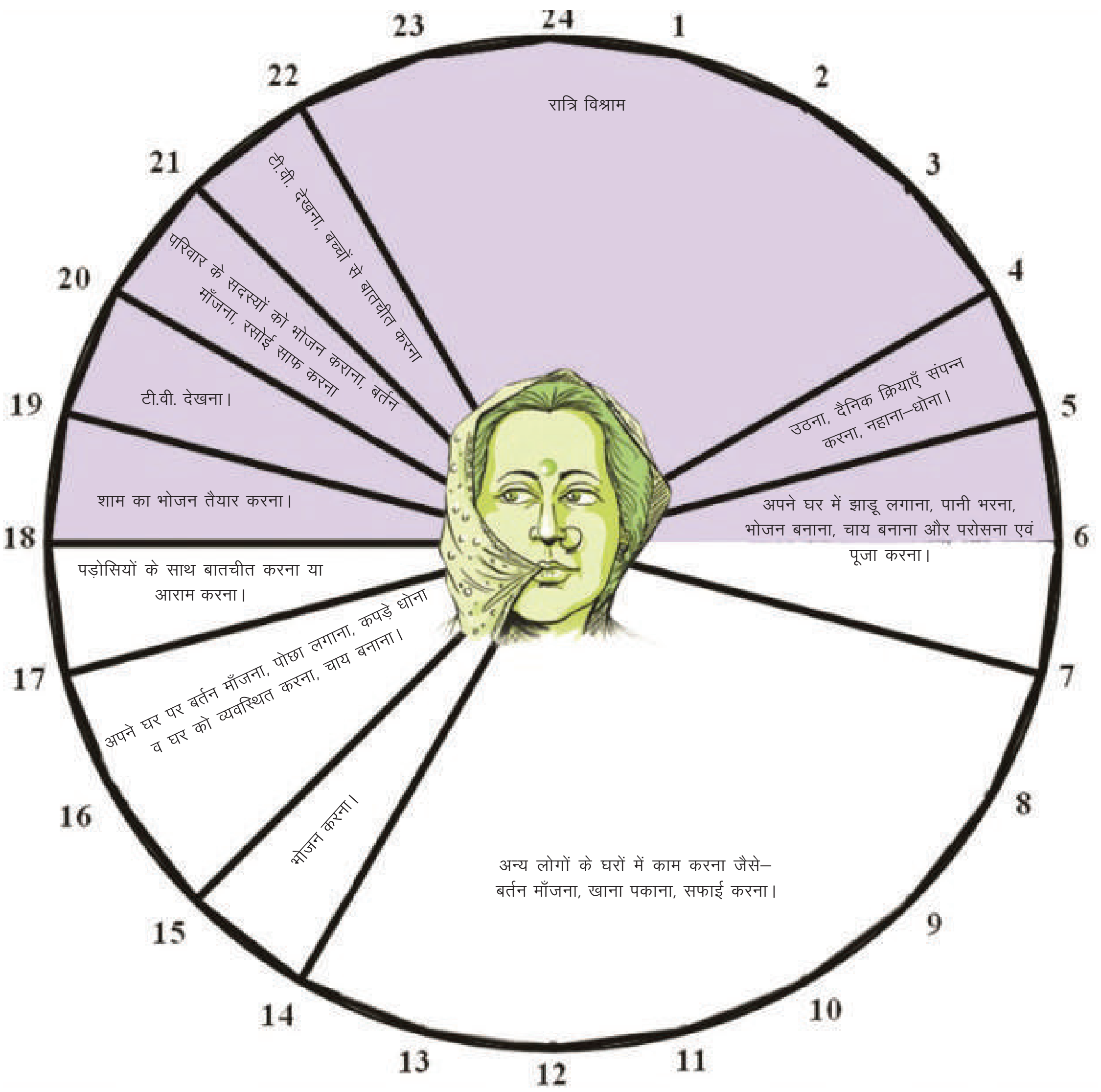

चित्र 15.10 : एक कामकाजी महिला की दिनचर्या

परियोजना कार्य–

आप छोटे समूह बनाकर अपने परिवार एवं घरों में होने वाले ऐसे कार्यों की एक सूची बनाएँ जहाँ वस्तु का उत्पादन हो रहा हो या सेवा प्रदान की जा रही हो, पर उसका भुगतान नहीं किया जा रहा हो।

ऐसे कार्य जिनके लिए कोई मूल्य नहीं दिया जाता, उनका आकलन करने का एक तरीका है। ऐसे कार्यों को उन पर खर्च किए गए समय के आधार पर पहचाना जाता है। कुछ महिलाएँ घर के काम के साथ–साथ आर्थिक कार्य भी करती हैं। उदाहरण के लिए, एक कामकाजी महिला की दिनचर्या को चित्र 15.10 में देखें। इनमें उनकी दैनिक दिनचर्या में आर्थिक कार्य के अलावा सामान्य घर के काम भी शामिल है, जिनके बदले में उन्हें कुछ भी मुद्रा प्राप्ति नहीं होती है। महिलाएँ कई अन्य घरेलू कार्य भी करती हैं जो इस सूची में शामिल नहीं हैं, जैसे– अनाज की सफाई एवं रख–रखाव, घर की साज–सज्जा, मेहमानों, बुजुर्गों और बीमार सदस्यों की देखभाल, बाज़ार से सामान लाना, पालतू पशुओं की देखभाल, घर लीपना, बच्चों को पढ़ाना आदि।

क्र.	गैर भुगतान कार्यों की सूची
1.	
2.	
3.	
4.	

गैर भुगतान कार्यों की एक सूची बनाइए

हम समय के अनुसार लोगों की दिनचर्या को तीन प्रकार की गतिविधियों में बाँट सकते हैं :–

आर्थिक कार्य गतिविधि (Paid work) – ऐसे समस्त कार्य जिनके लिए भुगतान किये जाते हैं।

गैर भुगतान कार्य गतिविधि (Unpaid work)) – ऐसे समस्त कार्य जिनके लिए भुगतान नहीं किये जाते है।

गैर कार्य गतिविधि (Non work activity)– इसमें व्यक्तिगत काम, टी.वी. देखना, गपशप करना, आराम करना आदि शामिल होते हैं।

केन्द्रीय साँख्यिकी संगठन (C.S.O.) द्वारा सन् 1998–1999 में भारत के 6 राज्यों का सर्वे करके विभिन्न कार्यों को समय के आधार पर समझा गया है। इसे हम ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं एवं पुरुषों के कार्यों पर एक तालिका के माध्यम से समझ सकते हैं–

क्रमांक	कार्य	पुरुष (ग्रामीण)	महिला (ग्रामीण)
1.	आर्थिक कार्य	25 प्रतिशत	20 प्रतिशत
2.	गैर भुगतान कार्य	2 प्रतिशत	14 प्रतिशत
3.	गैर कार्य	73 प्रतिशत	66 प्रतिशत

ग्रामीण पुरुषों एवं महिलाओं की दिनचर्या (24 घण्टों) का विश्लेषण

उपर्युक्त तालिका के आधार पर नीचे दिए गए वृत्त आरेख में महिलाओं के कार्यों के प्रतिशत को सही स्थान पर लिखिए।

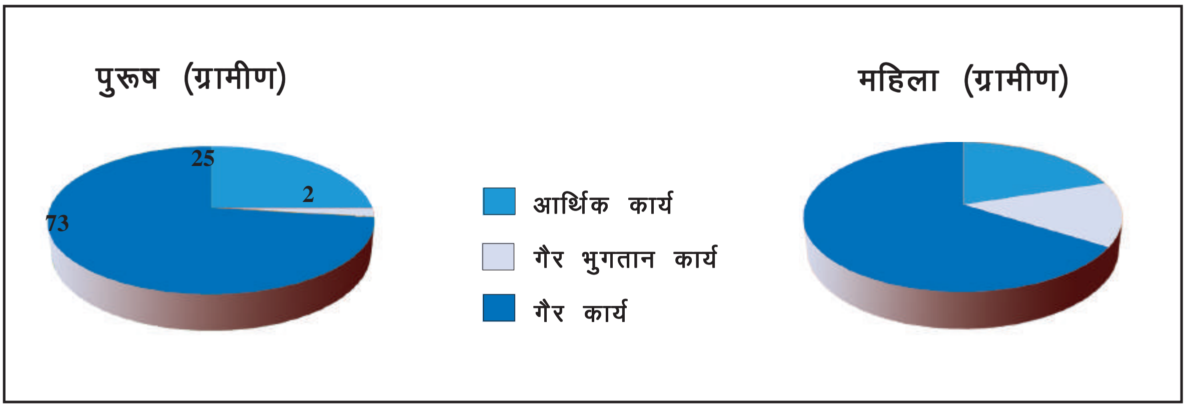

वृत्त आरेख 15.11 : पुरुषों एवं महिलाओं के कार्यों का प्रतिशत

उपर्युक्त वृत्त आरेख से पता चलता है कि महिलाएँ गैर–भुगतान कार्य अधिक करती हैं जो सकल घरेलू उत्पाद में गिने नहीं जाते। इन कार्यों को समझना और सकल घरेलू उत्पाद में गिनना इस पर विचार करना ज़रूरी है। कई देशों में ये प्रयास किए जा रहे हैं। समाज में इन कार्यों के प्रति संवेदनशीलता लाने की ज़रूरत है।

अभ्यास

1. सही विकल्प चुनकर लिखिए–

(i) शिक्षा एवं स्वास्थ्य संबंधी कार्य शामिल हैं–
(क) कृषि क्षेत्र में (ख) उद्योग क्षेत्र में
(ग) सेवा क्षेत्र में (घ) इनमें से कोई नहीं

(ii) दोहरी गणना करने से कुल उत्पाद वास्तविक उत्पाद से दिखाई देता है।
(क) कम (ख) अधिक
(ग) बराबर (घ) इनमें से कोई नहीं

(iii) अधिकांश गैर–भुगतान कार्य किया जाता है।
(क) बच्चों द्वारा (ख) पुरुषों द्वारा
(ग) महिलाओं द्वारा (घ) वृद्धों द्वारा

(iv) किसी भी वर्ष के सकल घरेलू उत्पाद के मूल्यों में शामिल होती है।
(क) सभी वस्तुएँ एवं सेवाएँ (ख) सभी अंतिम वस्तुएँ एवं सेवाएँ
(ग) सभी मध्यवर्ती वस्तुएँ एवं सेवाएँ (घ) सभी मध्यवर्ती एवं अंतिम वस्तुएँ एवं सेवाएँ

2. इनमें से भिन्न का चयन कीजिए एवं समझाइए–
(i) कृषक, बाँस की टोकरी बनाने वाला, मछुआरा, बकरी पालने वाला।
(ii) खाना पकाना, खेलना, सफाई करना, बुजुर्गों की देखभाल करना।
(iii) कागज बनाना, कार बनाना, पंखा बनाना, शिक्षण कार्य।

3. कृषि क्षेत्र में कौन–कौन सी सम्बन्धित गतिविधियों को शामिल किया गया है?
4. कुटीर उद्योग बेरोजगारी दूर करने में सहायक हैं, कैसे?

5. मध्यवर्ती वस्तु को उदाहरण देते हुए स्पष्ट कीजिए।
6. सेवा क्षेत्र अन्य क्षेत्रों से कैसे भिन्न है? स्पष्ट कीजिए।
7. मूल्य संवर्धन को उदाहरण सहित समझाइए।
8. गैर भुगतान कार्य का भी परिवार एवं समाज के लिए महत्व है, समझाइए।
9. महिलाओं द्वारा गैर–भुगतान कार्य अधिक किए जाते हैं, क्या इन कार्यों को सकल घरेलू उत्पाद में गिना जाना चाहिए? तर्क सहित उत्तर दीजिए।
10. अपने आस–पास के वयस्क लोगों के विभिन्न कार्यों की एक सूची बनाइए तथा उनके कार्यों को कैसे वर्गीकृत किया जा सकता है, लिखिए।
11. निम्नलिखित वाक्यों को उदाहरण देकर समझाइए–
    (i) घरेलू कार्य अदृश्य और गैर–भुगतान कार्य है।
    (ii) घरेलू कार्य शारीरिक श्रम की अपेक्षा करता है।

Y7C3PA

**

16

Hkkjrh; vFkZO;oLFkk dk Lo:i

Y7KYQX

Hkkx 1 & df"k {k= ¼Agriculture Sector½

पिछले अध्याय में हमने अर्थव्यवस्था को समझने के लिए उसे तीन क्षेत्रों में बाँटा कृषि एवं सम्बन्धित क्षेत्र, उद्योग क्षेत्र एवं सेवा क्षेत्र। इसी वर्गीकरण के आधार पर हम पिछले 60 वर्षों में भारत की अर्थव्यवस्था में आए परिवर्तनों को समझ सकते हैं। देखा गया है कि अर्थव्यवस्था के विकास की प्रारम्भिक अवस्था में कृषि और उससे सम्बन्धित क्षेत्र सबसे महत्वपूर्ण रहे। कृषि क्षेत्र के उत्पादन और उस पर लगाए गए लगान के कारण राजाओं एवं सामन्तों के पास स्थाई सेनाएँ सम्भव हो पाईं। इसके साथ–साथ कृषि क्षेत्र के उत्पादन पर निर्भर शहर बसे, जहाँ व्यापारी एवं दस्तकारों की संख्या अधिक थी। लेन–देन से बाज़ार फैला और कुछ लोग कृषि से हटकर उद्योग और सेवा के क्षेत्र में काम करने लगे। इन परिर्वतनों के बावजूद समाज में कृषि क्षेत्र उत्पादन और रोज़गार की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण बना रहा।

चित्र 16.1 : खेत में लहलहाती फसल

औद्योगिक क्रान्ति के बाद विकसित देशों में विनिर्माण की नवीन प्रणाली का फैलाव हुआ। कारखाने बनने लगे। जो लोग पहले खेतों में काम करते थे उनमें से बहुत से लोग अब कारखानों में काम करने लगे। कारखानों द्वारा सस्ती दरों पर उत्पादित वस्तुओं का लोग उपभोग करने लगे। इस तरह धीरे–धीरे कुल उत्पादन एवं रोज़गार की दृष्टि से औद्योगिक क्षेत्र सबसे महत्वपूर्ण बनने लगा। हम इतिहास के पाठ में इसके बारे में अधिक विस्तार से पढ़ेंगे।

विकसित देशों में हुए इन बदलावों की खास बात यह है कि उत्पादन एवं रोज़गार दोनों में एक साथ बदलाव आए। कृषि क्षेत्र में लोग कम हो गए और उद्योगों में काम करने लगे। ऐतिहासिक दृष्टि से यह बदलाव रोज़गार और उत्पादन में साथ–साथ होता आया है। क्या भारत में यह बदलाव इसी प्रकार का हो रहा है या उसका स्वरूप अलग है? इसकी चर्चा हम पाठ में आगे करेंगे।

df"k ,oa lEcfU/kr {k= ¼Agriculture and allied sectors½

भारत एक विकासशील देश है जहाँ की आधी–से–अधिक आबादी आज भी कृषि क्षेत्र पर निर्भर है। स्वतंत्रता के समय देश में 72 प्रतिशत लोग कृषि क्षेत्र में रोजगार प्राप्त कर रहे थे। उस समय सकल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र का योगदान 55 प्रतिशत था। साठ साल बाद आज भी देश के अधिकांश ग्रामीण परिवारों में कृषि ही रोज़गार का मुख्य साधन है। कृषि एवं सम्बन्धित क्षेत्र, जैसे– दुग्ध उत्पादन, मछली पालन एवं वनोपज भारतीय अर्थव्यवस्था में 53 प्रतिशत लोगों को रोज़गार प्रदान करता है किन्तु आज यह क्षेत्र सकल घरेलू उत्पाद का केवल 15 प्रतिशत हिस्सा प्रदान कर रहा है।

fn, x, vkdMk ds vk/kkj ij bl rkfydk dks iwjk dhft,&

o"kZ	ldy ?kjsyw mRikn esa d`f"k dk ;ksxnku	d`f"k dk ;ksxnku jkstxkj esa
वर्ष 1950–51 (स्वतंत्रता के समय)		
वर्ष 2009–10 (साठ साल के बाद)		

bl rkfydk ds vk/kkj ij d`f"k {ks= esa D;k&D;k cnyko gq,\ le>k,¡A

ifj;kstuk dk;Z & vki vius eksgYys ds jkstxkj çkIr yksxksa dh la[;k irk djsa] pkgs os i<+s&fy[ks gksa ;k vf'kf{kr gksa] muds {ks= ds vk/kkj ij Lkwph cukb,A

भारत देश में कृषि क्षेत्र का सकल घरेलू उत्पाद में योगदान कम हुआ है, परन्तु इन साठ वर्षों में लोगों को उद्योग या अन्य क्षेत्र में रोज़गार नहीं मिल पा रहा है। अतः रोज़गार के लिए कृषि क्षेत्र पर निर्भरता बनी हुई है। यदि ऐसे लोग कृषि क्षेत्र को छोड़कर अन्य कार्य करें, तब भी कृषि उत्पादन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा अर्थात कृषि उत्पादन में कमी नहीं आएगी। अर्थशास्त्र की भाषा में अर्थव्यवस्था के किसी भी क्षेत्र में आवश्यकता से अधिक लोग यदि रोजगार प्राप्त कर रहे हों, तो उसे vn`'; cjkstxkjh ;k çPNUu cjkstxkjh **(Disguised Unemployment)** कहा जाता है। प्रच्छन्न बेरोज़गारी को हम नीचे दिए गए उदाहरण से समझ सकते हैं।

मान लीजिए एक कृषक परिवार में छः वयस्क सदस्य हैं तथा उनके पास चार एकड़ कृषि भूमि है। ये सभी छः सदस्य कृषि कार्य करके इस खेत से 40 क्विंटल धान उत्पादन करते हैं। इन वयस्क सदस्यों में से किन्हीं दो सदस्यों को अन्य क्षेत्र में रोज़गार मिल जाता है। ये सदस्य कृषि क्षेत्र को छोड़कर नए रोज़गार में चले जाते हैं। अब इस कृषि भूमि पर केवल चार सदस्य ही कार्य करते हैं और 40 क्विंटल धान का उत्पादन करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि इन दो सदस्यों की कृषि उत्पादकता शून्य रही। इनके अन्य क्षेत्र में चले जाने से भी कृषि उत्पादन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

अतः इस कृषि कार्य में आवश्यकता से अधिक सदस्यों का होना प्रच्छन्न बेरोज़गारी को दर्शाता है। इन सदस्यों के दूसरे क्षेत्र में चले जाने का फायदा उस कृषक एवं उसके परिवार को हुआ। दो सदस्यों की आय अलग से प्राप्त हुई। परिणामस्वरूप कृषक परिवार की आय में वृद्धि हुई।

नीचे दिए गए वृत्त आरेख के माध्यम से हम जनसंख्या और उनका सकल घरेलू उत्पादन में योगदान को समझने का प्रयास करेंगे–

वर्ष 2009–10

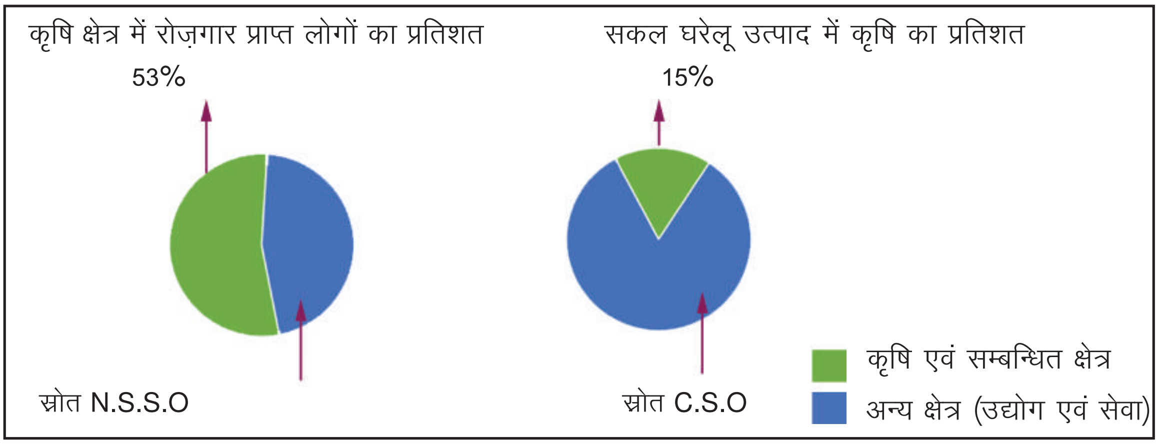

वृत्त आरेख 16.2 : जनसंख्या और उनका सकल घरेलू उत्पादन में योगदान

oÝk vkj[k 16-2 dk ijk djr g, fu"d"k fudkfy,A

D;k vki viu vkl&ikl çPNUu cjkstxkjh d mnkgj.k n[kr g\

çPNUu cjkstxkjh tlh fLFkfr] tgk ykxk d ikl dke rk g yfdu Ik;kIr ugh g 'kgjh {k= e Hkh n[kh tk ldrh g ppk djA

कृषि क्षेत्र की मुख्य चुनौतियाँ

ekulu ij fuHkjrk ,o ty lij{k.k

भारतीय कृषि का अधिकतर भाग आज भी मानसून पर निर्भर है। एक ओर जहाँ सामान्य एवं समय पर हुई वर्षा कृषि क्षेत्र के लिए लाभदायक होती है, वहीं दूसरी ओर अतिवृष्टि एवं सूखा से कृषि क्षेत्र चरमरा जाता है। फसलों में होने वाली विभिन्न बीमारियों, कीटों के प्रकोप, ओला वृष्टि आदि से कभी–कभी कृषि उत्पादन में कमी के साथ–साथ लागत वापस मिलना तक मुश्किल हो जाता है। प्राकृतिक परिवर्तन के कारण कृषक हमेशा अनिष्चितता से जूझते रहते हैं। ऐसी स्थिति में वे कर्ज़ के कारण भी परेशान हो जाते हैं।

चित्र 16.3 : फसलों के लिए नुकसानदायक ओला वृष्टि

किसी भी प्राकृतिक परिवर्तन से जूझने के लिए कई प्रकार की योजनाओं की आवष्यकता होती है। फसल बीमा, अनाजों का संग्रहण, मौसम के पूर्वानुमान के आधार पर फसल के प्रकार का चयन जैसे उपाय अपनाकर समस्याओं का काफी हद तक समाधान किया जा सकता है। इस प्रकार की योजनाओं का उचित क्रियान्वयन हमारे लिए एक चुनौती है।

आज हमारे देश में लगभग 45 प्रतिशत कृषि भूमि सिंचाई के विभिन्न साधनों से सिंचित है। फिर भी एक बड़ा हिस्सा केवल मानसून पर निर्भर है। यही सूखी खेती का इलाका है। यहाँ जल संरक्षण पहला लक्ष्य है। एक ओर यहाँ के किसान जौ, चना, तुअर, सोयाबीन, कपास, मूँगफली, ज्वार आदि की खेती करते हैं। दूसरी ओर सिंचित क्षेत्र में सबसे ज़्यादा सिंचाई भूमिगत जल के माध्यम से की जाती है। परन्तु यहाँ भी अत्यधिक भूमिगत जल के दोहन से जल स्तर लगातार नीचे गिरते जा रहा है।

उदाहरण स्वरूप एक व्यक्ति ने अपने घरेलू कार्य एवं सिंचाई हेतु नलकूप खुदवाया। उसे 20 वर्ष पूर्व सिर्फ 150 फीट की गहराई पर पानी मिल गया था। पाँच वर्ष बाद अन्य ग्रामीणों ने भी नलकूप खुदवाया, उन्हें 250 फीट पर पानी मिला धीरे–धीरे जल स्तर नीचे जाने से उस व्यक्ति का बोर सूख गया। इसके तीन वर्ष पश्चात् उसने व अन्य ग्रामीणों ने 300 फीट की गहराई तक नलकूप खुदवाया। यदि यही क्रम चलता रहा तो आगामी कुछ वर्षों में भू–गर्भ से पानी प्राप्त करना बहुत मुश्किल कार्य होगा।

अतः हमें गिरते भू–जल स्तर की गम्भीरता को समझना होगा। भू–जल संग्रहण के लिए हमें वर्षा जल को स्टापडेम, मेड़ बन्दी, गहरे कुँए बनाकर संग्रहित करना चाहिए। इससे भू–जल स्तर में गिरावट की संभावना कम हो जाएगी। भू–जल वैज्ञानिकों के सुझाव अब लोगों द्वारा ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में धीरे–धीरे अपनाये जा रहे हैं।

vukt lxg.k d D;k rjhd
gk ldr g tk NkV fdlkuk
dk lj{kk çnku dj\

D;k gekj n'k e tgk
vf/kdk'k NkV fdlku g(
Qly chek ;ktuk dke;kc
gk ldrh g\ ppk dhft,A

ifj;ktuk dk;& vkiu viu
bykd e ty lj{k.k dh dkb
;ktuk n[kh gkxhA og Bhd
l dke dj jgh g ;k ugh]
bl ij ,d lf{kIr fjikV
fyf[k,A

चित्र 16.4 : बारिश न होने के कारण सूखा खेत

भूमि की ऊर्वरा शक्ति को बचाए रखना

हमने कक्षा 8 में पढ़ा कि सन् 1960 के दशक से हरित क्रान्ति की योजना की शुरुआत की गई। उन्नत बीज, रासायनिक खाद, सिंचाई सुविधा, कीटनाशकों आदि का उपयोग करके उत्पादन में वृद्धि की गई। फसलों के अधिक उत्पादन की चाह में कृषक वर्ग द्वारा अपनी भूमि में रासायनिक खाद व कीटनाशकों का अधिक प्रयोग किया जाने लगा। फलस्वरूप उत्पादन में वृद्धि हुई। इससे अनाज भंडारण बढ़ा, अकाल पर काबू पा लिया गया और खाद्य सुरक्षा संभव हो पाई।

भूमि में कई प्रकार के सूक्ष्म जीव मौजूद होते हैं। इन सूक्ष्म जीवों की सड़न (अपघटन) के कारण तरह–तरह के पोषक तत्व भूमि में बनते रहते हैं किन्तु रासायनिक खाद एवं कीटनाशकों में कई ऐसे रसायन होते हैं जो भूमि में मौजूद सूक्ष्म जीवों को प्रभावित करते हैं। रसायनों के प्रभाव से सूक्ष्म जीव भी मर जाते हैं। इन सूक्ष्म जीवों के नहीं रहने से कृषि भूमि की ऊर्वरा शक्ति धीरे–धीरे कम होती जाती है।

कृषकों को इस बात का अनुमान है कि भूमि की उर्वरा शक्ति कम हो रही है। पर वे उत्पादन बढ़ाने के लिए रासायनिक खाद और फसल को विभिन्न प्रकार के कीटों से बचाने के लिए कीटनाशक का उपयोग कर रहे हैं। इससे कृषि लागत काफी महंगी होती जा रही है। खेती के तरीके में कुछ मूलभूत परिवर्तन की आवश्यकता है जैसे व्यापक रूप से जैविक खाद का उपयोग करना और मिश्रित एवं बहुफसलीय कृषि को अपनाना। इससे भूमि की ऊर्वरा शक्ति बनी रहेगी और कृषि लागत अपेक्षाकृत सस्ती हो जायेगी।

आम तौर पर देखा गया है कि किसी एक ऋतु में बड़े क्षेत्र में सभी कृषकों द्वारा एक ही तरह की फसल ली जाती है। किसानों ने अनुभव किया है कि इस कार्य में यदि किसी भी मौसम में प्राकृतिक परिवर्तन होता है तो उस क्षेत्र में सभी फसलें प्रभावित होती है। मिश्रित एवं बहुफसलीय कृषि के अपनाए जाने से प्राकृतिक परिवर्तन के कारण होने वाली हानि से फसल को बचाया जा सकता है, जैसे– किसी गाँव के कृषक रबी के मौसम में विभिन्न खेतों में गेहूँ, चना, मटर, मसूर, सरसों आदि की उपज लेने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि प्राकृतिक परिवर्तन से कुछ फसल ही प्रभावित हुई एवं शेष फसल को बचा लिया गया। सूखी खेती के इलाकों में देशी एवं कम पानी वाली फसलें, जैसे– जौ, बाज़रा, मूँग, उड़द आदि का उत्पादन किया जा सकता है। आज की चुनौती है कि सरकारी योजनाओं द्वारा बहुफसलीय कृषि को प्रोत्साहन कैसे दिया जाए?

जैविक खेती : एक कृषक का अनुभव

नटवर भाई एक कृषक हैं जो ओडिशा के कटक ज़िले के नरीसु गाँव में रहते हैं। वे एक सेवानिवृत्त शिक्षक हैं तथा पिछले बीस वर्षों से जैविक खेती कर रहे हैं। उनका मानना है कि इस पद्धति से भी उतना ही उत्पादन लिया जा सकता है जितना कि हम उन्नत बीज से प्राप्त करते हैं। फसल की कुछ किस्में तो उन्हें बीस क्विंटल प्रति एकड़ उत्पादन उपलब्ध कराती हैं। वे रासायनिक खाद और कीटनाशक का बिलकुल भी उपयोग नहीं करते। उनके लिए गोबर जैसी देशी खाद एवं प्राकृतिक कीटनाशक फसल के लिए पर्याप्त हैं। इसमें मेहनत अपेक्षाकृत अधिक लगती है पर लागत बहुत कम है।

चित्र 16.5 : जैविक खेती

नटवर भाई पहले अन्य कृषकों जैसे ही थे और वे रासायनिक खाद व कीटनाशकों का खूब उपयोग करते थे। एक दिन उन्होंने एक मज़दूर को कीटनाशक अपने खेत में छिड़कते हुए देखा। वह मज़दूर कीटनाशक छिड़कते समय बेहोश होकर खेत में गिर गया और उसे तुरन्त अस्पताल ले जाना पड़ा। नटवर भाई ने उस कीटनाशक को एक गड्ढे में गाड़ दिया और कुछ दिन बाद उन्होंने उसी गड्ढे में देखा कि कई मरे हुए घोंघे, साँप, मेंढक आदि तैर रहे थे। तभी उन्हें समझ आया कि रासायनिक खाद एवं कीटनाशकों के उपयोग से भूमि में केंचुँए एवं अन्य सूक्ष्म जीव बुरी तरह से प्रभावित हुए हैं। इसलिए उन्होंने अपना विचार बदलकर पूरी तरह जैविक खेती को अपना लिया।

lkHkkj& U;w jkbl ,0gjhMj vk'kh"k dkBkjh] fgUnq fnlEcj] 9] 2012

tSfod [ksrh fdls dgrs gS\ vius f'k{kd ls ppkZ djsaA

D;k tSfod [ksrh ls [kk|kUu dk mRiknu mruh gh ek=k esa fd;k tk ldrk gS ftruk ge jklk;fud [kknksa ds mi;ksx ls djrs gSa\ ppkZ djsaA

tSfod [ksrh NksVs vkSj y?kq fdlkuksa ds fy, fdl rjg ls dkjxj gks ldrh gS\ ppkZ djsaA

D;k fdlku dHkh Vsy Ýh uEcj 1800&180&1551 dk mi;ksx djrs gSa\ mnkgj.k nsdj le>kb,A

Hkwfe dk vleku forj.k

हमने देखा कि एक ओर भूमि की ऊर्वरा शक्ति को बढ़ाना ज़रूरी है। जमीन की इसी प्राकृतिक शक्ति से ही कृषि का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। दूसरी तरफ, कृषि भूमि सीमित है और इसका वितरण भी असमान है। एक गाँव के उदाहरण से हम इसे समझ सकते हैं। उस गाँव में 450 कृषक परिवार हैं। इनमें से 60 परिवार ऐसे हैं जिनके पास 2 हेक्टेयर से ज़्यादा कृषि भूमि है, ये मध्यम एवं बड़े किसान हैं। 240 ऐसे परिवार हैं जो छोटे किसान हैं। इनके पास 2 हेक्टेयर से कम भूमि है, परिवार में पीढ़ी–दर–पीढ़ी उसी भूमि के बँटवारे के चलते सभी लोगों को कृषि के जरिए रोज़गार नहीं मिल पाता है। ये परिवार गैर–कृषि कार्य में रोज़गार की तलाश कर रहे हैं। यहीं पर 150 परिवार ऐसे हैं जो भूमिहीन कृषि मज़दूर हैं। इन परिवारों को वर्ष–भर काम नहीं मिलता है, सामाजिक दृष्टि से भी इन परिवारों को गैर–कृषि कार्यों में सहयोग नहीं मिलता। यह गाँव में सबसे वंचित समूह है।

आइए अगले पेज पर दी गई तालिका से भारत में भूमि के वितरण में छोटे, मध्यम और बड़े किसानों की हिस्सेदारी की जानकारी प्राप्त करते हैं।

Ø-	fdlku	fdlku dh Hkfe vkcknh dk ifr'kr	d"kdk dh Hkfe dk ifr'kr	tqrkbZ dh xbZ Hkfe dk ifr'kr
1.	छोटे किसान	दो हेक्टेयर से कम	85	45
2.	मध्यम एवं बड़े किसान	दो हेक्टेयर से अधिक	15	55

lkzr & ,xhdYpj lsUl 2010&11

टीप– जुताई की गई भूमि किसान की खुद की भूमि हो सकती है या फिर बटाई पर ली गई भूमि भी हो सकती है।

क्या आप तालिका को देखकर कह सकते हैं कि भूमि का वितरण असमान है? चर्चा करें।

कृषि उत्पाद के लिए विपणन व्यवस्था

कृषक अपने उत्पादों का कुछ भाग स्वयं के उपयोग के लिए रखते हैं तथा शेष उत्पादन को बाज़ार में बेच देते हैं। परन्तु बाज़ार में मध्यस्थों के कारण कृषकों को उनके उत्पाद का उचित मूल्य नहीं मिल पाता है। ऐसे मध्यस्थ कृषकों से अनाज को कम कीमत पर खरीद कर अधिक कीमत पर अन्य स्थानों पर बेच देते हैं।

इस समस्या को कम करने के लिए सरकार द्वारा विभिन्न अनाजों का न्यूनतम समर्थन मूल्य घोषित किया जाता है एवं सार्वजनिक मण्डी व्यवस्था को मज़बूत बनाया जाता है।

चित्र 16.6 : अनाज मण्डी

समर्थन मूल्य लागू करने के लिए ज़रूरी है कि किसानों की पहुँच में मण्डी या सरकारी क्रय केन्द्र उपलब्ध हों जहाँ उन्हें फसल का उचित मूल्य मिल सके। इसके लिए सरकारी मण्डियों में खुली नीलामी की जाती है। यहाँ भाव न्यूनतम समर्थन मूल्य से नीचे नहीं रखा जा सकता। यदि ऐसी व्यवस्था नहीं की जाती तो कृषक खुले बाज़ार में बेचने को मजबूर हो जाते हैं और इसका फायदा मध्यस्थ उठाते हैं। न्यूनतम समर्थन मूल्य से आशय विभिन्न फसलों के कम से कम खरीद मूल्य से है जिसे सरकार घोषित करती है। इस समर्थन मूल्य से कम मूल्य पर कृषकों से फसल नहीं खरीदी जा सकती है। इस हेतु कई बार सरकार स्वयं फसल खरीदने के लिए व्यवस्था भी करती है।

आपके क्षेत्र में कृषक अपने उत्पाद को कहाँ बेचते हैं? क्या उन्हें उचित मूल्य मिलता है? कक्षा में चर्चा करके एक रिपोर्ट लिखें।

परियोजना कार्य–

1. **अपने क्षेत्र की कृषि मण्डी व्यवस्था का अवलोकन करें और उस पर एक रिपोर्ट लिखें।**
2. **पटवारी की सहायता से भूमि वितरण के संदर्भ में आप अपने गाँव या परिचित गाँव का एक रिपोर्ट तैयार करें।**

कृषि में साख की आवश्यकता

कृषि कार्य हेतु कृषक को बीज, खाद, जुताई एवं सिंचाई आदि की आवश्कता होती है जिन्हें वह खरीदता है। इसके लिए कृषकों के पास पर्याप्त धन नहीं रहता। इस कारण कृषकों को ऋण या उधार प्राप्त करना पड़ता है। यही ऋण या उधार अर्थशास्त्र की भाषा में साख कहलाता है। हमारे देश में कृषक दो प्रकार से साख प्राप्त करते हैं – 1. संस्थागत साख तथा 2. गैर संस्थागत साख।

lLFkkxr lk[k (Institutional Credit)& संस्थागत साख से आशय ऐसी साख सुविधा से है जो सहकारी संस्था, सरकार या बैंक के द्वारा कृषकों को प्रदान की जाती है। इस साख सुविधा के अन्तर्गत कम ब्याज दर पर ऋण के लिए कृषकों को किसान क्रेडिट कार्ड (के.सी.सी.), कृषि यंत्रों की खरीदी पर अनुदान, खाद व बीज क्रय हेतु ऋण जैसी सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाती हैं। इसी साख सुविधा को संस्थागत साख कहा जाता है।

हमारे देश में यह साख सुविधा ज्यादातर मध्यम एवं बड़े किसान प्राप्त करते हैं क्योंकि इस साख सुविधा की सबसे बड़ी शर्त ज़मानत होती है जिसे छोटे या गरीब कृषक आसानी से पूरा नहीं कर पाते। इसके अलावा, इस साख सुविधा को प्राप्त करने के लिए विभिन्न दस्तावेज़ी औपचारिकताओं को पूरा करना पड़ता है। इन्हीं कारणों से ज़्यादातर छोटे एवं गरीब कृषक संस्थागत साख सुविधा से वंचित रह जाते हैं।

xSj lLFkkxr lk[k (Non Institutional Credit)– संस्थागत साख से वंचित कृषक कृषि एवं अन्य कार्य करने के लिए मजबूरीवश अपने आस–पास के सेठ, साहूकार, महाजन, मित्र, रिष्तेदार आदि से ऋण प्राप्त करते हैं। ऋणदाता इन कृषकों की मजबूरी का फायदा उठाकर ऊँची ब्याज दर पर ऋण प्रदान करते हैं। यह साख सुविधा आपसी समझौतों एवं वायदों के आधार पर होती है। इसमें किसी प्रकार की कागज़ी एवं दस्तावेजी औपचारिकताओं को पूरा नहीं करना पड़ता। इस साख सुविधा को गैर संस्थागत साख के नाम से जाना जाता है।

हमारे देश में कृषि साख के वितरण का अध्ययन करने पर पता चलता है कि सक्षम कृषकों को संस्थागत साख मिल जाते हैं, परन्तु साधनहीन कृषकों को संस्थागत साख आसानी से प्राप्त नहीं हो पाते।

हम वर्ष 2012 में भारत में ग्रामीण परिवार के साख स्रोतों को वृत्त आरेख 16.7 के माध्यम से समझ सकते हैं। इस आरेख के माध्यम से ग्रामीण परिवारों द्वारा लिए गए कुल ऋण का कितना प्रतिशत संस्थागत तथा कितना प्रतिशत गैर संस्थागत है, इसका पता चलता है।

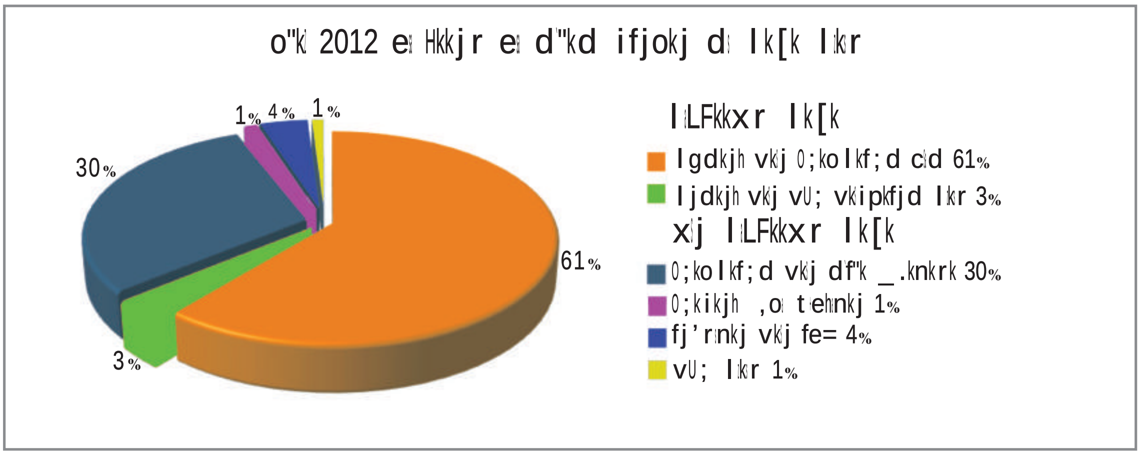

वृत्त आरेख 16.7 : स्रोत NSSO रिपोर्ट 2014

- **संस्थागत और गैर संस्थागत साख में अन्तर स्पष्ट कीजिए।**
- **क्या कारण है कि प्रायः बड़े कृषक संस्थागत व छोटे कृषक गैर संस्थागत साख प्राप्त करते हैं?**
- **कक्षा में चर्चा करें कि क्या कोई ऐसा माध्यम है जिससे गरीब किसान बिना ज़मानत दिए बैंक से आसानी से ऋण प्राप्त कर सकता है?**

गैर कृषि कार्य के अवसर

आज़ादी के समय हम अधिकांशतः अपने उपभोग के लिए अनाज का उत्पादन करते थे एवं सीमित मात्रा में बाज़ार में अनाज बेचा करते थे। परन्तु अब खेती ने व्यावसायिक स्वरुप धारण कर लिया है। इस कारण खेती के लिए ज़रूरी साधन खरीदे जाते हैं, जैसे – बिजली, खाद, बीज, ट्रेक्टर, ट्यूबवेल, हार्वेस्टर आदि। इसके लिए साख की ज़रूरत होगी जिसका पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है। अब खेती की पैदावार का एक बड़ा हिस्सा बाज़ार में बेचने के लिए लाया जाता है।

कृषि से सम्बन्धित क्षेत्र, जैसे – दुग्ध उत्पादन, मत्स्य पालन, वनोपज आदि से भी लोगों की आवश्यकता की पूर्ति होती है। हमारे देश के गाँवों में अधिकांश लोग छोटे किसान या मज़दूर हैं। इन लोगों को कृषि क्षेत्र में लगातार और साल भर काम नहीं मिलता। फलस्वरूप छोटे एवं गरीब कृषक कृषि के प्रमुख कार्य, जैसे–जुताई, बुआई व कटाई का कार्य करते हैं। खाली समय में किसी दूसरे कार्य, जैसे– मज़दूरी, स्थानीय बाज़ार में सब्जी बेचना, ईंट–भठ्ठों पर काम करना, मकान निर्माण में काम करना या अन्य क्षेत्रों में पलायन करके आय अर्जन करते हैं। इस तरह के अनेक गैर–कृषि कार्य आजकल बढ़े हैं, लेकिन वे अनियमित एवं अनिष्चित हैं और कम मजदूरी वाले क्षेत्र हैं।

सबके लिए विकास की कल्पना तभी की जा सकती है जब इन चुनौतियों के हल खोजने के प्रयास किए जाएँ।

अभ्यास

1- fjDr LFkkuk dh iwfrZ dhft,&

1. .... देशों की प्रारंभिक अवस्था में कृषि और उसके संबंधित क्षेत्र सबसे महत्वपूर्ण रहे।
2. वर्तमान में भारत की जनसंख्या के लगभग ....प्रतिशत लोग कृषि एवं संबंधित क्षेत्र पर निर्भर हैं।
3. .... परिवर्तन के कारण कृषक हमेशा अनिष्चितता से जूझते रहते हैं।
4. सिंचित क्षेत्र में सबसे ज्यादा सिंचाई .... जल के माध्यम से की जाती है।

2- lgh fodYi pqudj fyf[k,&

(अ) विकसित देशों में विनिर्माण की नवीन प्रणाली का फैलाव हुआ –

(क) हरित क्रांति के बाद (ख) श्वेत क्रांति के बाद

(ग) औद्योगिक क्रांति के बाद (घ) इनमें से कोई नहीं

(ब) वर्तमान में भारत रोजगार के लिए किस क्षेत्र पर सबसे अधिक निर्भर है –

(क) कृषि क्षेत्र (ख) उद्योग क्षेत्र

(ग) सेवा क्षेत्र (घ) इनमें से कोई नहीं

(स) भूमि की उर्वरा शक्ति को अधिक समय तक बनाए रखने के लिए आवष्यक है–

(क) रासायनिक खाद (ख) जैविक खाद

(ग) कीटनाशक दवाइयाँ (घ) इनमें से कोई नहीं

(द) वर्ष 2009–10 में सकल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र का योगदान है –

(क) 15 प्रतिशत (ख) 30 प्रतिशत

(ग) 45 प्रतिशत (घ) 60 प्रतिशत

3. भारत में रोजगार के लिए निर्भरता कृषि क्षेत्र पर ही बनी हुई है। इसके कारणों को अपने शब्दों में समझाइए।
4. क्या कारण हैं कि कृषक अनिष्चितता से जूझते रहते हैं?
5. सिंचित क्षेत्र को बढ़ाना किन–किन कारणों से महत्वपूर्ण है?
6. घटता भू–जल स्तर चिंता का विषय है। इससे मुक्ति पाने के विभिन्न उपायों का उल्लेख कीजिए।
7. उत्पादन में वृद्धि के साथ–साथ भूमि की उर्वरा शक्ति कम होती जा रही है। ऐसा क्यों? कारण बताइए।
8. मिश्रित एवं बहुफसलीय कृषि कृषकों के लिए लाभदायक है। समझाइए।
9. किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य प्राप्त हो इसके उपाय सुझाइए।
10. अपने अनुभव को जोड़ते हुए समझाइए कि किसानों के हित में और क्या–क्या कदम उठाए जाने चाहिए।

ifj;kstuk dk;Z&

1 जल संरक्षण के विभिन्न उपायों को चित्रों के माध्यम से समझाइए।

2. गैर संस्थागत साख लेने वाले किसी एक व्यक्ति से निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर साक्षात्कार लीजिए–
    1. साख का उद्देष्य।
    2. गैर संस्थागत साख देने वाले व्यक्ति से सम्बन्ध।
    3. साख की राशि एवं ब्याज की दर।
    4. मूलधन लौटाने की अवधि।
    5. क्या गैर संस्थागत साख लेना लोगों की मजबूरी है? अपने विचार व्यक्त कीजिए।

**

Y7UUSK

17

भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप

Y84QU8

भाग–2 उद्योग एवं सेवा क्षेत्र

उद्योग क्षेत्र (Industrial Sector)

साठ वर्षों की झलक

प्रारंभिक दौर

हमारे देश में स्वतंत्रता के पूर्व उद्योगों का विस्तार सीमित था। कुछ ही बड़े उद्योग जैसे–जूट, सूती वस्त्र, लौह इस्पात सीमेंट आदि संचालित थे। उस समय हमारे देश की लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती थी। उद्योग में भी रोज़गार की दृष्टि से कुटीर उद्योग की भूमिका महत्वपूर्ण थी। श्रमिकों का एक बड़ा समूह इन छोटे–छोटे ग्रामीण व्यवसायों में कार्यरत था।

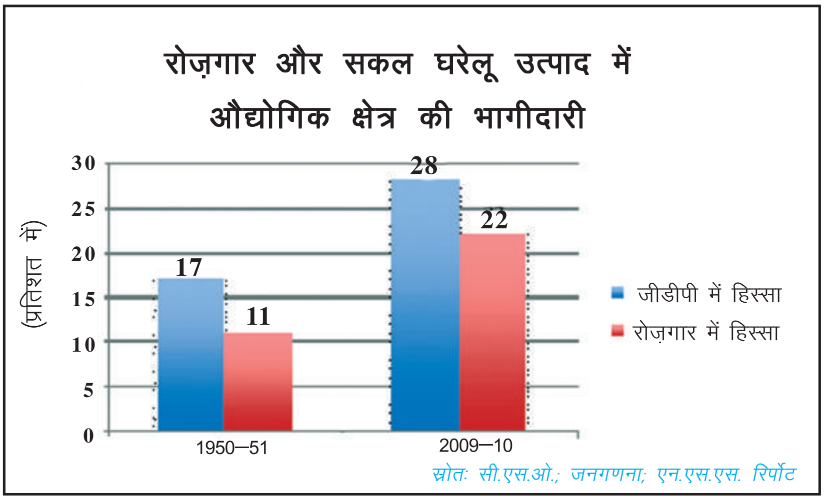

दण्ड आरेख 17.1 : रोज़गार और सकल घरेलू उत्पाद में औद्योगिक क्षेत्र की भागीदारी

दण्ड आरेख 17.1 को देखने से पता चलता है कि वर्ष 1950–51 से 2009–10 के 60 वर्षों के अन्तराल में जी.डी.पी. में उद्योगों का योगदान 17 प्रतिशत से बढ़कर 28 प्रतिशत हो गया। इसी अन्तराल में कुल रोज़गार में उद्योगों की भागीदारी 11 प्रतिशत से बढ़कर 22 प्रतिशत हो गई। इन 60 वर्षों के अन्तराल में उद्योगों [illegible] रूप नहीं हुई है।

आज़ादी के पश्चात् उद्योगों के विकास के लिए सरकार ने कई कदम उठाए। इसका प्रमुख उद्देश्य औद्योगिक विकास के साथ–साथ अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आत्मनिर्भरता को प्राप्त करना था। इसलिए नवीन उद्योगों की स्थापना के

चित्र 17.2 : आधारभूत उद्योग – भिलाई इस्पात कारखाना

लिए सरकार द्वारा आधारभूत उद्योगों जैसे– बिजली, खनिज, धातु, मशीनरी आदि पर जोर दिया गया। इनकी ज़रूरत सभी कारखानों को होती है। फलस्वरूप आधारभूत उद्योगों के सहारे अन्य उद्योग तेजी से स्थापित होने लगे इससे उत्पादन एवं रोज़गार में वृद्धि हुई।

आधारभूत उद्योगों की स्थापना करना एक चुनौती थी क्योंकि इसमें विशाल पूँजी के साथ–साथ लंबा समय लगता है। उदाहरण के लिए बिजली उत्पादन के लिए बिजली घर (Power Plant) की स्थापना में लगभग 5 से 10 वर्ष लग जाते हैं। इसलिए ये उद्योग सरकार द्वारा स्थापित किए गए। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद वस्तुओं के उत्पादन में आत्मनिर्भरता व रोज़गार में वृद्धि के लिए कारखानों की स्थापना का तेजी से प्रयास किया जाने लगा। वृहत या बड़े उद्योगों में लौह इस्पात, बिजली घर, खनिज आधारित संयंत्रों की स्थापना सरकारी क्षेत्रों में प्रारंभ की गई।

आधारभूत उद्योगों की स्थापना क्यों की जाती है?

भिलाई इस्पात कारखाना आधारभूत उद्योग का एक उदाहरण है, समझाइए।

सुधारों का दौर

उद्योगों के विकास के लिए सरकार ने कई नीतियाँ बनाई। उदाहरण के लिए कुछ क्षेत्रों में उत्पादन का अधिकार छोटे उत्पादकों को दे दिया गया जैसे– हैण्डलूम (हाथ करघा) से कपड़ा उत्पादन का कार्य।

बड़े उद्योगों को इस क्षेत्र में उत्पादन की अनुमति नहीं दी गई ताकि बड़े उद्योगों की प्रतिस्पर्धा से ये उद्योग बच सकें। साथ ही इन छोटे उद्योगों से अधिक लोगों को रोज़गार मिल सके। बड़े उद्योगों के लिए लाइसेंसिंग प्रणाली की व्यवस्था की गई और उनके उत्पादन की मात्रा निश्चित कर दी गई।

चित्र 17.3 : तार कारखाना

समय के साथ इस औद्योगिक नीति में कठिनाइयाँ आने लगीं। उद्योगों की स्थापना के लिए लाइसेंस प्रणाली से जटिलता बढ़ गई और कागज़ी कार्यवाही में बहुत लंबा समय लगने लगा। कुछ प्रभावशाली लोगों को आसानी से लाइसेंस प्राप्त हो जाते थे। इससे बड़े उद्योगपतियों को लाभ हुआ लेकिन छोटे उद्योगपतियों को समस्याओं का सामना करना पड़ा। कुछ क्षेत्रों में बड़े उद्योगपतियों का एकाधिकार स्थापित होने लगा और इन क्षेत्रों में प्रतिस्पर्धा नहीं रही। परिणामस्वरूप तकनीकी विकास के लिए प्रोत्साहन नहीं मिल पाया एवं उत्पादन की मात्रा भी सीमित हो गई। इस प्रकार प्रारंभिक दौर के दौरान उद्योग जगत में उत्पादन और रोज़गार शुरू में तेजी से बढ़ा। परन्तु इसके पश्चात यह प्रक्रिया कई समस्याओं से घिरने लगी और उद्योगों का विस्तार धीमा हो गया।

सरकार द्वारा संचालित कई फैक्ट्रियाँ घाटे में चलने लगीं और इन्हें चलाए रखने के लिए सरकार प्रति वर्ष सहायता राशि प्रदान करती रही। उम्मीद थी कि ये फैक्ट्रियाँ आत्मनिर्भर हो जाएँगी, लेकिन ऐसा नहीं हो सका। हमारी व्यवस्था में पूँजी की कमी व बेरोज़गारी की समस्या हावी होने लगी।

सन् 1990 के दशक में औद्योगिक नीति में परिवर्तन किया गया और समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया गया। इससे नए उद्योगों की स्थापना को बढ़ावा मिला और कुछ वस्तुओं के आयात–निर्यात में छूट दी गई। औद्योगिक नीति में बदलाव से अन्य देशों के निजी उद्योगों को भारत में आने का प्रोत्साहन मिला। लाईसेंसिंग प्रणाली समाप्त कर दी

गई और बड़े उद्योगों को कुछ सुरक्षित क्षेत्रों के लिए अनुमति दी गई। घाटे में चल रहे सरकारी कारखानों को सुधारने के लिए निजी लोगों को आमंत्रित किया गया। प्रतिस्पर्धा बढ़ाई गई, साथ ही सरकारी उद्योगों को परिवर्तन के लिए भी प्रोत्साहित किया गया जिससे उत्पादन में वृद्धि हो सके। उदारवादी तरीके से उद्योग, कल कारखाने, सूचना एवं संचार क्षेत्रों में निजी और विदेशी, निवेश आमंत्रित किया गया इससे नए उद्यमों की स्थापना का कार्य प्रारंभ हुआ।

उद्योगों के विस्तार के लिए सरकार द्वारा कौन–कौन–से कदम उठाए गए हैं?

लाईसेंसिंग प्रणाली के कारण कौन–कौन सी समस्याएँ सामने आईं?

उद्योग में रोजगार

चित्र 17.4 मोटर गाड़ी कारखाना

उद्योग में अत्यधिक मशीनीकरण के कारण कम श्रमिकों को रोजगार के अवसर मिले। उदाहरण के लिए–एक बड़े स्टील कारखानों में सन् 1991 से सन् 2005 तक उत्पादन तो 5 गुना बढ़ा पर कर्मचारियों की संख्या आधी हो गई। सन् 1991 में उत्पादन 10 लाख टन था एवं 85 हजार श्रमिक कार्यरत थे जबकि सन् 2005 में यही उत्पादन 50 लाख टन हो गया लेकिन कर्मचारियों की संख्या 44,000 कर दी गई। कई काम ठेका मज़दूरी पर दे दिए गए। इस प्रकार उद्योगों में रोज़गार की आशा के अनुरूप वृद्धि नहीं हुई जबकि उत्पादन बढ़ता गया।

स्टील का उपयोग कहाँ–कहाँ होता है? सूची बनाएँ।

आधारभूत उद्योगों की ज़रूरत क्यों है?

परियोजना कार्य– अपने आसपास के किसी भी कारखाने का उदाहरण लेते हुए एक रिपोर्ट लिखिए कि वहाँ पूँजी एवं उत्पादन की तकनीकी व्यवस्था कैसे की गई?

उद्योग के उपक्षेत्र

उत्पादन एवं रोज़गार दोनों को बढ़ावा कैसे मिल सकता है इसके लिए हमें उद्योग के उपक्षेत्रों को समझना होगा। उद्योग के अन्तर्गत विनिर्माण (वस्तुएँ बनाना),बिजली, गैस, जल आपूर्ति, खनन, निर्माण उद्योग आता है। विनिर्माण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें भौतिक और रासायनिक परिवर्तन से कच्चे माल को नए उत्पाद में बदला जाता है। विनिर्माण उद्योग क्षेत्र का सबसे महत्वपूर्ण उपक्षेत्र है। वर्ष 2009–10 में इस उपक्षेत्र की हिस्सेदारी जी.डी.पी. में 16 प्रतिशत है और यह लगभग 5 करोड़ लोगों को रोज़गार के अवसर प्रदान करता है।

विनिर्माण एक संतुलित अर्थव्यवस्था का आधार माना जाता है जो विकसित देशों के विकास का एक अहम कारण रहा है। ऐतिहासिक रूप से देखा जाए तो हर विकसित देश ने विनिर्माण की वृद्धि को बहुत महत्व दिया है। इसके कारण अन्य क्षेत्रों में मांग बढ़ जाती है। विनिर्माण से प्राप्त उत्पाद ने हमारे जीवन को कई प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की हैं। उपयोगी उत्पाद बनाने के लिए एक उचित तकनीक खोजना और उसे सभी के लिए सुलभ कराना इसका लक्ष्य है।

इस्पात का उत्पादन

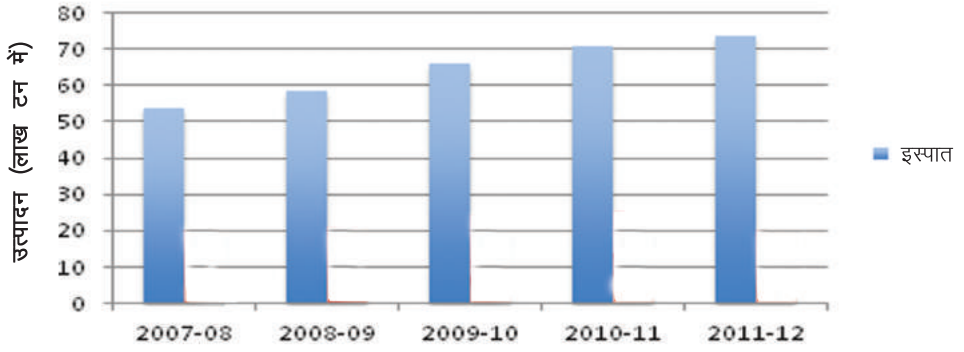

दण्ड आरेख 17.5 : इस्पात का उत्पादन

स्रोत – इस्पात मंत्रालय, वार्षिक रिपोर्ट 2012–13

अपने आस–पास से विनिर्माण के उत्पादों की एक सूची बनाइए।
कारखानों में उत्पाद कैसे बनाए जाते हैं? चर्चा कीजिए।
पर्यावरण एवं लोगों पर उद्योगों का क्या प्रभाव पड़ रहा है? चर्चा कीजिए।

खाद्य प्रसंस्करण, आधारभूत धातु और वस्त्र उद्योग भारत के विनिर्माण के प्रमुख उद्योग हैं। लौह इस्पात उद्योग एक आधारभूत उद्योग है। इस कारण इस्पात का उत्पादन किसी भी देश की विनिर्माण की क्षमता का संकेत माना जाता है। खाद्य प्रसंस्करण एवं वस्त्र उद्योग हमारे देश में रोजगार के अधिकतर अवसर प्रदान करते हैं। वस्त्र उद्योग विनिर्माण क्षेत्र का एक विशेष उद्योग है। यह उद्योग ही एक ऐसा विनिर्माण उद्योग है जिसमें शुरू से अंत तक भारत पूरी तरह से आत्मनिर्भर है।

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग में रोजगार की स्थिति निम्नांकित तालिका में दिखाई गई है–

क्र.	वर्ष	रोजगार
1.	2007–08	15 लाख
2.	2008–09	15.5 लाख
3.	2009–10	16 लाख
4.	2010–11	16.5 लाख
5.	2011–12	17.75 लाख

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग में रोज़गार

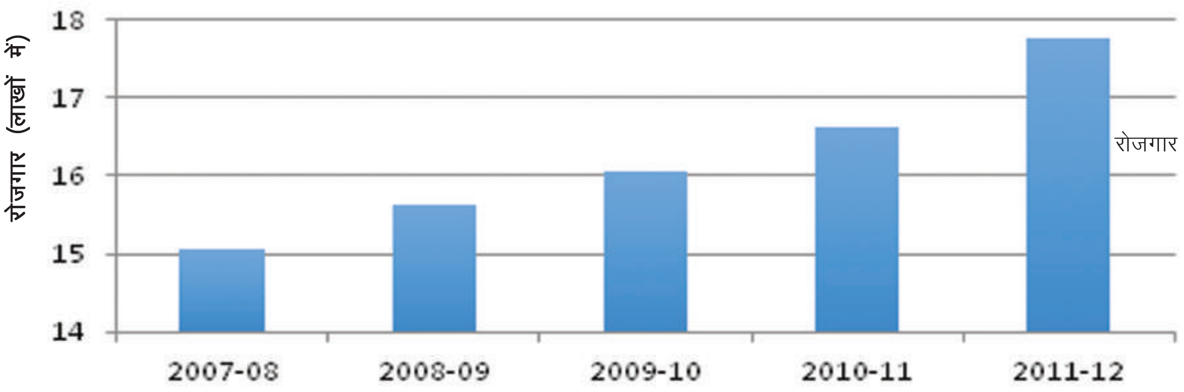

दण्ड आरेख 17.6 : खाद्य प्रसंस्करण उद्योग में रोज़गार

स्रोत: ए.एस.आई वार्षिक रिपोर्ट 2011–12

रोज़गार के नए अवसर कहाँ–कहाँ प्राप्त हो सकते हैं? चर्चा करें।

क्या आपके आस–पास खाद्य प्रसंस्करण उद्योग की संभावना है? चर्चा करें।

औद्योगिक परिदृश्य और चुनौतियाँ

उद्योगों द्वारा किसी भी वस्तु का उत्पादन करने में मशीनों, बिजली एवं विभिन्न रासायनिक पदार्थों का उपयोग किया जाता है। उत्पादन के समय कुछ उद्योग बहुत से हानिकारक पदार्थों को बाहर निकालते हैं। इससे आस–पास का वातावरण प्रदूषित होता है।

चित्र 17.7 : कारखाने से निकलता धुआं

कल–कारखानों से निकलने वाली धूल, धुओं और गंदे पानी के कारण भूमि, जल एवं वायु प्रदूषण को बढ़ावा मिलता है। इसका दुष्प्रभाव फसल एवं स्वास्थ्य पर पड़ता है जिसके कारण लोग अनेक बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। पर्यावरण को प्रदूषण से बचाने के लिए उद्योगों से निकलने वाले हानिकारक पदार्थों पर प्रतिबंध या उसके उपचार करने की व्यवस्था को लागू करना चाहिए। किन्तु कहीं नियमों की कमी है और बहुत जगह नियमों का पालन नहीं होता है।

आज भी उत्पादन पुरानी तकनीक के आधार पर ही किया जा रहा है जिससे उत्पादन में वृद्धि नहीं हो पा रही है। तकनीकी क्षेत्र में एक तरफ नई तकनीक को अपनाना है वहीं दूसरी ओर अनुसंधान एवं खोज को भी बढ़ावा देना चाहिए। इसके लिए सरकार और निजी उद्यमियों को प्रयास करना चाहिए।

किसी भी उद्योग की स्थापना के लिए भूमि की आवश्यकता होती है। उद्योगों की स्थापना से कृषि भूमि और वनों का रकबा घटते जा रहा है। इससे वनों और कृषि पर आश्रित लोगों का पलायन अन्य जगह पर होता है।

विस्थापन की इस प्रक्रिया में उनके पुनर्वास की व्यवस्था भी की जाती है, जो अत्यंत जटिल है। प्रकृति और प्रगति पर भी संतुलन अतिआवश्यक है। विनिर्माण क्षेत्र को बढ़ावा देना आज समय की मांग हो चुकी है। इससे उत्पादन बढ़ेगा। इसके लिए अधिक मात्रा में पूँजी की आवश्यकता होती है। इसी कारण इस क्षेत्र में विदेशी निवेशकों को भी आमंत्रित किया जाता है। इस्पात, सीमेंट, बिजली, वैकल्पिक ऊर्जा एवं सूचना प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देना सरकार की प्राथमिकता है, इससे आर्थिक विकास होता है।

वर्तमान समय में औद्योगिक क्षेत्रों में लगभग 70–80 प्रतिशत श्रमिक असंगठित क्षेत्रों में तथा 20–30 प्रतिशत संगठित क्षेत्रों में कार्यरत हैं। संगठित क्षेत्रों में श्रमिकों को जो सुरक्षा और सुविधाएँ प्रदान की जाती है वे असंगठित क्षेत्रों के श्रमिकों को उपलब्ध नहीं करायी जाती। इस क्षेत्र में श्रमिक अल्प वेतन और अधिक घंटे कार्य करने को विवश हो जाते हैं। ऐसे श्रमिकों को शोषण से बचाना एवं आवश्यक सुविधा उपलब्ध कराना भी किसी चुनौती से कम नहीं है।

शासकीय कार्यालय में काम करने वाला एक व्यक्ति निर्धारित समय तक कार्य करता है। वह नियमित रूप से प्रत्येक माह के अन्त में अपना वेतन पाता है। वेतन के अतिरिक्त वह सरकारी नियमों के तहत भविष्य निधि भी प्राप्त करता है। उसे चिकित्सीय और अन्य भत्ते भी मिलते हैं। वह रविवार को कार्यालय नहीं जाता है। इस दिन सवेतन अवकाश

होता है। उसने जब नौकरी आरम्भ किया था, तब उसे एक नियुक्ति–पत्र दिया गया था जिसमें नौकरी सम्बंधी नियम और शर्तों का उल्लेख किया गया था।

वहीं एक दूसरा व्यक्ति एक छोटे कारखाने में दैनिक मजदूरी करने वाला श्रमिक है। वह सुबह कारखाना पर जाता है और शाम 8 बजे तक काम करता है। उसे अपनी मजदूरी के अतिरिक्त अन्य कोई भत्ता (ओवरटाइम) नहीं मिलता है। नियोक्ता से कोई औपचारिक पत्र नहीं मिला है जिसमें कारखाने में नियुक्ति की शर्तों के बारे में बताया गया हो। उसका नियोक्ता उसे किसी भी समय काम से हटा सकता है।

पहला व्यक्ति संगठित क्षेत्र में कार्य करता है। संगठित क्षेत्र– में वे उद्यम अथवा कार्य स्थल आते हैं जहाँ रोजगार की अवधि नियमित होती है। इसलिए लोगों के पास सुनिश्चित काम होता है। वे क्षेत्र सरकार द्वारा पंजीकृत होते हैं और उन्हें सरकारी नियमों एवं विनियमों का अनुपालन करना होता है। इसे संगठित क्षेत्र कहते हैं क्योंकि इसकी कुछ औपचारिक प्रक्रिया एवं कार्यविधि है। संगठित क्षेत्र के कर्मचारियों को रोजगार–सुरक्षा के लाभ मिलते हैं। उनसे एक निश्चित समय तक ही काम करने की आशा की जाती है। यदि वे अधिक काम करते हैं तो नियोक्ता द्वारा उन्हें अतिरिक्त वेतन दिया जाता है। वे नियोक्ता से कई दूसरे लाभ भी प्राप्त करते हैं। ये लाभ क्या हैं? सवेतन छुट्टी, भविष्य निधि, सेवानुदान इत्यादि। वे चिकित्सीय लाभ पाने के हकदार होते हैं और उन्हें नियमों के अनुसार कारखाना मालिक को पेयजल और सुरक्षित कार्य जैसी सुविधाएँ को सुनिश्चित करना होता है। जब वे सेवानिवृत होते हैं तो वे पेंशन भी प्राप्त करते हैं।

इसके विपरीत, दूसरा व्यक्ति असंगठित क्षेत्र में काम करता है। असंगठित क्षेत्र– छोटी–छोटी और बिखरी इकाइयों, जो अधिकांशतः सरकारी नियंत्रण से बाहर होती हैं, से निर्मित होता है। इस क्षेत्र के नियम और विनियम तो होते हैं परन्तु उनका अनुपालन कमजोर रूप से होता है। वे कम वेतन वाले रोजगार हैं और प्रायः नियमित नहीं हैं। यहाँ अतिरिक्त समय में काम करने, सवेतन छुट्टी, अवकाश, बीमारी के कारण छुट्टी इत्यादि का कोई प्रावधान नहीं है। रोजगार सुरक्षित नहीं है। श्रमिकों को बिना किसी कारण काम से हटाया जा सकता है। कुछ ऋतुओं में जब काम कम होता है, तो लोगों को काम से छुट्टी भी दे दी जाती है। बहुत से लोग नियोक्ता की पसन्द पर निर्भर होते हैं। इस क्षेत्र में काफी संख्या में लोग अपने–अपने छोटे कार्यों, जैसे– सड़कों पर विक्रय अथवा मरम्मत कार्य में स्वतः नियोजित हैं। इसी प्रकार किसान अपने खेतों में काम करते हैं और जरूरत पड़ने पर मजदूरी पर श्रमिकों को लगाते हैं।

औद्योगिक प्रदूषण को कम करने के लिए कई तकनीकी उपाय हैं जिन्हें अक्सर लागू नहीं किया जाता है। शिक्षक की मदद से इनके बारे में पता कीजिए।

उद्योग के लिए भूमि की आवश्यकता पर गहरा विवाद क्यों है?

विनिर्माण को बढ़ावा देने से क्या लाभ हो सकता है?

असंगठित क्षेत्रों में कार्य करने वाले मज़दूरों के लिए सुरक्षा के क्या उपाय हो सकते हैं?

सेवा क्षेत्र (Service Sector)

विगत वर्षों की तुलना में वर्तमान में सेवा क्षेत्र का महत्व काफी बढ़ गया है। सकल घरेलू उत्पाद में भी इस क्षेत्र की महत्व को समझना आवश्यक है। सेवा क्षेत्र में नई तकनीक आ जाने से अनेक नवीन सेवाओं का प्रादुर्भाव हुआ है। मोबाइल, कम्प्यूटर एवं इंटरनेट सेवा के आने से किसी भी विषय पर जानकारी प्राप्त करना, सूचनाओं का आदान–प्रदान करना पहले की तुलना में बहुत ही कम समय में सुलभ हो सका है।

सेवा क्षेत्र एवं रोज़गार

वर्ष 1950–51 के सकल घरेलू उत्पाद में सेवा क्षेत्र का योगदान लगभग 30 प्रतिशत था जो कि वर्ष 2009–10 में बढ़कर 57 प्रतिशत हो गया। रोजगार में सेवा क्षेत्र की हिस्सेदारी उन्हीं वर्षों में क्रमशः 17 एवं 25 प्रतिशत थी। वर्ष 1950–51 की तुलना में वर्ष 2009–10 में सेवा क्षेत्र में हुए परिवर्तन को हम एक दण्ड आरेख से समझ सकते हैं।

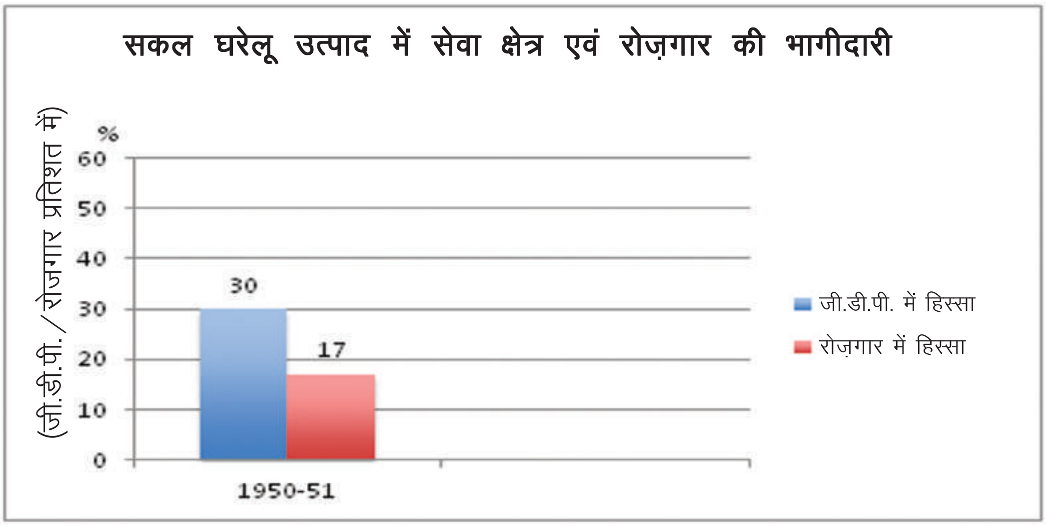

स्रोतः सी.एस.ओ.; जनगणना; एन.एस.एस. रिपोर्ट

दण्ड आरेख 17.8 : सकल घरेलू उत्पाद में सेवा क्षेत्र एवं रोज़गार की भागीदारी

1. **उपर्युक्त दंड आरेख 17.8 के समान वर्ष 2009–10 में सकल घरेलू उत्पाद में सेवा क्षेत्र एवं रोज़गार की भागीदारी का दंड आरेख बनाइए।**

2. **वर्ष 1950–51 की तुलना में वर्ष 2009–10 में सेवा क्षेत्र में उत्पादन का हिस्सा .... प्रतिशत बढ़ा।**

सेवा कार्य एवं उसके उपक्षेत्र

सेवा क्षेत्र में बदलाव अपेक्षा अनुरूप नहीं है क्योंकि जैसे–जैसे सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि हुई, उसी अनुपात में रोज़गार के अवसरों में वृद्धि नहीं हुई। लोगों को अपेक्षा थी कि रोजगार के अधिक अवसर मिलें, पर वे बदलाव साथ–साथ नहीं चल पाए जिसकी उम्मीद कर रहे थे। ऐसा क्यों? इसे समझने के लिए सेवा क्षेत्र के उपक्षेत्रों को देखते हैं।

सेवा कार्य के अन्तर्गत बहुत से कार्य आते हैं जिन्हें हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं।

1. **व्यापार, होटल एवं रेश्तराँ (रेस्टोरेंट), परिवहन, भंडारण और संचार।**
2. **बैंकिंग, बीमा एवं स्थायी संपदा।**
3. **सामुदायिक, सामाजिक एवं निजी सेवाएँ।**

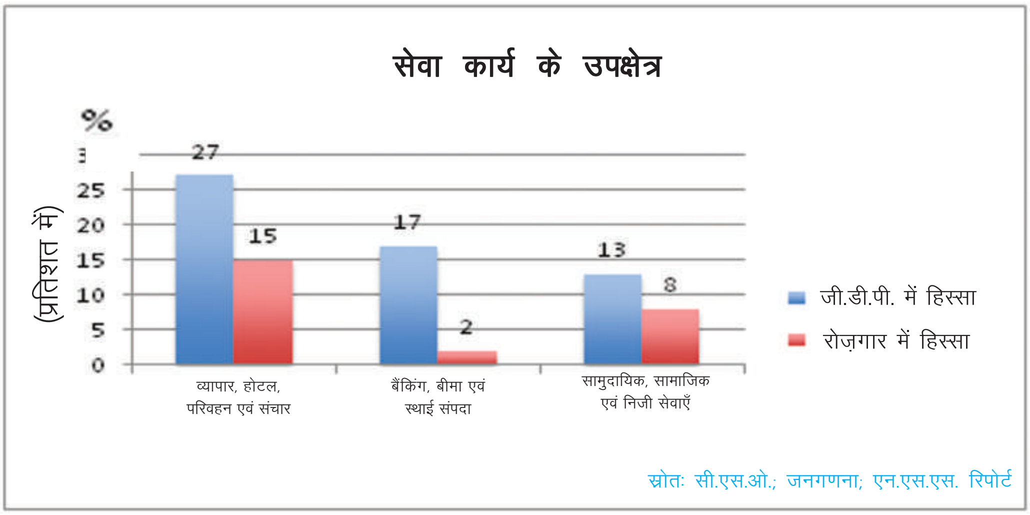

दण्ड आरेख 17.9 :सेवा कार्य के उपक्षेत्र

(1) व्यापार, होटल एवं रेश्तराँ तथा परिवहन, भंडारण और संचार

सकल घरेलू उत्पाद एवं रोज़गार में व्यापार, होटल एवं रेश्तराँ, परिवहन, भंडारण और संचार उपक्षेत्रों का सबसे अधिक योगदान है। इसके अंतर्गत किसी वस्तु का क्रय–विक्रय करना जैसे – कपड़े की खरीदी एवं ब्रिकी, नाश्ते एवं भोजन से सम्बंधित वस्तुओं का विक्रय, ठहरने के लिए लॉज की सेवा आदि शामिल है।

परिवहन, भंडारण और संचार भी सेवा क्षेत्र के उपक्षेत्र का अहम हिस्सा है। परिवहन के अंतर्गत वायु, रेल, सड़क एवं जल परिवहन सम्मिलित है। इसमें किसी भी वस्तु या व्यक्ति को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने का कार्य किया जाता है। इस उपक्षेत्र के अन्तर्गत छोटे–छोटे होटल, मेटाडोर, टेम्पो, परिवहन सेवाएँ तथा साग–सब्जी बेचने वाली दुकानें, पान ठेले तथा स्वरोज़गार आदि आते हैं।

इस उपक्षेत्र से लोगों को लगातार रोज़गार प्राप्त नहीं हो पाता। जैसे– रिक्शा, मेटाडोर, ट्रैक्टर आदि छोटी परिवहन सेवा में लोग कार्य पर लगे हुए दिखाई देते हैं परन्तु इन्हें हमेशा काम नहीं मिलता है। यहाँ कई कार्य ऐसे हैं जिसमें बहुत लोग लगे हुए हैं परंतु उन्हें कम वेतन मिलता है। इस उपक्षेत्र में कार्य करने वाले अधिकांश लोग असंगठित क्षेत्रों से होते हैं।

भंडारण, कृषि एवं उद्योग के लिए महत्वपूर्ण है। कृषि में भंडारण के अभाव में बहुत सारी वस्तुएँ उपभोग किए बिना नष्ट हो जाती हैं जिससे आर्थिक क्षति होती है।

संचार के अंतर्गत रेडियो, टेलीविज़न, मोबाइल, इंटरनेट एवं पत्र–पत्रिकाएँ आदि शामिल हैं। यह क्षेत्र सबसे तेज रफ्तार से बढ़ता हुआ उपक्षेत्र है। हमारे देश में मोबाइल की सेवा लेने वालों की संख्या 75–80 प्रतिशत और इंटरनेट उपयोग करने वालों की संख्या लगभग 20 प्रतिशत है।

उदाहरण के लिए गाँव का दुकानदार अपने कारोबार को मोबाइल के माध्यम (संपर्क) से चलाता है। वह शहर के दुकानों का प्रचलित मूल्य पता कर अपनी दुकान के लिए अपेक्षाकृत सस्ते मूल्यों पर खरीद्दारी करता है। संचार के इस साधन से उसे उचित मूल्य पर सामग्री प्राप्त हो जाती है। इस तरह से उसके धन एवं समय की बचत होती है।

सेवा के कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ लोगों को लगातार काम नहीं मिलता। समझाइए।

संचार साधनों के विकास से हमें कौन–कौन–सी सुविधाएँ प्राप्त होने लगी हैं?

परियोजना कार्य– आपके आस–पास दुकानों में काम करने वाले किसी मजदूर के आय–व्यय के बारे में जानकारी प्राप्त कर रिपोर्ट लिखें।

(2) बैंकिंग बीमा एवं स्थायी संपदा

इस क्षेत्र की सकल घरेलू उत्पाद में महत्वपूर्ण हिस्सेदारी है। इन सेवाओं के अन्तर्गत बैंकों, डाकघर, गैर बैंक वित्तीय कम्पनियों, जीवन बीमा, साधारण बीमा (फसल, वाहन आदि) और अचल सम्पत्ति कम्पनियों आदि की सेवाएँ सम्मिलित हैं। यह क्षेत्र सबसे तेज गति से बढ़ती हुई सेवाओं की श्रेणी में आता है। इसमें काम करने वाले लोग उच्च प्रशिक्षित कर्मचारी हैं और आधुनिक तकनीक का भरपूर इस्तेमाल करते हैं। इस कारण केवल 2 प्रतिशत लोगों को इस उपक्षेत्र में रोज़गार उपलब्ध है, परन्तु इनका उत्पादन में सहयोग 17 प्रतिशत है। इस तरह से बहुत कम लोगों का रोज़गार में योगदान है, परन्तु उत्पादन में वृद्धि अधिक है।

चित्र 17.10 बैंकिंग सेवाएँ

(3) सामुदायिक, सामाजिक एवं निजी सेवाएँ

लोक प्रशासन, रक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा व्यक्तिगत सेवाएँ जैसे–कपड़े सिलना, सैलून का काम एवं सफाई आदि की सेवाएँ इसके अन्तर्गत आती हैं। सरकारी नौकरियाँ भी इसी क्षेत्र में आती हैं।

परियोजना कार्य

आप अपने आस–पास की सामुदायिक, सामाजिक एवं निजी सेवाओं की सूची बनाइए।

चित्र 17.11 अचल संपत्ति कारोबार (रियल एस्टेट)

सेवा क्षेत्र का बदलता स्वरूप

तकनीकी क्षेत्र में हो रहे नवीन आविष्कारों से सेवा क्षेत्र का स्वरूप बदलता जा रहा है। इसका सबसे ज्यादा प्रभाव बैंकिंग, बीमा एवं बिजनेस सेवा में देखा जा सकता है। यही कारण है कि केवल 2 प्रतिशत लोग इस उपक्षेत्र में रोज़गार पाते हैं, परन्तु उनका योगदान सकल घरेलू उत्पादन में 17 प्रतिशत है। सन् 1990 के प्रारम्भ में संचार तकनीक में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ है। परिणामस्वरूप सूचना प्रौद्योगिकी पर आधारित कुछ नवीन सेवाएँ जैसे–कम्प्यूटर, इंटरनेट कैफे, ए. टी.एम., कॉल सेंटर, सॉफ्टवेयर कंपनी इत्यादि की सेवाएँ प्रारम्भ हो गई हैं। दशकों पूर्व बैंकों की सेवा मुख्यतः कर्मचारियों पर निर्भर थी, परन्तु सूचना प्रौद्योगिकी ने बैंकों की सेवाओं को कई गुना बढ़ाकर बैंकिंग सुविधा को घर–घर तक पहुँचा दिया है। आज ए.टी.एम. के माध्यम से रुपये जमा करना एवं निकालना, क्रेडिट कार्ड से ऋण प्राप्त करना, रुपयों को इलेक्ट्रॉनिक अन्तरण के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान भेजना आसान हो गया है।

आज वैश्विक सेवाएँ, जैसे– परामर्श, बातचीत, सूचना भेजना, परीक्षाओं के लिए आवेदन करना ये सभी कार्य सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से ही सम्भव हो पाए हैं। आज मोबाइल, कम्प्यूटर एवं इंटरनेट से किसी भी क्षेत्र की जानकारी तत्काल प्राप्त की जा सकती है।

बी.पी.ओ. का उपयोग करके सेवा क्षेत्र ने अपनी सीमा को और अधिक बढ़ा दिया है। जैसे एक कॉल सेंटर में कार्यरत कर्मचारी अमेरिका को विभिन्न सेवाएँ कम्प्यूटर इंटरनेट के माध्यम से देते हैं। अगर अमेरिका का निवासी अपने बैंक खाते या अस्पताल सम्बन्धी सूचना प्राप्त करना चाहता है, तो वह दिए गए नम्बर पर कॉल करता है। कॉल सेन्टर से व्यक्ति उनके कम्प्यूटर रिकार्ड को देख कर जवाब दे देता है। उसे इस कॉल सेन्टर के माध्यम से जवाब प्राप्त होता है। यही बी.पी.ओ. कहलाता है। कम्पनी अपनी लागत कम एवं लाभ अधिक करने के लिए ऐसी एजेंसी से सेवाएँ लेती है।

बी.पी.ओ. (बिजनेस प्रोसेस आउट सोर्सिंग) आज सेवा क्षेत्र में लोगों के रोज़गार के अवसर बढ़ा रहा है!

सेवा क्षेत्र में कम्प्यूटर और उनसे जुड़ी प्रौद्योगिकी का निर्यात कर भारत विश्व के अन्य देशों से बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा प्राप्त कर रहा है। पहले की तुलना में यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इससे हमें अन्य वस्तुओं को आयात करने का अवसर मिलता है।

सेवा क्षेत्र में चुनौतियाँ

इस क्षेत्र में काफी चुनौतियाँ हैं। सबसे बड़ी चुनौती है रोज़गार के अवसरों में वृद्धि करना। आज सेवा क्षेत्र का योगदान सकल घरेलू उत्पाद (G.D.P.) में 57 प्रतिशत है, वहीं रोजगार में इस क्षेत्र की सहभागिता 25 प्रतिशत है।

सेवा क्षेत्र के कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जिनका सकल घरेलू उत्पाद में योगदान तो अधिक है, परन्तु इससे बहुत ही कम लोगों को रोज़गार मिल पाता है जैसे– बैंकिंग एवं सॉफ्टवेयर की सेवाएँ। एक ओर इन सेवाओं के लिए उच्च प्रशिक्षित कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। दूसरी तरफ इसमें ऐसे उपक्षेत्र भी हैं जिनमें बहुत अधिक लोगों को रोज़गार

प्राप्त हुआ है, परन्तु जी.डी.पी. में इनका योगदान काफी कम है। जैसे– छोटे व्यापार व स्वरोज़गार में काम करने वालों की संख्या अधिक है और इनका उत्पादन में योगदान सीमित है। इससे सेवा क्षेत्र का दोहरा रूप दिखाई देता है।

संगठित क्षेत्र में रोज़गार के अवसर अपेक्षाकृत काफी कम हैं। वर्ष 2009–10 से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर संगठित क्षेत्र में कार्य करने वाले सेवा क्षेत्र के कर्मचारियों की संख्या लगभग 30 प्रतिशत है जबकि असंगठित क्षेत्र में कार्यरत कर्मचारियों की संख्या 70 प्रतिशत है।

सेवा क्षेत्र की एक और चुनौती है ठेकेदारी प्रथा। यह ज्यादातर असंगठित क्षेत्र में पायी जाती है। यह सेवा नियोजकों के लिए तो लाभदायी होती है, परन्तु श्रमिकों के लिए नहीं।

बहुत सी सेवाएँ कृषि एवं विनिर्माण से जुड़ी हुई हैं। जैसे–व्यापार एवं परिवहन की सेवाएँ। यदि कृषि एवं विनिर्माण उद्योगों का विस्तार होता है, तो इससे उत्पादन बढ़ेगा और व्यापार तथा परिवहन सेवाओं की माँग में भी वृद्धि होगी। साथ ही रोज़गार एवं सकल घरेलू उत्पाद (G.D.P.) भी बढ़ेगा। इस प्रकार हर एक क्षेत्र की वृद्धि दूसरे क्षेत्र की वृद्धि पर निर्भर करती है।

क्या आप ऐसे उदाहरण दे सकते हैं जहाँ सेवाओं में भी रोज़गार के अवसर बढ़े हैं?

सेवा क्षेत्र में आने वाले उपक्षेत्र कौन–कौन से हैं?

अभ्यास

1. सही विकल्प चुनकर लिखिए–

(अ) उद्योगों में मशीनों के बढ़ते प्रयोग से रोजगार के अवसरों में देखने को मिल रही है–

(क) वृद्धि (ख) कमी

(ग) अपरिवर्तन (घ) इनमें से कोई नहीं

(ब) एक आधारभूत उद्योग है–

(क) सूती वस्त्र उद्योग (ख) कागज उद्योग

(ग) लौह इस्पात उद्योग (घ) हाथ करघा उद्योग

(स) वर्तमान में सकल घरेलू उत्पाद में सबसे अधिक योगदान है–

(क) कृषि क्षेत्र (ख) उद्योग क्षेत्र

(ग) सेवा क्षेत्र (घ) इनमें से कोई नहीं

(द) रोजगार की अवधि नियमित होती है –

(क) संगठित क्षेत्र (ख) असंगठित क्षेत्र

(ग) संगठित एवं असंगठित क्षेत्र (घ) इनमें से कोई नहीं

2. नीचे लिखे पदों को संक्षिप्त में समझाइए–

1. संचार एवं उसके साधन
2. बैंकिंग एवं बीमा
3. इंटरनेट
4. उत्पादन में वृद्धि
5. विनिर्माण

6. भण्डारण
7. खाद्‌य प्रसंस्करण
8. सामुदायिक सेवाएँ
9. निजी सेवाएँ
10. वैश्विक सेवाएँ
11. स्थाई संपदा
12. सूचना प्रौद्योगिकी

3. हमारे देश में स्वतंत्रता के पश्चात आधारभूत उद्योगों की स्थापना पर जोर दिया गया। इसके कौन–कौन से कारण हैं?
4. बहुत सी सेवाएँ कृषि एवं विनिर्माण से जुड़ी हुई हैं। उदाहरण देकर समझाइए।
5. सेवा क्षेत्र में दोहरा रूप दिखाई देता है। इसे स्पष्ट समझाइए।
6. सन् 1990 के बाद औद्योगिक नीति में परिवर्तन की आवश्यकता क्यों हुई? समझाइए।
7. दण्ड आरेख को देखकर बताइए कि–

बिजली उत्पादन

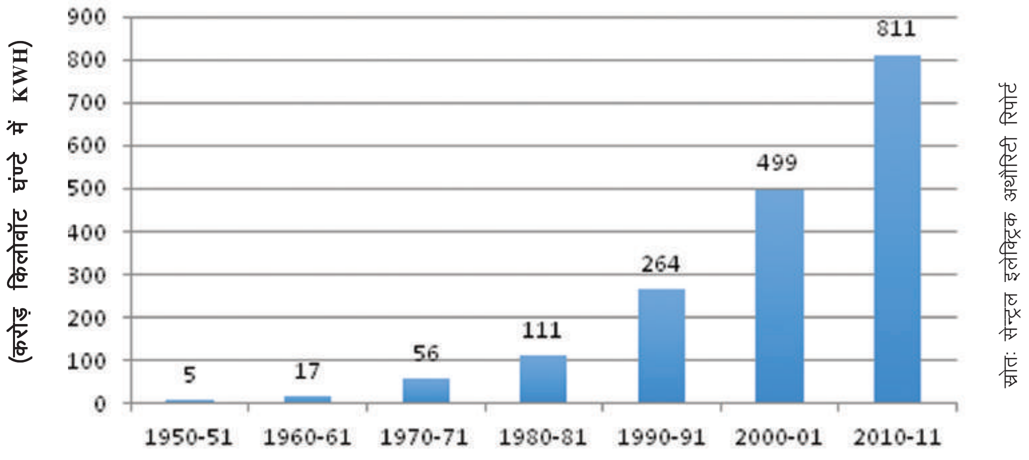

अ. बिजली उत्पादन में क्या परिवर्तन दिखाई दे रहा है?

ब. देश के आर्थिक विकास में इसका क्या योगदान है?

8. उद्योगों से पर्यावरण को हानि कैसे होती है? इसे समझाइए एवं इसके बचाव के उपाय बताइए।
9. क्या असंगठित क्षेत्र श्रमिकों की सामाजिक असुरक्षा को बढ़ावा देता है? इसका उत्तर असंगठित क्षेत्र में कार्यरत किसी एक श्रमिक के साक्षात्कार के आधार पर दीजिए।
10. पृष्ठ 249 पर खाद्‌य प्रसंस्करण में रोज़गार के दंड आरेख 17.6 के आंकड़ों को एक तालिका बनाकर प्रस्तुत कीजिए।
11. दण्ड आरेख 17.9 में दर्शाए गए सेवा कार्य के उपक्षेत्र के आंकड़ों को तालिका बनाकर प्रस्तुत कीजिए एवं इसकी व्याख्या कीजिए।

** Y8DLVV

18

उत्पादन कैसे होता है?

Y8HNU2

एक शहर का अध्ययन

भूमि, श्रम, पूँजी और उद्यमिता या साहस उत्पादन प्रक्रिया के ये चार प्रमुख अंग हैं। साथ ही ये आर्थिक अवधारणाएँ भी हैं जिनका प्रयोग यहाँ पर विशिष्ट अर्थ में किया गया है। सामान्य तौर पर श्रम का आशय शारीरिक मेहनत समझा जाता है परन्तु यहाँ श्रम से आशय उत्पादन की प्रक्रिया में किसी भी तरह के मानवीय योगदान से है, यह शारीरिक भी हो सकता है और मानसिक भी। उत्पादन के लिए इन चारों की जरूरत पड़ती है। इस अध्याय में हम इन चार आर्थिक अवधारणाओं को समझेंगे। इस पर भी बातचीत करेंगे कि इन कारकों के उपयोग से उत्पादन कैसे होता है? उत्पादन की प्रक्रिया में किस कारक को क्या मिलता है। ये इससे तय होता है कि जहाँ उत्पादन किया जा रहा है वहाँ की सामाजिक व्यवस्था कैसी है? श्रम करने वाले को कितना मिलता है? क्या यह उत्पादन अतिशेष और संग्रहण की ओर भी ले जाता है?

इसे हम रायपुर शहर के उदाहरण से समझेंगे, शिक्षकों और विद्यार्थियों से अपेक्षा है कि वे इसे स्थानीय स्तर पर चल रही उत्पादन की प्रक्रिया से जोड़कर देखें।

रायपुर – एक बढ़ता शहर

रायपुर, छत्तीसगढ़ राज्य की राजधानी और रायपुर ज़िले का मुख्यालय है। सन् 2000 में छत्तीसगढ़ के एक अलग राज्य बनने के बाद से यह छत्तीसगढ़ की राजधानी है। इसके बाद रायपुर तेजी से बढ़ा और सन् 2011 में भारत के महानगरों में शामिल हो गया।

राज्य के विभिन्न भागों में खनिज भंडार और वन संसाधनों की मौजूदगी ने इस शहर में औद्योगिक विकास को बढ़ावा दिया है। रायपुर शहर और उसके आसपास के इलाकों में स्टील और सीमेन्ट का उत्पादन करने वाले कई महत्वपूर्ण उद्योग हैं। रायपुर न केवल बिजली और स्टील का क्षेत्रीय केन्द्र है, बल्कि भारत के बड़े बाज़ारों में भी एक है। छत्तीसगढ़ का विशाल वन क्षेत्र रायपुर को वन उपज का एक प्रमुख व्यापार केन्द्र भी बनाता है। रायपुर भारत के मध्य–पूर्व क्षेत्र के एक

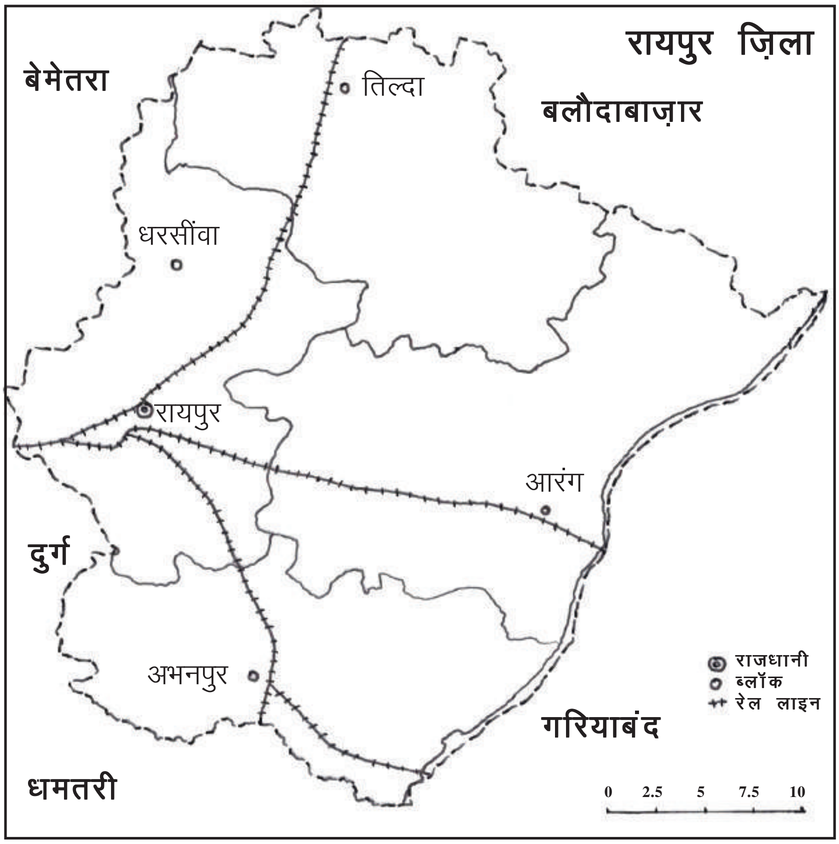

मानचित्र 18.1 : रायपुर ज़िला

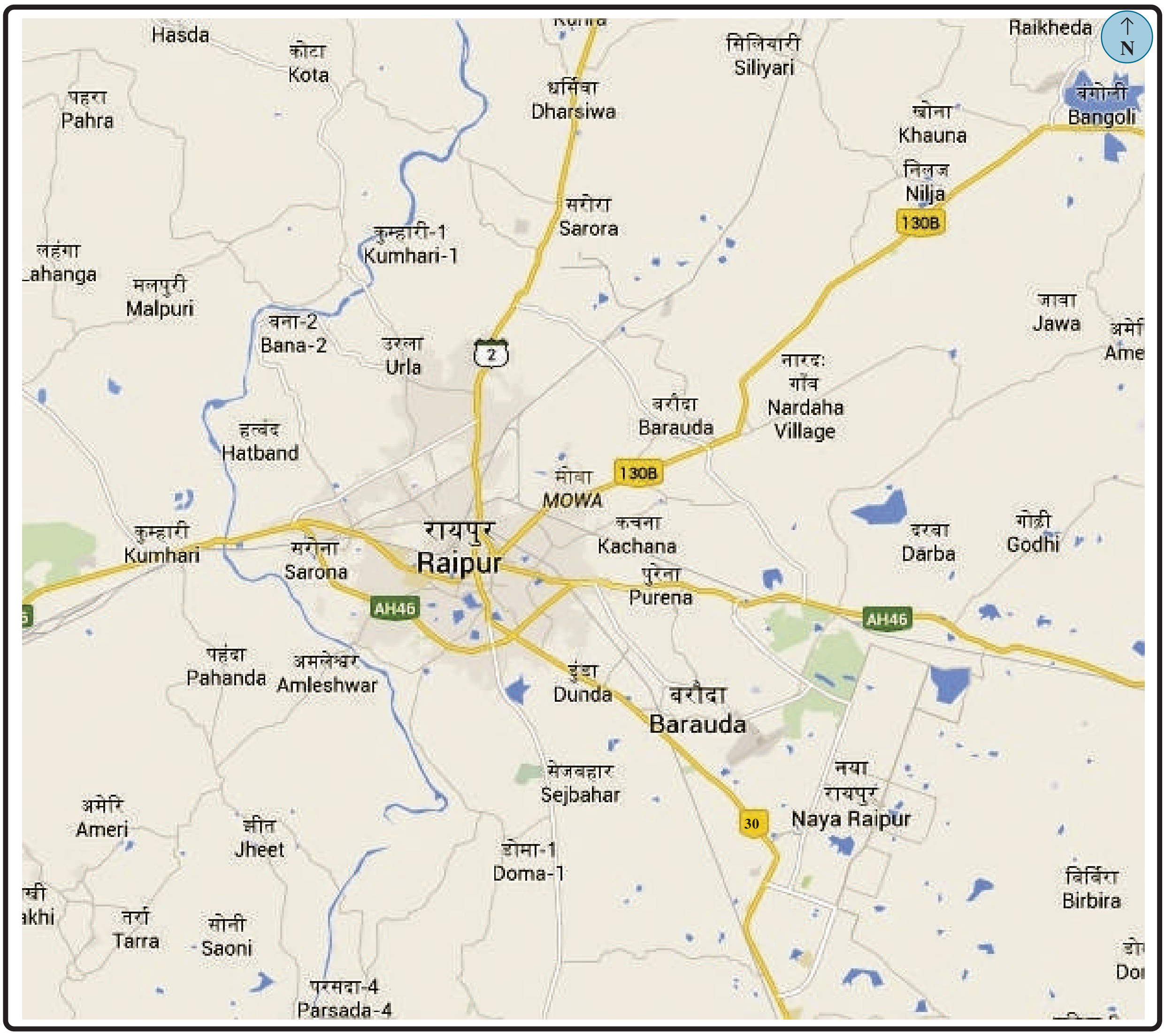

मानचित्र 18.2 : रायपुर और आस–पास के क्षेत्र

महत्वपूर्ण व्यावसायिक केन्द्र के रूप में विकसित हो चुका है। शहर का थोक व्यापार छत्तीसगढ़ राज्य के विभिन्न हिस्सों की ज़रूरतों के साथ इससे सटे पश्चिमी ओडिशा के ज़िलों की जरूरतों को भी पूरा करता है।

राष्ट्रीय एवं राजमार्गों के द्वारा भारत के प्रमुख शहरों से रायपुर पहुँचा जा सकता है। मुम्बई को कोलकाता से जोड़ने वाला राष्ट्रीय राजमार्ग क्रमांक 53 रायपुर से होकर गुजरता है। राष्ट्रीय राजमार्ग क्रमांक 30 के जरिए रायपुर विशाखापटनम से भी जुड़ा हुआ है। अन्य शहर, जैसे कि भोपाल, नई दिल्ली, मुम्बई, भुवनेश्वर और नागपुर भी सड़कों और रेलमार्ग द्वारा रायपुर से जुड़े हुए हैं।

पिछले 15 सालों के दौरान ग्रामीण इलाकों से बहुतायत लोग शहरों में मौजूद कारखानों व कार्यालयों में काम करने और कई प्रकार की शहरी नौकरियों के लिए रायपुर शहर और उसके आसपास के कस्बों और गाँवों की ओर आए हैं। भौगोलिक स्थिति, सड़क सुविधा और मूलभूत सुविधाएँ भी लोगों को रायपुर शहर की ओर आने के लिए प्रेरित करती हैं।

छत्तीसगढ़ के नक्शे में रायपुर की शहरी आबादी के चारों ओर उद्योग, बाजार तथा सामाजिक सेवाओं के केंद्र फैले हुए हैं। शहर के मानचित्र में उत्तर दिशा औद्योगिक क्षेत्र का केंद्र है, जहाँ छोटे, मझोले और बड़े उद्योगों की इकाइयाँ

कार्यरत हैं। यहाँ उद्योग को नियोजित रूप से स्थापित किया गया है। आज रायपुर में उरला, सिलतरा और भनपुरी जैसे क्षेत्रों में छोटे, मझोले और बड़े उद्यमों को देखा जा सकता है।

भूमि (Land)

रायपुर में भूमि का उपयोग

हम जानते हैं कि ग्रामीण इलाकों में भूमि मुख्य रूप से खेती के लिए इस्तेमाल की जाती है और लोग खेतों के आसपास गाँवों में रहते हैं। शहरों को ऐसी जगहों के रूप में पहचाना जाता है जहाँ खेतीबाड़ी से हटकर अन्य गतिविधियाँ, जैसे प्रमुख बाज़ार स्थान और व्यवसाय होते हैं, जो अनेक प्रकार की सेवाओं और सरकार के प्रशासनिक कार्यालयों के लिए स्थान उपलब्ध कराते हैं। भूमि का इस्तेमाल इमारतों, कारखानों, दुकानों, बाज़ार, स्कूल, अस्पताल, कार्यालयों आदि को स्थापित करने के लिए किया जाता है।

शहरी क्षेत्रों में रहने के लिए आवश्यक कई तरह की सेवाएँ जैसे कि सड़कें, पानी का वितरण, बिजली, बस यातायात के साधन आदि सरकार द्वारा उपलब्ध कराए जाते हैं। कुछ इलाकों में केवल सरकार ही सेवा प्रदान करने वाली होती है जबकि अन्य इलाकों में निजी कम्पनियाँ भी ये सेवाएँ प्रदान करती हैं।

कुछ सालों पहले राज्य सरकार ने भूमि के इस्तेमाल का ब्यौरा इकट्ठा किया और शहर में भूमि को इस्तेमाल किए जाने का एक वैकल्पिक रास्ता भी सुझाया। इसके अनुसार सरकार ने मनोरंजन के लिए भूमि की उपलब्धता को 3 प्रतिशत से बढ़ाकर 21 प्रतिशत करने का सुझाव दिया। (नगर एवं ग्राम निवेश रिपोर्ट 2013)

रायपुर शहर में भूमि का उपयोग

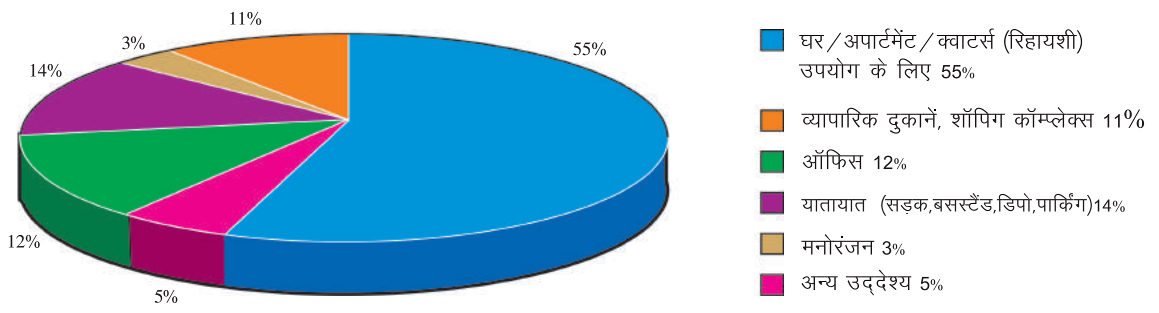

स्रोतः नया रायपुर विकास योजना 2013

वृत्त आरेख 18.1 : रायपुर शहर में भूमि का उपयोग

सरकार ने मनोरंजन के लिए जगह बढ़ाने का प्रस्ताव क्यों दिया है?

मानलें कि आप रायपुर शहर में रोज़गार के अवसर बढ़ाना चाहते हैं, इसमें किस तरह की योजना मददगार हो सकती है?

परियोजना कार्य– अपने मुहल्ले की भूमि के उपयोग का आकलन कर रिपोर्ट तैयार करें।

शहर में कुछ भवनों का उपयोग उनके मालिकों के द्वारा स्वयं के लिए किया जा रहा है जबकि अधिकांश को किराए पर दे दिया गया है। इन भवनों का किराया इलाकों और उपलब्ध सुविधाओं के अनुसार अलग–अलग है। लोग व्यवसाय करने के लिए दुकानें किराये पर लेते हैं। एक ओर शहरों के शॉपिंग कॉम्पलेक्स व मॉल तथा प्रमुख बाज़ार क्षेत्रों में दुकानों का किराया ज़्यादा होता है। वहीं दूसरी ओर ऐसे कई स्व–रोज़गार चलाने वाले लोग हैं जो कि गुमटी

चित्र 18.2 : बाज़ार का दृश्य

चित्र 18.3: ठेले पर सामान बेचते हुए

के जरिए अपना धंधा करते हैं। ये गुमटियाँ या तो खुद की होती हैं या किराए पर ली जाती हैं। कुछ ऐसे लोग भी हैं जो सड़क किनारे बैठकर सामान बेचते हैं। वे किराये पर दुकानें नहीं ले सकते। स्व–रोज़गार में लगे कई लोग अपना सामान बेचने के लिए ठेले का इस्तेमाल करते हैं। अपना धंधा करने के लिए दुकानों और सड़क किनारे स्थित जगहों के लिए लोगों में काफी होड़ होती है।

भाहर में जमीन का वितरण समान और सभी के अनुकूल नहीं होता। इसलिए भाहर के विकास की योजना बनाने में इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि सभी को रोजगार और आवास के लिए जमीन उपलब्ध हो सके।

श्रम (Labour)

जैसा कि हमने इस अध्याय में देखा कि भूमि आजीविका का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। यह न केवल वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के लिए आवश्यक है बल्कि रहने के लिए भी जरूरी है। अगर आपके पास खुद का मकान नहीं है तो आपका परिवार कहाँ निवास करेगा? हो सकता है कि आपके परिवार को किराये के घर में रहना पड़े। शहरों में रहने वाले कई परिवारों के लिए यह आम बात है। किराये के मकानों के लिए आपको अपनी

रायपुर में कम आय वाले परिवार

शहरी लोग कई तरह की बसाहटों में रहते हैं। रायपुर नगर निगम क्षेत्र में रहने वाले परिवारों का लगभग 40 प्रतिशत हिस्सा बस्तियों में रहता है। इनमें से लगभग आधे लोग बाहर से शहर में आए हैं।

सन् 2012 में रायपुर में यह पता लगाने के लिए एक अध्ययन किया गया कि रायपुर शहर की कम आय वाली बस्तियों में रहने वाले लोग शहर की ज़रूरतों में किस प्रकार योगदान करते हैं। वृत्त आरेख 18.4 को देखें। आप देखेंगे कि कम आय वाले परिवारों का एक बड़ा तबका सेवा व्यवसायों में लगा हुआ है, जैसे– घरेलू काम करने वाले, बोझा उठाने वाले मज़दूर, दुकानों और अन्य ऑफिसों में सहायक के रूप में काम करने वाले आदि।

अध्ययन के अनुसार, झुग्गी बस्तियों में रहने वाले लोग महीने में औसतन 6763 रुपए कमाते हैं। इनकी पूरी आमदनी खाने की सामग्री, जैसे गेहूं, तेल, सब्ज़ियाँ और किराना आदि पर खर्च हो जाती है। ये अचानक आने वाली जरूरतों के लिए बचत नहीं कर पाते जिसके कारण इन्हें उधार लेना पड़ता है।

रायपुर के कम आय वाले परिवारों का व्यवसाय आधारित वितरण

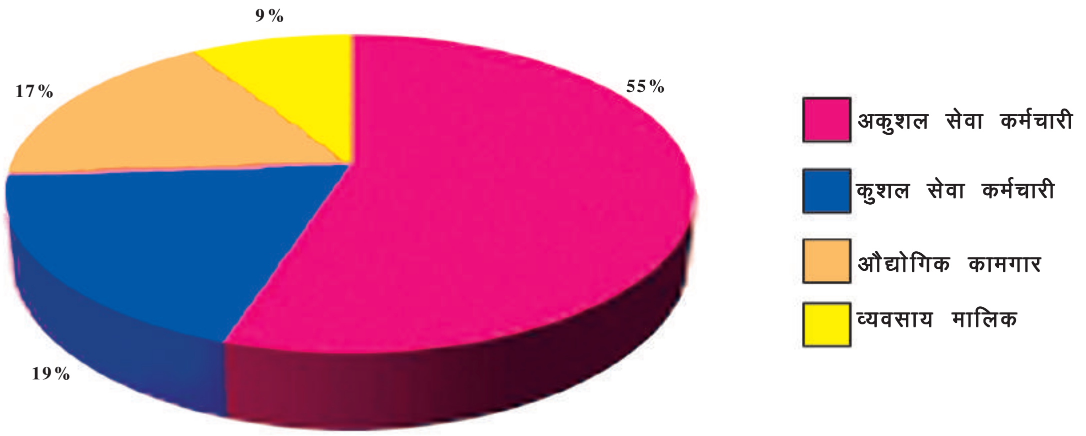

स्रोतः रायपुर स्टडी रिपोर्ट, 2014, पी.आर.आई.ए. दिल्ली.

वृत्त आरेख 18.4 : रायपुर के कम आय वाले परिवारों का व्यवसाय आधारित वितरण

आमदनी का एक हिस्सा किराये के रूप में खर्च करना होगा। रायपुर में झुग्गी बस्तियों में रहने वाले परिवारों का केवल 20 प्रतिशत हिस्सा ही पट्टे (राज्य सरकार द्वारा जारी किया गया एक कानूनी दस्तावेज़, जो भूमि के असली मालिक को जारी किया जाता है) पर मिली जमीन पर खुद के घरों में रहता है। अन्य नागरिकों की तरह, झुग्गी में रहने वाले लोगों को भी बुनियादी सुविधाओं, जैसे– पीने का पानी, साफ–सफाई, मल–निकासी, सार्वजनिक स्वास्थ्य केन्द्र और स्कूल की ज़रूरत होती है।

कम आय वाले परिवारों की आमदनी किस तरह बढ़ाई जा सकती है?

शहर में मजदूर – रायपुर का उदाहरण

हमने अभी उत्पादन के साधन के रूप में भूमि के महत्व को रायपुर शहर के सन्दर्भ में जाना।

किसी भी शहर के विकास के लिए भूमि के साथ बहुत से लोगों की जरूरत होती है जो कारखानों, दफ्तरों, दुकानों, संस्थाओं, स्कूलों या भवन निर्माण वाली जगहों पर काम कर सकें। रायपुर की कहानी भी कुछ अलग नहीं है। शहर में उद्योगों और निर्माण के काम के विकास ने लोगों को (छत्तीसगढ़ के अलग–अलग इलाकों से और दूसरे राज्यों से) रायपुर में बसने की ओर आकर्षित किया है। शहर की आबादी बढ़ने और आर्थिक गतिविधियों में आए विस्तार के कारण सेवा–वर्ग में भी बढ़त देखी जा सकती है। हाल के वर्षों में कारखानों या दूसरे सेवा–वर्ग के कामों में अन्य राज्यों से भी लोग आए हैं। छत्तीसगढ़ के भी कई इलाकों से लोग कारखाने या निर्माण के काम के लिए रायपुर आए हैं। रायपुर शहर के कामकाजी लोगों में आसपास के ग्रामीण इलाकों से रोज़ आने–जाने वाले लोगों की संख्या भी काफी अहम है। शहर के लगभग 25 किलोमीटर के दायरे से लोग बड़ी संख्या में रोज सुबह साइकिल एवं अन्य साधनों से काम के लिए शहर आते हैं।

दिहाड़ी मजदूर, अर्द्धकुशल और कुशल जैसे– बिजली सुधारने वाले, मोटर–मशीन सुधारने वाले, लोहे आदि का सामान बनाने वाले (फेब्रिकेटर)इत्यादि कामगारों के कुछ प्रकार हैं जिनमें कुछ लोग कारखानों में लगे हुए हैं। इसी तरह मजदूर, राज–मिस्त्री, बढ़ई, प्लम्बर, बिजली का काम करने वाले लोग भवन–निर्माण के अंतर्गत काम करते हैं। सुपरवाइज़र, मैनेजर, एकाउंटेंट आदि कामगारों का एक दूसरा वर्ग है जो इन दोनों ही काम के क्षेत्रों में कार्य करते हैं। सेवा–वर्ग के काम का दायरा काफी फैला हुआ है और इस पर निर्भर करता है कि लोग किस–किस तरह की सेवाओं में लगे हुए हैं। आम तौर पर सेवा वर्ग के कामों में थोक और खुदरा व्यापार, ट्रांसपोर्ट और भण्डारण, होटल और भोजनालय चलाना, मोबाइल और इंटरनेट सेवाएँ, वित्तीय और बीमा जैसे काम, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाएँ, मनोरंजन तथा प्रशासनिक और दूसरी मद्दगार सेवाएँ गिनी जाती हैं।

चित्र 18.5 : काम की तलाश में शहर की ओर प्रवास

शहरों में आने वाले पारम्परिक प्रवासी ग्रामीण इलाकों में रहने वाले वे लोग हैं जो बड़े पैमाने पर भूमिहीन हैं। परन्तु खेती में गिरावट, विस्थापन और ग्रामीण इलाकों में रोज़गार के साधनों की कमी की वजह से अब अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ी जाति और दूसरे समुदायों के लोग भी शहरों की ओर आकर्षित हो रहे हैं। *एक सर्वे के अनुसार रायपुर शहर की स्लम बस्तियों में रहने वाले लोगों में 49 प्रतिशत अनुसूचित जातियों के हैं। अन्य पिछड़ी जातियाँ 26 प्रतिशत, अल्प–संख्यक 13 प्रतिशत, अनुसूचित जनजातियाँ 9 प्रतिशत और बाकी 2 प्रतिशत हैं।* **(स्रोतः रायपुर रिपोर्ट, 2014, पी.आर.आई.ए. दिल्ली)**

वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार रायपुर शहर की नगरीय सीमा (म्युनिसिपल एरिया) में लगभग 3.76 लाख कामकाजी लोग थे। इनमें वे कुछ लोग जो वेतन या मजदूरी के लिए काम करते थे और कुछ अपना खुद का काम–धन्धा करते थे।

भारत के शहरी क्षेत्रों में रोजगार का लगभग 40 प्रतिशत स्व–रोज़गार है, लगभग 50 प्रतिशत वैतनिक काम है और बाकी अस्थायी दिहाड़ी मजदूरी। रायपुर की स्थिति भी शायद इससे बहुत अलग नहीं है।

आइए हम इन वर्गों के श्रमिकों की स्थिति को उदाहरणों के माध्यम से समझने का प्रयास करते हैं।

चित्र 18.6 : पड़ाव पर काम की तलाश में जमा लोग

स्वरोजगार प्राप्त श्रमिक (Self Employed Labour)

इसका उदाहरण है सब्जी विक्रेता जो प्रतिदिन सब्जियों को थोक बाजार से खरीदकर शहरों में घूम–घूम कर बेचते हैं। वे किसी नियोक्ता के कर्मचारी न होकर स्वरोजगार में नियोजित हैं। सब्जियों के विक्रय से हुए मुनाफे से उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। सब्जी के धंधे में उनकी आय सुनिश्चित नहीं है। वे कार्य करने के लिए सुरक्षा की परिधि जैसे दुर्घटना बीमा, भविष्य निधि आदि कई लाभों से वंचित रहते हैं।

अकुशल श्रम (Unskilled Labour)

शहरों के चावड़ी बाजारों में छोटे–छोटे काम जैसे मजदूरी, पुताई, मरम्मत आदि काम करने वाले लोग अकुशल श्रमिकों की श्रेणी में आते हैं। इनमें अधिकांश ग्रामीण पृष्ठभूमि से आते हैं। इनके भी रोजगार के अवसर सुनिश्चित नहीं होते इसकी वजह से इनकी आय भी अनिश्चित रहती है। हमारे प्रदेश में इनकी संख्या अधिक है।

अपने शहर में किसी पड़ाव (जहाँ मज़दूर काम की तलाश में जमा होते हैं) पर जाकर अकुशल श्रमिकों से बातें कर पता करें–

पड़ाव पर प्रतिदिन कितने लोग आते हैं?
इनमें महिलाएँ कितने प्रतिशत होती हैं?
पड़ाव पर आने वाले कुल लोगों में से कितनों को हर रोज काम मिल पाता है?

कुशल श्रम (Skilled Labour)

कुशल श्रम में विशेष तरह की व्यावसायिक योग्यता प्राप्त व्यक्ति जैसे वकील, डॉक्टर, अध्यापक, इंजीनियर, तकनीकी योग्यता संपन्न व्यावसायी आदि सम्मिलित होते हैं। संगठित क्षेत्र में कार्यरत कर्मचारियों को व्यवस्थित कार्य परिसर एवं अन्य सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। उनकी सहायता के लिए अन्य सहायक भी उपलब्ध होते हैं।

अब हम एक कुशल श्रमिक की कल्पना करें जो किसी बड़े कारखाने में चार्टर्ड एकाउंटेंट हैं। उसे कारखाने में एक कार्यालय और सहायता के लिए अधीनस्थ कर्मचारी प्राप्त हैं। वे प्रत्येक महीने एक सुनिश्चित वेतन और अन्य लाभ प्राप्त करते हैं। वेतन की प्राप्ति के बाद वे आय का निश्चित भाग व्यय करते हैं और बचे हुए भाग की बचत करते हैं। इसी बचत से वे भविष्य की योजनाओं पर व्यय का प्रबंधन करते हैं। चार्टर्ड एकाउंटेंट बनने के पूर्व उसे एक मानक शैक्षणिक योग्यता प्राप्त करनी पड़ी और स्कूल, कॉलेज की पढ़ाई के बाद भी व्यावसायिक अध्ययन करने के बाद ही वे एक कुशल व्यावसायिक (श्रमिक) बन पाए।

दी गई तालिका में रायपुर के एक इलाके में मज़दूरों को दी जाने वाली प्रचलित मज़दूरी दर दर्शाई गई है।

रोज़गार के प्रकार	मज़दूरी दर (प्रति दिन/सप्ताह/महीना)
कारखाना मजदूर (नियमित)	रू. 7000 से रू. 15000 प्रतिमाह (अर्द्धकुशल और कुशल कामगार)
कारखाना मजदूर (दिहाड़ी)	रू. 150 से रू. 200 प्रतिदिन (अकुशल मजदूर) रू. 300 से रू. 400 प्रतिदिन (कुशल मजदूर)
किराने की दुकान में मजदूर	रू. 100 से रू. 150
सब्ज़ी की दुकान पर मज़दूर	रु. 50 से रु. 100 प्रतिदिन
घरेलू मज़दूर (पूर्ण कालिक)	रु. 1500 से रु. 4000 प्रतिमाह
होटल में कार्यरत	रु. 200 से रु. 300 प्रतिदिन
ट्रांसपोर्ट कामगार (वाहन चालक)	रु. 5000 से रु. 10000 प्रतिमाह
दफ्तर के अस्थायी कर्मचारी	रु. 3000 से रु. 7000 प्रतिमाह
मकान निर्माण में लगे मज़दूर	रु. 150 प्रतिदिन (महिलाएँ) रु. 250 प्रतिदिन (पुरुष)

सरकार कुछ व्यवसायों के लिए मालिकों द्वारा दी जाने वाली मज़दूरी को निश्चित कर देती है। भारतीय कानूनों के अनुसार कोई भी नियोक्ता जब किसी को काम पर लगाता है तो उन्हें नीचे दी गई तालिका के अनुसार मज़दूरी देनी होती है। मज़दूरी की ये दरें सन 2014–15 की हैं, जो रायपुर समेत पूरे छत्तीसगढ़ राज्य में भी लागू है।

परियोजना कार्य–

स्वरोज़गार और वैतनिक रोज़गार की तुलना कीजिए और उनके बीच असमानताओं को बताइए।

कौशल बढ़ाने के लिए किस तरह के व्यवसायिक प्रशिक्षण उपलब्ध कराने की ज़रूरत होगी ताकि ज़्यादा लोगों को कुशलता आधारित काम मिल सके?

अलग–अलग व्यवसायों में मिलने वाली मज़दूरी में अन्तर क्यों होता है?

शहर में मकान निर्माण में लगे मज़दूरों को मिलने वाली मज़दूरी में महिलाओं और पुरुषों में फर्क किया जाता है। क्या आप इस विचार से सहमत हैं? क्यों व कैसे?

अपने गाँव/शहर में प्रचलित मज़दूरी के आँकड़े इकट्ठा करें। उन आँकड़ों की तुलना ऊपर दिए गए तालिका के आधार पर करें।

मजदूरी की दर/प्रतिदिन

रोज़गार के प्रकार	अकुशल	अर्द्धकुशल	कुशल
कृषि या खेतीबाड़ी	149	—	—
निर्माणात्मक औद्योगिक काम, कपड़ा मिल, धान मिल, दाल मिल, आटा चक्की, आरा मशीन	214	222	233
ट्रांसपोर्ट या छापाखाना (प्रेस)	212	219	229
होटल, दुकान और अन्य व्यावसायिक उपक्रम	212	219	229

(स्रोतः श्रम आयुक्त, न्यूनतम वेतन अधिनियम छत्तीसगढ़)

सरकार द्वारा निर्धारित की गई मज़दूरी की दरें और रायपुर शहर में मज़दूरों को असल में मिलने वाली मज़दूरी के दरों में अन्तर बताएँ।

सरकार मज़दूरी की न्यूनतम दर क्यों तय करती है? कक्षा में चर्चा कीजिए।

उत्पादन की व्यवस्था

जैसा कि प्रारंभ में कहा गया है कि उत्पादन की प्रक्रिया के लिए चार कारकों की आवश्यकता है। अभी तक हमने भूमि और श्रम की बात की है। हमने कई उदाहरणों से समझने की कोशिश की है कि इसकी व्यवस्था कैसे की जाती है।

उत्पादन के लिए भूमि और प्राकृतिक संसाधनों जैसे– पानी, खनिज आदि की पहली आवश्यकता होती है। दूसरी आवश्यकता श्रमिकों या कामगारों की होती है, ये वे लोग हैं जो श्रम करते हैं। कुछ उत्पादन गतिविधियों में उच्च प्रशिक्षित और शिक्षित कामगारों की आवश्यकता होती है जो दिए गए कामों को कर सकें। अन्य गतिविधियों में उन कामगारों की आवश्यकता होती है जो हाथों से काम कर सकें। प्रत्येक कामगार उत्पादन के लिए आवश्यक श्रम उपलब्ध कराता है। यहाँ श्रम से आशय केवल हाथों से किए जाने वाले श्रम से नहीं है।

आम बोलचाल की भाषा से अलग यहाँ श्रम का तात्पर्य है उत्पादन में लगने वाला हर तरह का मानवीय प्रयास, जिसके लिए मजदूरी या वेतन दिया जाता है और कामगार व मालिक का एक संबंध बनता है।

ऊपर हम दो साधनों (कारकों) भूमि और श्रम की चर्चा कर चुके हैं। तीसरा साधन (कारक) है पूँजी।

पूँजी (Capital)

पूँजी दो प्रकार की होती है। भौतिक या स्थायी पूँजी तथा कामकाजी या अस्थायी पूँजी।

भौतिक या स्थायी पूँजी के अन्तर्गत उपकरण, मशीनें, बिल्डिंग आदि आते हैं। उपकरणों और मशीनों की श्रृंखला में प्लम्बर, बिजली सुधारने वालों और मिस्त्रियों द्वारा उपयोग किए जाने वाले साधारण उपकरणों, सब्ज़ी बेचने वाले का हाथ ठेला, सड़क किनारे सेलून चलाने वाले के लिए हज़ामत के औजार से लेकर कारखानों में उपयोग में आने वाले जटिल उपकरण जैसे, टर्बाइन, बॉयलर, फर्नेस, कम्प्यूटर द्वारा संचालित होने वाली ऑटोमैटिक मशीनें शामिल हैं। ये उपकरण उत्पादन प्रक्रिया में खर्च हो जाने वाले नहीं होते बल्कि ये सालों–साल वस्तुओं के उत्पादन के काम में सहायक होते हैं। उन्हें कुछ मरम्मत और दुरुस्तीकरण की आवश्यकता होती है ताकि वे उपयोगी बने रहें और साल दर साल उपयोग में लाए जाते रहें। इन्हें **स्थायी पूँजी** (fixed capital) अथवा भौतिक पूँजी कहा जाता है।

कामकाजी या अस्थायी पूँजी – उत्पादन चक्र को पूरा करने के लिए कच्चे माल और वित्त की आवश्यकता होती है। इसमें कारखानों में उपयोग में आने वाले विभिन्न प्रकार के कच्चे माल शामिल है– मसलन टोकरी बुनने वाले कारीगर द्वारा उपयोग किया जाने वाला बाँस, निर्माण आदि में उपयोग में आने वाली ईंटें, लोहे के सरिये, रेत और सीमेंट। उत्पादन की प्रक्रिया में कच्चा माल उपयोग होकर खर्च हो जाता है। कुछ धन की आवश्यकता श्रमिकों या कामगारों को मजदूरी भुगतान करने के लिए होती है। उत्पादन को पूरा करने में कुछ समय लगता है और इन वस्तुओं या सेवाओं को बाज़ार में बेचने की व्यवस्था भी करनी होती है। इसके बाद ही धन उत्पादन चक्र में वापस आता है।

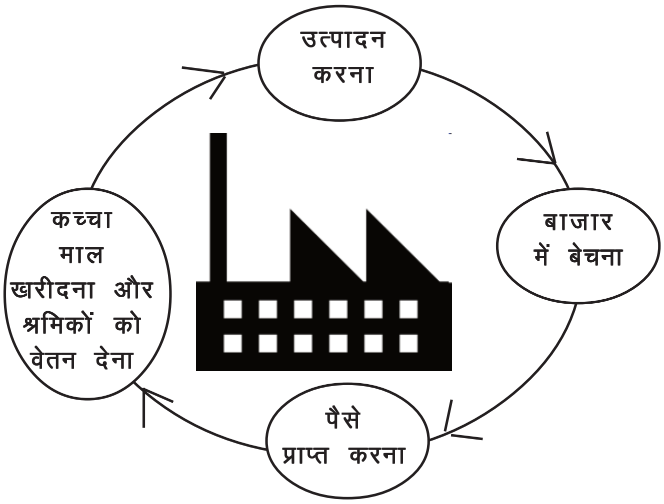

चित्र 18.7 : उत्पादन चक्र

कच्चे माल और वित्त की यह आवश्यकता उत्पादन को सुनिश्चित करती है इसलिए इसे कामकाजी पूँजी कहा जाता है। यह उत्पादन प्रक्रिया को शुरू करने के लिए ज़रूरी है ताकि प्रत्येक चक्र से होने वाली बिक्री से अगले उत्पादन चक्र के लिए वित्त उपलब्ध हो सके। यह भौतिक पूँजी से अलग है क्योंकि यह उत्पादन चक्र में उपयोग/खर्च हो जाती है और दोबारा चक्र शुरु करने के लिए खरीदनी पड़ती है।

स्थायी और कामकाजी पूँजी की व्यवस्था करना

किसी उत्पादन चक्र को चलाने के लिए भौतिक और कामकाजी – दोनों ही तरह की पूँजी आवश्यक है। लोग इनकी व्यवस्था अपनी जमापूँजी से या स्वामित्व वाली भूमि या बिल्डिंग का उपयोग करके कर सकते हैं। पूँजी जुटाने के लिए बैंकों या अन्य वित्तीय स्रोतों का सहारा भी ले सकते हैं। जब बैंकों या साहूकारों से उधार लिया जाता है तो तय की गई दर से ब्याज देना पड़ता है।

अलग–अलग स्रोतों की ब्याज दर भिन्न–भिन्न होती है। बैंकों द्वारा वसूली जाने वाली ब्याज दर प्रति वर्ष 11 प्रतिशत

चित्र 18.8 : ऑफिस

से 18 प्रतिशत के बीच होती है। साहूकारों और थोक विक्रेताओं जैसे अनौपचारिक स्रोतों का लोग ज्यादा उपयोग करते हैं परन्तु इनके द्वारा अधिक ब्याज दर वसूला जाता है। इन स्त्रोतों की ब्याज दरें न्यूनतम 30 प्रतिशत प्रतिवर्ष से 200 प्रतिशत प्रतिवर्ष तक हो सकती हैं।

लोग उधार लेने के लिए विविध औपचारिक स्रोतों जैसे बैंक, सहकारिता, स्वयं सहायता समूहों का उपयोग करते हैं। बहुत कम आमदनी वाले परिवार बड़े पैमाने पर साहूकारों और थोक विक्रेताओं जैसे अनौपचारिक स्रोतों पर निर्भर रहते हैं। कभी–कभी वे दोस्तों या रिश्तेदारों से भी उधार ले लेते हैं। इन्हें औपचारिक स्रोतों से ऋण उपलब्ध करवाना ज़रूरी है।

उद्यमिता (Entrepreneurship)

भूमि, श्रमिक और पूँजी को अर्थपूर्ण तरीके से उपयोग करने की क्षमता, उत्पादन प्रक्रिया का ज्ञान और विश्वास उत्पादन के लिए आवश्यक हैं। यह ज्ञान भौतिक पूँजी के मालिक या उनके द्वारा नियुक्त मैनेजर उपलब्ध कराते हैं। मालिकों को बाज़ार का जोखिम भी उठाना पड़ता है, अर्थात् उत्पादित वस्तुओं या सेवाओं के लिए पर्याप्त खरीददार मिल सकेंगे या नहीं। हमारे समाज में अधिकांश वस्तुएँ या सेवाएँ बाज़ार में बिक्री के लिए उत्पादित होती हैं। उत्पादन में समय लगता है। इस समय अन्तराल में वस्तु की मांग में परिवर्तन हो सकता है। इस परिवर्तन से होने वाली जोखिम को उठाने का कार्य साहसी करता है। ये उद्यमी छोटे दुकानदार या बड़े कारखानों के मालिक हो सकते हैं या कोई कम्पनी चलाने वाले जिसके तरह–तरह के कारोबार हों। लोग उनकी वस्तुएँ या सेवाएँ खरीदते हैं। उनको मुनाफा अथवा नुकसान भी हो सकता है।

आज किसी भी कारोबार में लगे लोग कई तरह की बाधाओं, समस्याओं से जूझने के बाद ही आय प्राप्त करते हैं। उत्पादन कार्य करने के पूर्व उसके लिए संसाधन (भूमि, श्रम, पूँजी) की व्यवस्था करने वाले व्यक्ति को (उद्यमी या ''साहस'') कहा जाता है।

''जैन कुम और उनका वाट्स–एप्प''

अविभाजित सोवियत रूस में एक छोटे से गाँव में जन्मे जैन कुम गरीबी और अभाव के बीच बड़े हुए। इनके घर में बिजली के कनेक्शन के लिए पैसे तक नहीं थे। कुम की माँ बच्चों की देख–भाल करने का काम करती थी। कुम दुकानों में झाड़ू–पोंछा का काम करते और दिन–रात इस उधेड़–बुन में लगे रहते कि अपने व्यवसाय को कैसे चालू करें?

18 साल की उम्र में कुम ने इसी दुकान में काम करते हुए कम्प्यूटर नेटवर्किंग की किताब पढ़कर पूरी नेटवर्किंग ही

सीख डाली। इसके बाद सैन जोन्स स्टेट युनिवर्सिटी में सेक्योरिटी टेस्टर के तौर पर काम किया। इस बीच ब्रायन एक्टन (कम्प्यूटर इंजीनियर) से मिलना उनकी जिन्दगी का अहम पड़ाव बना। कुम को याहू में इन्फ्रास्ट्रक्चर इन्जीनियर की नौकरी मिल गई। यहाँ जिन्दगी में कुछ करने की उनकी उमंग को जैसे पर लग गए। कुम ने सन् 2007 में याहू की नौकरी छोड़कर एक आई फोन खरीदा। वे घंटों मैसेजिंग का तरीका खोजते। एक दिन उन्हें एक एप्लीकेशन का आईडिया मिला और लगा कि पूरी दुनिया को सिंगल प्लेटफॉर्म पर लाया जाए, जिससे लोग सूचना का आदान–प्रदान आसानी से कर सकें। कुम कोडिंग और डिकोडिंग में सैकड़ों बार असफल हुए तब कहीं जाकर वाट्स–एप्प बनाने में कामयाबी मिली। कुम की इस जिद पर पूँजी (पैसे) जिम गोएट्स नामक व्यक्ति ने लगाई। कुछ ही दिनों में यह ऐप्लीकेशन मोबाइल की दुनिया का नम्बर–1 ऐप्लीकेशन बन गया।

चित्र 18.11 जैन कुम

एक राईस मिल का बनना

राजेन्द्र नाम का एक छोटा व्यापारी कई सालों से अनाज का व्यापार कर रहा था। उसने व्यापार बढ़ाने हेतु राईस मिल खोलने का विचार किया। उसके पास भूमि स्वयं की थी पर अन्य जरूरतों के लिए राजेन्द्र को पूँजी की आवश्यकता थी। अतः उसने स्थाई पूँजी जैसे भवन, मशीन, फर्नीचर आदि खरीदने के लिए बैंक से ऋण लिया।

कामकाजी पूँजी जैसे शुरुआती खर्च, वेतन, बिजली बिल, मजदूरी आदि हेतु स्वयं धन लगाया। राजेन्द्र को सरकारी योजना के अनुसार लघु उद्योग के प्रोत्साहन हेतु प्रशासकीय मदद एवं छूट भी प्राप्त हुई।

मिल में 20–30 मजदूर काम करते हैं। जिसमें 2–3 महिलाएँ हैं। ज्यादातर कर्मचारी अस्थाई हैं, इन्हें प्रतिदिन या साप्ताहिक मजदूरी मिलती है। कुछ स्थाई कर्मचारियों को मासिक वेतन के साथ–साथ कर्मचारी बीमा की सुविधा भी प्राप्त है।

मिल में अत्याधुनिक मशीन होने के कारण साल भर उत्पादन चलते रहता है। यहाँ पर प्रमुख रूप से शासन द्वारा देय धान से चावल तैयार कर वापस शासन के गोदामों में भेज दिया जाता है। धान से चावल तैयार करने का भुगतान शासन द्वारा लगभग प्रतिमाह कर दिया जाता है। शासन द्वारा छूट भी दी गई है कि सूखे या अन्य कारणों से धान उपलब्ध नहीं कराने की दशा में मिल मालिक बाजार से धान क्रय कर अपने नुकसान की भरपाई कर सकता है। इस प्रोत्साहन के कारण राजेन्द्र ने साहस जुटाकर मिल लगाए।

एक चाय–नाश्ते की दुकान

रायपुर के एक व्यस्त इलाके में रमेश चाय–नाश्ते की दुकान चलाता है। उसने यह जानकारी दी है कि वह चाय की दुकान कैसे चला रहा है।

रमेश ने स्थायी पूँजी (बरतन, गैस सिलेंडर, सामग्री रखने के लिए लकड़ी का स्टॉल) पर व्यय के लिए 10000 रुपए की राशि अपने रिश्तेदार से उधार ली और उसे ब्याज दिया।

तालिका– रमेश के दुकान की मासिक आय–व्यय/विवरण

आमदनी

प्रतिदिन चाय और नाश्ते की बिक्री = 2000 रुपए

महीने भर में चाय और नाश्ते की बिक्री = 26 दिन के 52000 रुपए प्रति माह

व्यय की मदें	व्यय राशि
भूमि का किराया	3000 रु
कच्चे माल, दूध, बेसन, तेल आदि पर व्यय	24000 रु
सहायक का वेतन	4000 रु
बिजली शुल्क	1000 रु
कर्ज पर ब्याज	200 रु
अन्य मरम्मत आदि व्यय	800 रु
कुल योग	**33000 रु**

दुकान मालिक के पास शेष बचे रूपए = 52000–33000 = 19000 रुपए।

चूँकि यह स्व–रोज़गार है, उसे इसी पैसे से अपने परिवार का गुज़ारा करना होता है। इसके लिए उसे 16000 रुपए प्रतिमाह की आवश्यकता है। वह महीने में 3000 रुपए की बचत या लाभ अर्जित करता है। इस बचत की राशि से वह भविष्य में अपने दुकान को बढ़ाना चाहता है।

इन उदाहरणों में स्थायी पूँजी और कामकाजी पूँजी की पहचान कीजिए।

परियोजना कार्य– एक व्यवसायी से चर्चा कर उसके व्यवसाय के पीछे छिपे प्रेरक और चुनौतीपूर्ण कारकों पर एक रिपोर्ट तैयार कीजिए।

सारांश

किसी भी उत्पादन प्रक्रिया के लिए भूमि, श्रमिक और पूँजी लगती है जिसकी व्यवस्था कर उद्यमी वस्तुओं और सेवाओं को उत्पादित करता है। भूमि और प्राकृतिक संसाधनों की जरूरतों को या तो निजी व्यवस्था से पूरा किया जाता है या सरकार द्वारा उपलब्धता कराई जाती है। श्रम में शारीरिक और मानसिक सभी प्रकार की श्रम शामिल है। उत्पादन की प्रक्रिया में मालिक और कामगार का रिश्ता बनता है। इसमें श्रमिकों को जो सुविधाएँ मिलती हैं, उनमें बहुत अन्तर है। संगठित क्षेत्र के श्रमिकों को स्थायी काम, वेतन के अलावा अन्य सुविधाएँ आदि भी मिलती हैं जबकि असंगठित क्षेत्र के श्रमिक इससे वंचित रहते हैं। उत्पादन के लिए पूँजी की आवश्यकता होती है, इसमें हमने भौतिक पूँजी और कामकाजी पूँजी में अन्तर समझा। हमने अलग–अलग उदाहरणों के माध्यम से उद्यमिता को भी समझा।

रायपुर में कई तरह की उत्पादन गतिविधियाँ होती हैं। एक तरफ स्टील और अन्य धातु बनाने वाले बड़े कारखाने हैं जो रायपुर और दूसरे शहरों को माल भेजते हैं। इन्होंने बड़ी मशीनें स्थापित की हैं और ये अधिकांश असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों को काम पर लगाते हैं और थोड़े से उच्च तकनीकी श्रमिकों को भी नियमित नौकरी पर रखते हैं। ये शहर के बाहरी इलाके या रिहायशी इलाकों से कुछ दूरी पर स्थित हैं। हमने यह भी गौर किया कि रायपुर तेज़ी से विविध सेवाओं – कृषि और वन उपज का केन्द्र, निर्मित वस्तुओं के लिए थोक बाज़ार तथा शैक्षणिक सेवाएँ उपलब्ध करवाने वाला शहर भी बन गया है।

अभ्यास

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

(i) रायपुर शहर और उसके आस–पास .... और .... का उत्पादन करने वाले कई महत्वपूर्ण उद्योग हैं।

(ii) व्यवसायिक योग्यता प्राप्त श्रमिकों को .... श्रमिक कहते हैं।

(iii) मुम्बई को कोलकाता से जोड़ने वाला राष्ट्रीय राजमार्ग क्रमांक 6 .... से होकर गुजराता है।

(iv) मशीनें, बिल्डिंग आदि .... पूँजी के अन्तर्गत आते हैं।

(v) संसाधन की व्यवस्था करना .... कहलाता है।

(vi) शारीरिक और मानसिक सभी प्रकार की मेहनत को .... कहते हैं।

(vii) .... को चलाने के लिए भौतिक और कामकाजी पूँजी आवश्यक है।

2. इनमें से भिन्न का चयन करें–

(i) दुर्ग, बलौदाबाजार, आरंग, राजनांदगाँव।

(ii) भूमि, श्रम, सीमेन्ट, पूँजी।

(iii) मशीन, भवन, प्लान्ट, कच्चा माल।

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें–

1. ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में भूमि उपयोग की तुलना कीजिए।
2. अपने कर्मचारियों को आवासीय सुविधाएँ उपलब्ध करवाना सरकार का दायित्व है। क्या आप इस कथन से सहमत हैं? समझाइए।
3. सरकार के लिए श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करना क्यों जरूरी है?
4. स्थायी पूँजी किस प्रकार कामकाजी पूँजी से भिन्न है?
5. ऋण की सुविधा सब लोगों की पहुँच में क्यों नहीं है?
6. किसी भी बिल्डिंग के किराये को कौन से कारक प्रभावित करते हैं?

सन्दर्भ – NCERT कक्षा 9वीं अर्थशास्त्र की पाठयपुस्तक

Y8HHXI

**

संदर्भ मानचित्र

मानचित्र – 1

70°0'0"E
80°0'0"E
90°0'0"E
30°0'0"N
20°0'0"N
10°0'0"N
भारत
राजनैतिक मानचित्र
उत्तर
ताजिकिस्तान
अफ़गानिस्तान
पाकिस्तान
चीन
नेपाल
भूटान
म्यांमार
जम्मू और कश्मीर
श्रीनगर
हिमाचल प्रदेश
शिमला
पंजाब
उत्तराखण्ड
हरियाणा
नई दिल्ली
दिल्ली
राजस्थान
जयपुर
उत्तर प्रदेश
लखनऊ
बिहार
पटना
सिक्किम
अरुणाचल प्रदेश
ईटानगर
असम
मेघालय
नागालैंड
कोहिमा
मणिपुर
इम्फाल
त्रिपुरा
अगरतला
आइज़ोल
मिज़ोरम
गुजरात
गांधीनगर
मध्य प्रदेश
भोपाल
झारखंड
रांची
पश्चिम बंगाल
कोलकाता
छत्तीसगढ़
रायपुर
ओडिशा
भुवनेश्वर
दमन और दीव
सिलवासा
दादरा और नगर हवेली
मुंबई
महाराष्ट्र
तेलंगाना
हैदराबाद
गोवा
पणजी
आंध्र प्रदेश
अमरावती
कर्नाटक
बंगलौर
चेन्नई
पुदुचेरी
पॉण्डिचेरी
तमिलनाडु
केरल
तिरुवनंतपुरम
कवरत्ती
लक्षद्वीप
(भारत)
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
श्रीलंका
हिंद
महासागर
पोर्ट ब्लेयर
अंडमान और
निकोबार द्वीप समूह
(भारत)
संकेत
देश की राजधानी
प्रदेश की राजधानी
अंतरराष्ट्रीय सीमा
प्रदेश की सीमा
0 125 250 500 750 1,000
किलोमीटर

मानचित्र – 2

भारत
प्राकृतिक मानचित्र
उत्तर
ताजिकिस्तान
अफ़गानिस्तान
पाकिस्तान
चीन
नेपाल
भूटान
बांग्लादेश
म्यांमार
श्रीलंका
कराकोरम दर्रा
पीर पंजाल श्रेणी
जास्कर श्रेणी
कैलाश पर्वत
नंदा देवी
धौलागिरी
एवरेस्ट
झेलम नदी
चिनाव नदी
रावी नदी
सतलज नदी
सिन्धु नदी
यमुना नदी
गंगा नदी
घाघरा नदी
गोमती नदी
कोसी नदी
गंगा नदी
डाफला पहाड़ी
ब्रह्मपुत्र नदी
पटकाई पहाड़ी
गारो पहाड़ी
खासी पहाड़ी
जयन्तिया पहाड़ी
नागा पहाड़ी
लूनी नदी
अरावली श्रेणी
चम्बल नदी
बेतवा नदी
सोन नदी
छोटा नागपुर का पठार
विंध्याचल श्रेणी
नर्मदा नदी
सतपुड़ा श्रेणी
माही नदी
ताप्ती नदी
महानदी
बस्तर का पठार
गोदावरी नदी
कृष्णा नदी
नीलगिरी पहाड़ी
कावेरी नदी
बंगाल की खाड़ी
अरब सागर
हिंद महासागर
लक्षद्वीप (भारत)
अंडमान और निकोबार द्वीप समूह (भारत)
संकेत
चोटियाँ
नदी
अंतरराष्ट्रीय सीमा
प्रदेश की सीमा
ऊँचाई (मीटर)
≥ 6,001
5,001 - 6,000
4,001 - 5,000
3,001 - 4,000
1,501 - 3,000
601 - 1,500
301 - 600
101 - 300
< 100
0 125 250 500 750 1,000
किलोमीटर
70°0'0"E
80°0'0"E
90°0'0"E
30°0'0"N
20°0'0"N
10°0'0"N

मानचित्र – 3

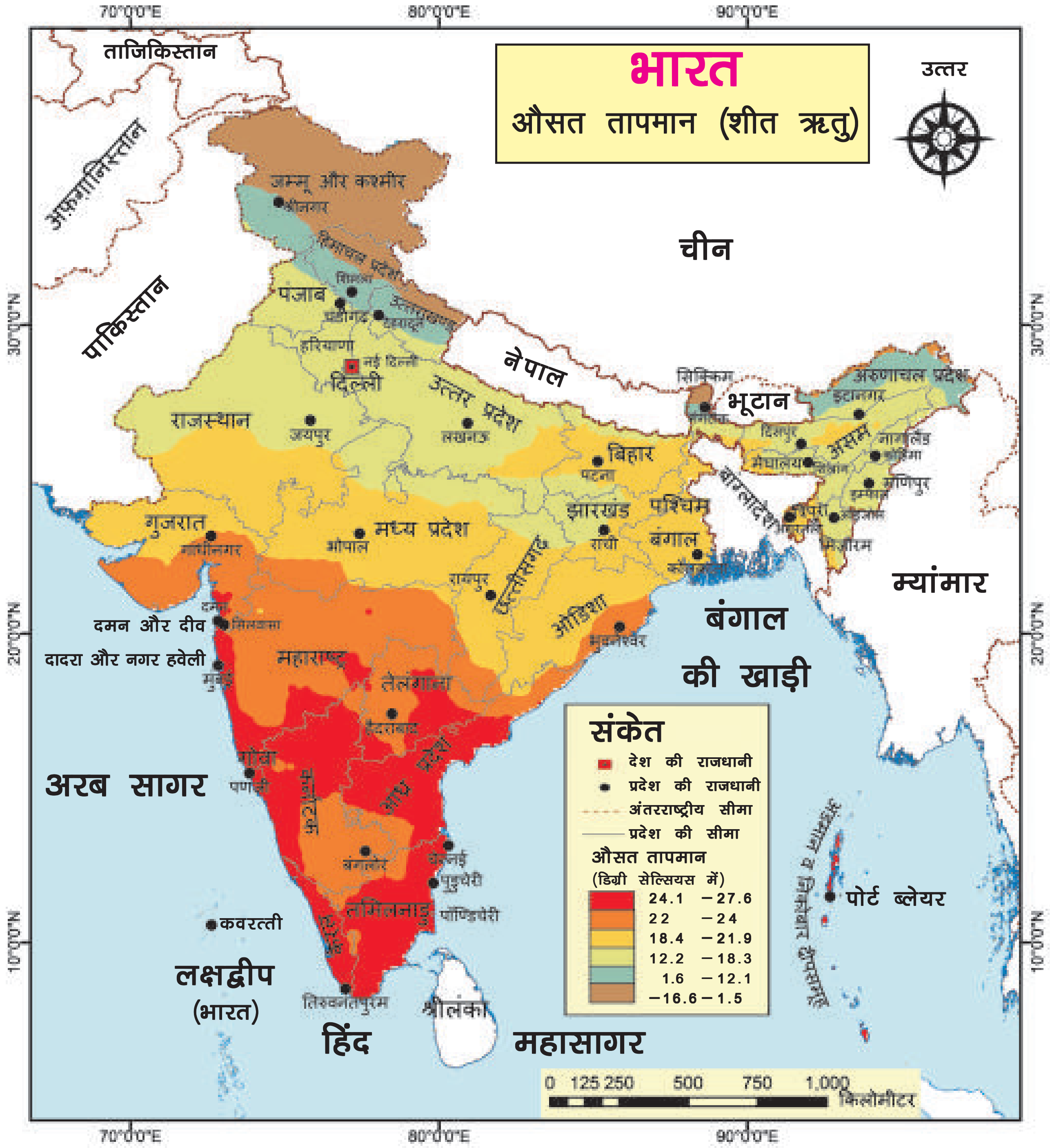
70°0'0"E
80°0'0"E
90°0'0"E
30°0'0"N
20°0'0"N
10°0'0"N
भारत
औसत तापमान (शीत ऋतु)
उत्तर
ताजिकिस्तान
अफ़गानिस्तान
पाकिस्तान
चीन
नेपाल
भूटान
म्यांमार
बंगाल की खाड़ी
अरब सागर
हिंद महासागर
श्रीलंका
लक्षद्वीप
(भारत)
कवरत्ती
पोर्ट ब्लेयर
जम्मू और कश्मीर
पंजाब
हरियाणा
नई दिल्ली
दिल्ली
राजस्थान
जयपुर
उत्तर प्रदेश
लखनऊ
बिहार
पटना
झारखंड
राँची
पश्चिम बंगाल
गुजरात
गांधीनगर
मध्य प्रदेश
भोपाल
रायपुर
ओडिशा
भुवनेश्वर
दमन और दीव
दादरा और नगर हवेली
महाराष्ट्र
तेलंगाना
हैदराबाद
पणजी
बंगलौर
चेन्नई
पुदुचेरी
पॉण्डिचेरी
तमिलनाडु
तिरुवनंतपुरम
सिक्किम
अरुणाचल प्रदेश
ईटानगर
असम
मेघालय
नागालैंड
कोहिमा
मणिपुर
इम्फाल
त्रिपुरा
मिज़ोरम
संकेत
देश की राजधानी
प्रदेश की राजधानी
अंतरराष्ट्रीय सीमा
प्रदेश की सीमा
औसत तापमान
(डिग्री सेल्सियस में)
24.1 – 27.6
22 – 24
18.4 – 21.9
12.2 – 18.3
1.6 – 12.1
–16.6 – 1.5
0 125 250 500 750 1,000
किलोमीटर

मानचित्र – 4

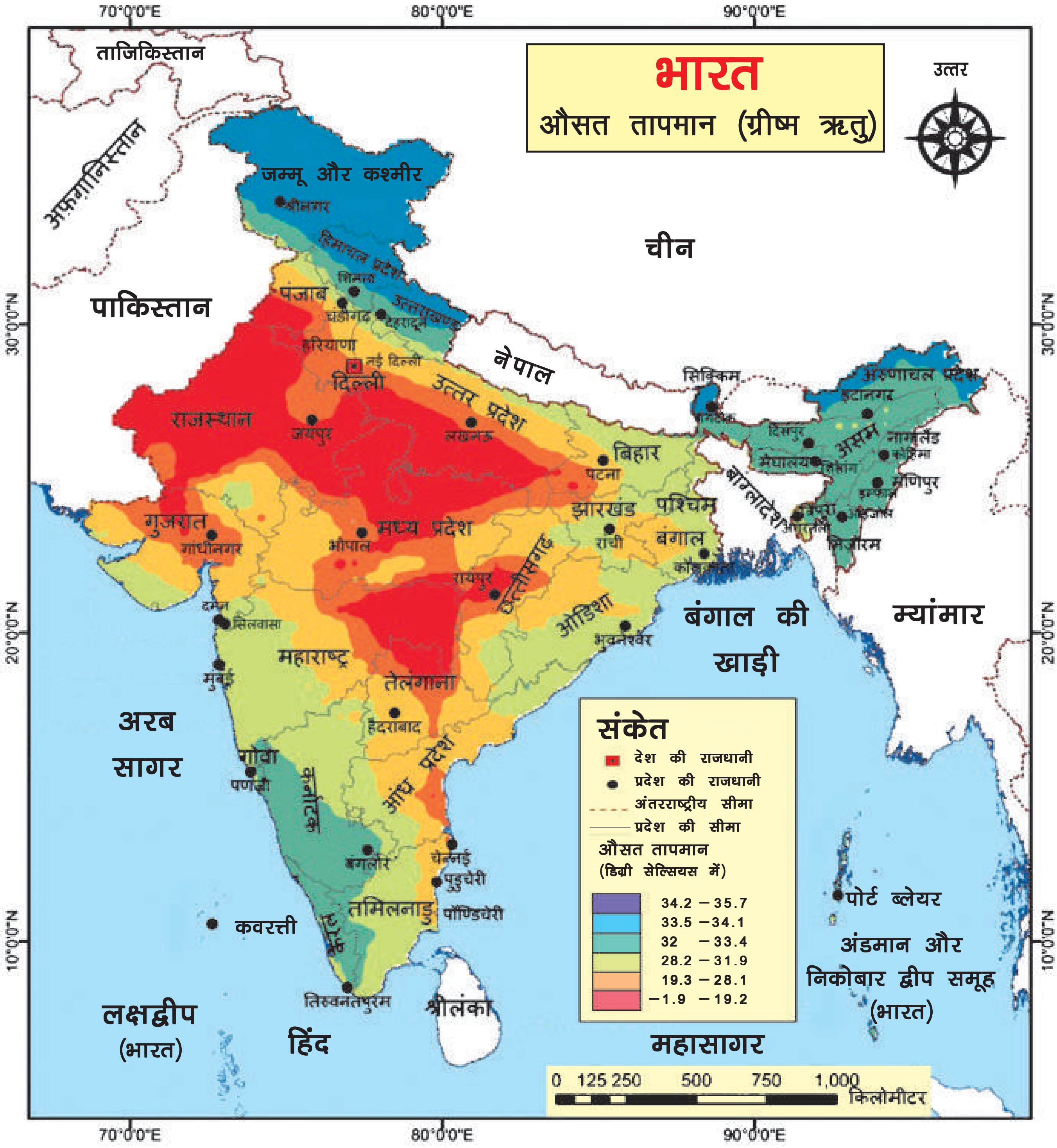

भारत
औसत तापमान (ग्रीष्म ऋतु)
उत्तर
ताजिकिस्तान
अफ़गानिस्तान
पाकिस्तान
चीन
नेपाल
म्यांमार
जम्मू और कश्मीर
श्रीनगर
हिमाचल प्रदेश
शिमला
पंजाब
चंडीगढ़
उत्तराखण्ड
देहरादून
हरियाणा
नई दिल्ली
दिल्ली
राजस्थान
जयपुर
उत्तर प्रदेश
लखनऊ
बिहार
पटना
सिक्किम
अरुणाचल प्रदेश
ईटानगर
असम
दिसपुर
मेघालय
शिलांग
नागालैंड
कोहिमा
मणिपुर
इम्फाल
त्रिपुरा
अगरतला
मिजोरम
आइजोल
बांग्लादेश
झारखंड
राँची
पश्चिम बंगाल
कोलकाता
गुजरात
गांधीनगर
मध्य प्रदेश
भोपाल
छत्तीसगढ़
रायपुर
ओडिशा
भुवनेश्वर
दमन
सिलवासा
महाराष्ट्र
मुंबई
तेलंगाना
हैदराबाद
गोवा
पणजी
कर्नाटक
बंगलोर
आंध्र प्रदेश
चेन्नई
पुदुचेरी
पॉण्डिचेरी
तमिलनाडु
केरल
तिरुवनंतपुरम
श्रीलंका
कवरत्ती
अरब सागर
लक्षद्वीप (भारत)
हिंद महासागर
बंगाल की खाड़ी
पोर्ट ब्लेयर
अंडमान और निकोबार द्वीप समूह (भारत)
संकेत
देश की राजधानी
प्रदेश की राजधानी
अंतरराष्ट्रीय सीमा
प्रदेश की सीमा
औसत तापमान (डिग्री सेल्सियस में)
34.2 – 35.7
33.5 – 34.1
32 – 33.4
28.2 – 31.9
19.3 – 28.1
–1.9 – 19.2
0 125 250 500 750 1,000 किलोमीटर
70°0'0"E
80°0'0"E
90°0'0"E
30°0'0"N
20°0'0"N
10°0'0"N

मानचित्र – 5

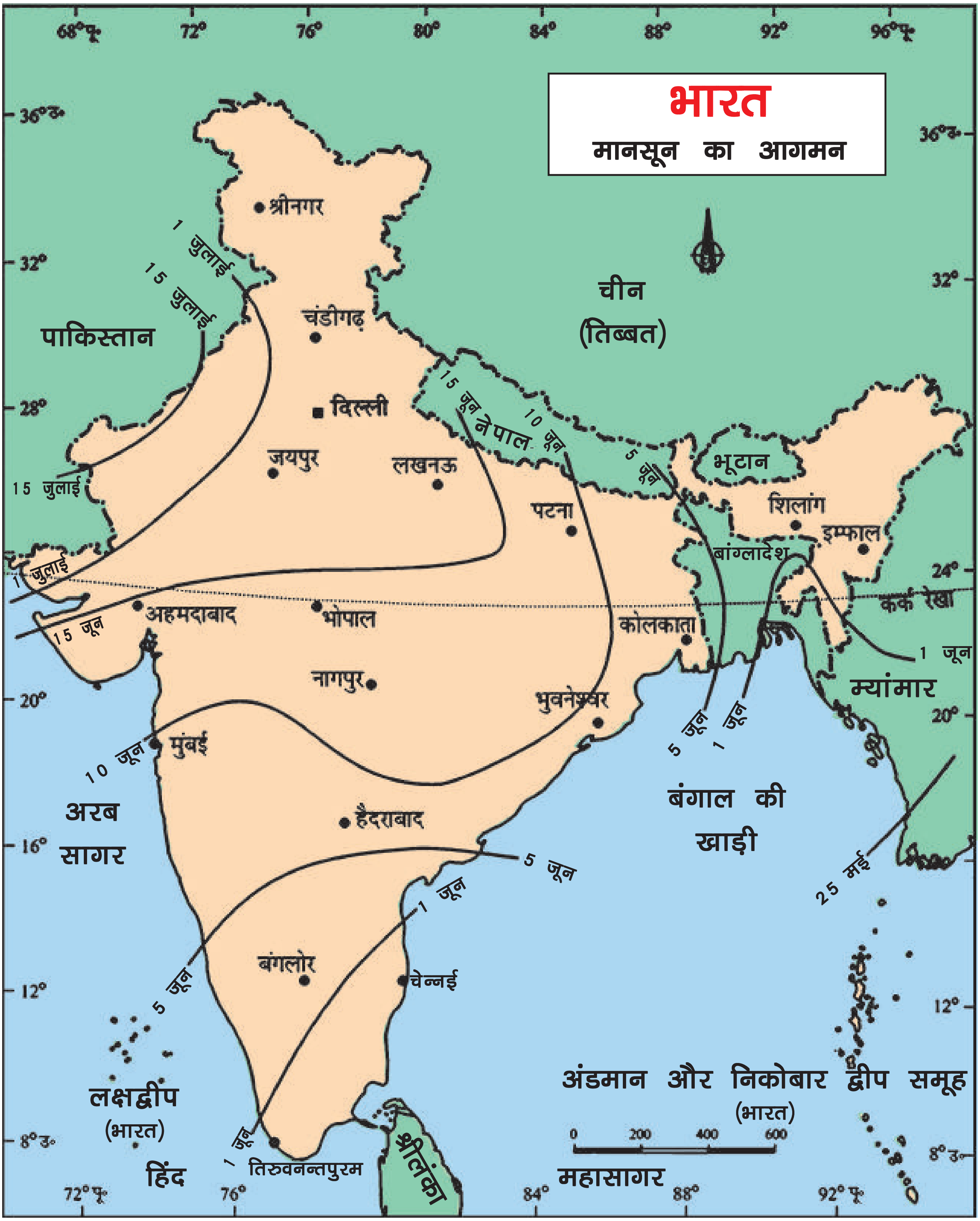
भारत
मानसून का आगमन
पाकिस्तान
चीन
(तिब्बत)
नेपाल
भूटान
बांग्लादेश
म्यांमार
श्रीलंका
श्रीनगर
चंडीगढ़
दिल्ली
जयपुर
लखनऊ
पटना
शिलांग
इम्फाल
अहमदाबाद
भोपाल
कोलकाता
नागपुर
भुवनेश्वर
मुंबई
हैदराबाद
बंगलोर
चेन्नई
तिरुवनन्तपुरम
कर्क रेखा
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
हिंद महासागर
लक्षद्वीप
(भारत)
अंडमान और निकोबार द्वीप समूह
(भारत)
1 जुलाई
15 जुलाई
15 जून
10 जून
5 जून
1 जून
25 मई
0 200 400 600
68° पू.
72°
76°
80°
84°
88°
92°
96° पू.
36° उ.
32°
28°
24°
20°
16°
12°
8° उ.

मानचित्र – 6

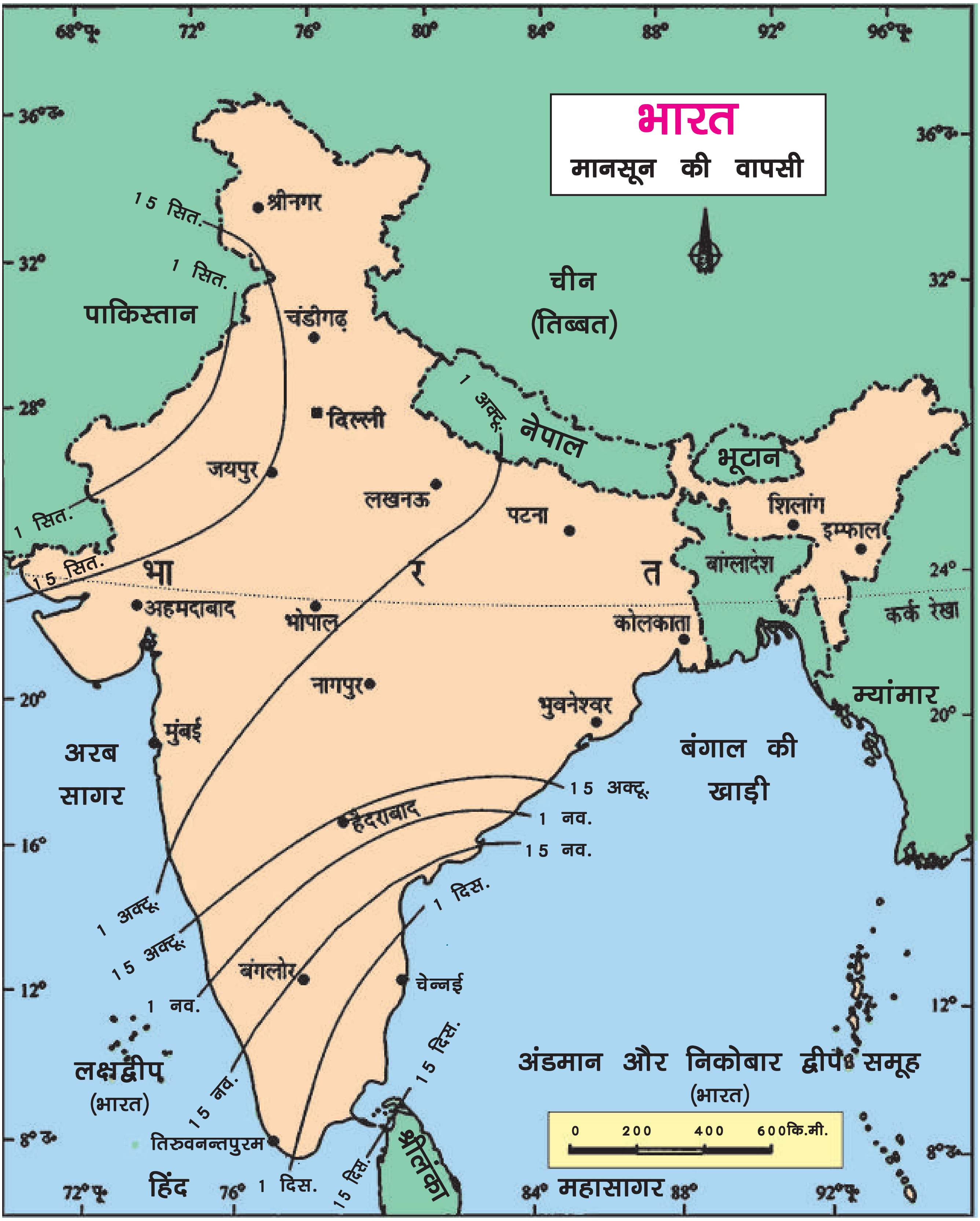
भारत
मानसूना की वापसी
चीन (तिब्बत)
पाकिस्तान
नेपाल
भूटान
बांग्लादेश
म्यांमार
श्रीलंका
भा र त
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
हिंद महासागर
लक्षद्वीप (भारत)
अंडमान और निकोबार द्वीप समूह (भारत)
कर्क रेखा
श्रीनगर
चंडीगढ़
दिल्ली
जयपुर
लखनऊ
पटना
शिलांग
इम्फाल
अहमदाबाद
भोपाल
कोलकाता
नागपुर
भुवनेश्वर
मुंबई
हैदराबाद
बंगलोर
चेन्नई
तिरुवनन्तपुरम
15 सित.
1 सित.
1 अक्टू.
15 अक्टू.
1 नव.
15 नव.
1 दिस.
15 दिस.
0 200 400 600कि.मी.
68° पू.
72°
76°
80°
84°
88°
92°
96° पू.
36° उ.
32°
28°
24°
20°
16°
12°
8° उ.

मानचित्र – 7

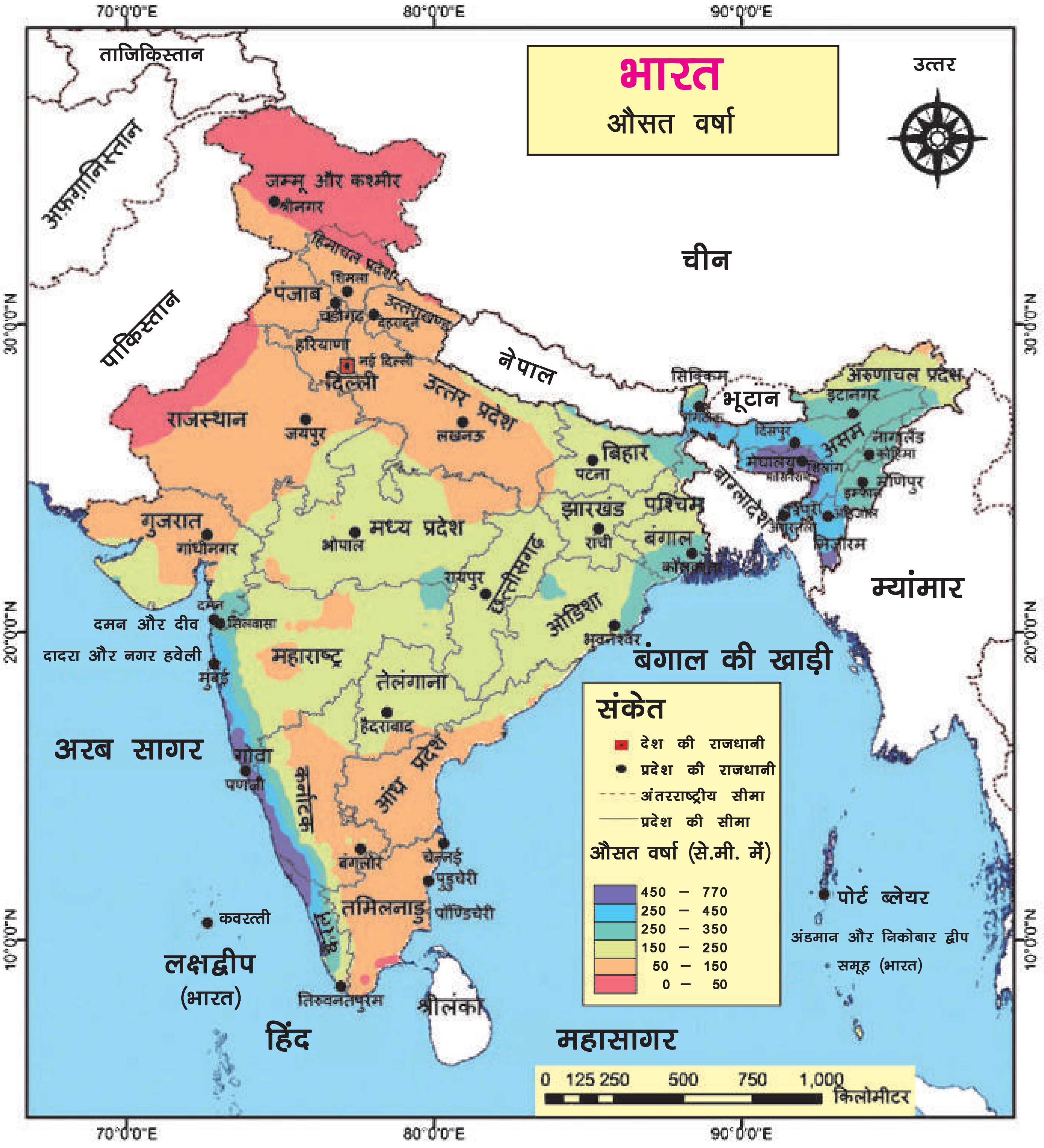
भारत
औसत वर्षा
उत्तर
70°0'0"E
80°0'0"E
90°0'0"E
30°0'0"N
20°0'0"N
10°0'0"N
ताजिकिस्तान
अफ़गानिस्तान
पाकिस्तान
चीन
नेपाल
भूटान
बांग्लादेश
म्यांमार
श्रीलंका
जम्मू और कश्मीर
श्रीनगर
हिमाचल प्रदेश
शिमला
पंजाब
चंडीगढ़
उत्तराखण्ड
देहरादून
हरियाणा
नई दिल्ली
दिल्ली
राजस्थान
जयपुर
उत्तर प्रदेश
लखनऊ
बिहार
पटना
सिक्किम
अरुणाचल प्रदेश
इटानगर
दिसपुर
असम
नागालैंड
कोहिमा
मेघालय
शिलांग
मणिपुर
इम्फाल
मिज़ोरम
गुजरात
गांधीनगर
मध्य प्रदेश
भोपाल
झारखंड
रांची
पश्चिम बंगाल
कोलकाता
छत्तीसगढ़
रायपुर
ओडिशा
भुवनेश्वर
दमन
दमन और दीव
सिलवासा
दादरा और नगर हवेली
मुंबई
महाराष्ट्र
तेलंगाना
हैदराबाद
आंध्र प्रदेश
गोवा
पणजी
कर्नाटक
बंगलौर
चेन्नई
पुडुचेरी
तमिलनाडु
पॉण्डिचेरी
केरल
तिरुवनंतपुरम
कवरत्ती
लक्षद्वीप
(भारत)
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
हिंद
महासागर
पोर्ट ब्लेयर
अंडमान और निकोबार द्वीप
समूह (भारत)
संकेत
देश की राजधानी
प्रदेश की राजधानी
अंतरराष्ट्रीय सीमा
प्रदेश की सीमा
औसत वर्षा (से.मी. में)
450 – 770
250 – 450
250 – 350
150 – 250
50 – 150
0 – 50
0 125 250 500 750 1,000
किलोमीटर

मानचित्र – 8

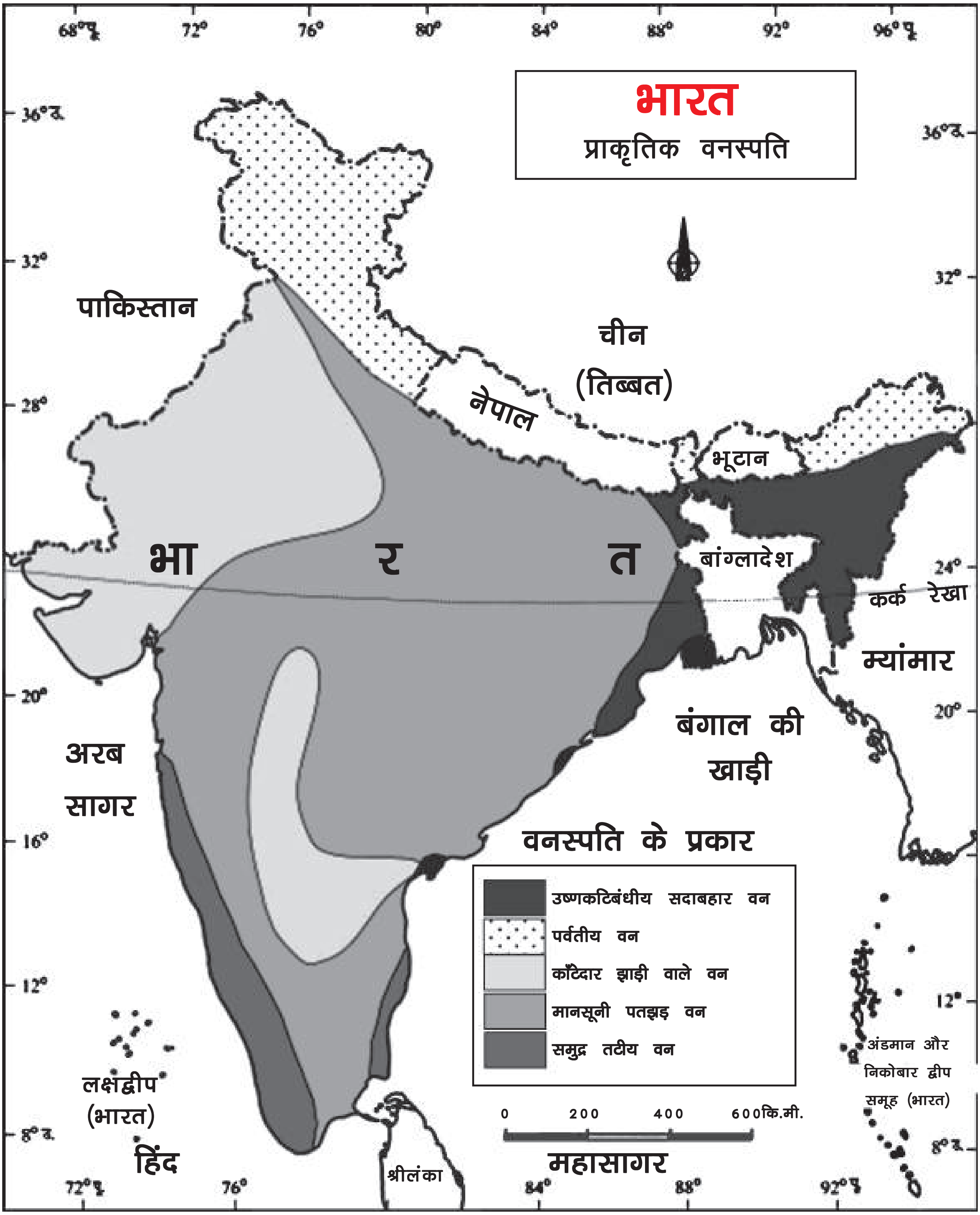

68° पू.
72°
76°
80°
84°
88°
92°
96° पू.
36° उ.
32°
28°
24°
20°
16°
12°
8° उ.
भारत
प्राकृतिक वनस्पति
पाकिस्तान
चीन
(तिब्बत)
नेपाल
भूटान
भा र त
बांग्लादेश
कर्क रेखा
म्यांमार
बंगाल की खाड़ी
अरब सागर
वनस्पति के प्रकार
उष्णकटिबंधीय सदाबहार वन
पर्वतीय वन
काँटेदार झाड़ी वाले वन
मानसूनी पतझड़ वन
समुद्र तटीय वन
अंडमान और निकोबार द्वीप समूह (भारत)
लक्षद्वीप (भारत)
0 200 400 600कि.मी.
हिंद महासागर
श्रीलंका
72° पू.
76°
84°
88°
92° पू.

मानचित्र – 9

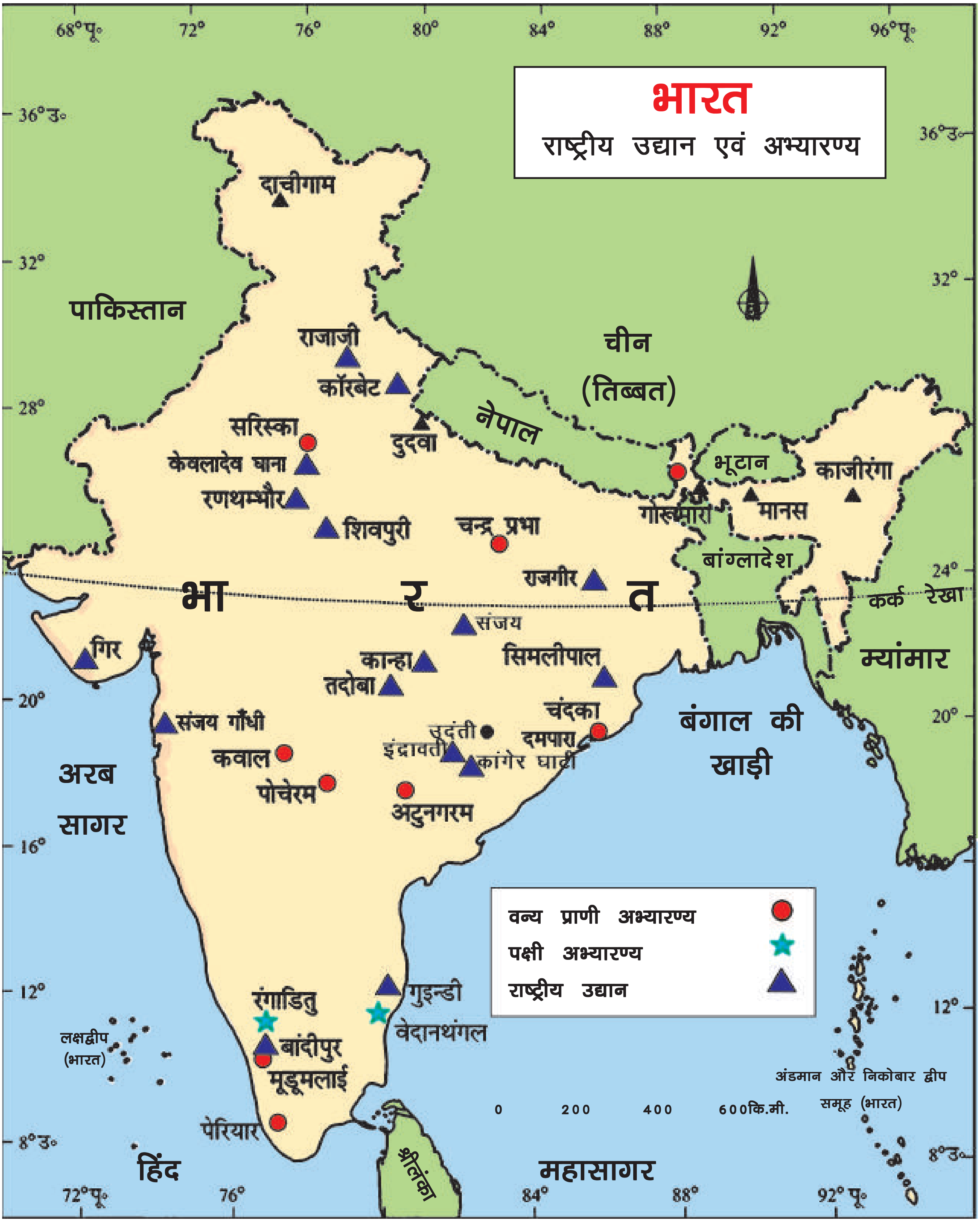

भारत
राष्ट्रीय उद्यान एवं अभ्यारण्य
पाकिस्तान
चीन
(तिब्बत)
नेपाल
भूटान
बांग्लादेश
म्यांमार
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
हिंद महासागर
श्रीलंका
भा र त
कर्क रेखा
दाचीगाम
राजाजी
कॉरबेट
दुदवा
सरिस्का
केवलादेव घाना
रणथम्भौर
शिवपुरी
चन्द्र प्रभा
राजगीर
संजय
गोरुमारा
मानस
काजीरंगा
गिर
कान्हा
तदोबा
सिमलीपाल
चंदका
संजय गाँधी
उदंती
इंद्रावती
कांगेर घाटी
दमपारा
कवाल
पोचेरम
अटुनगरम
रंगाडितु
बांदीपुर
मूडूमलाई
पेरियार
गुइन्डी
वेदानथंगल
लक्षद्वीप (भारत)
अंडमान और निकोबार द्वीप समूह (भारत)
वन्य प्राणी अभ्यारण्य
पक्षी अभ्यारण्य
राष्ट्रीय उद्यान
0 200 400 600कि.मी.
68°पू.
72°
76°
80°
84°
88°
92°
96°पू.
36°उ.
32°
28°
24°
20°
16°
12°
8°उ.
72°पू.
76°
84°
88°
92° पू.

मानचित्र – 10

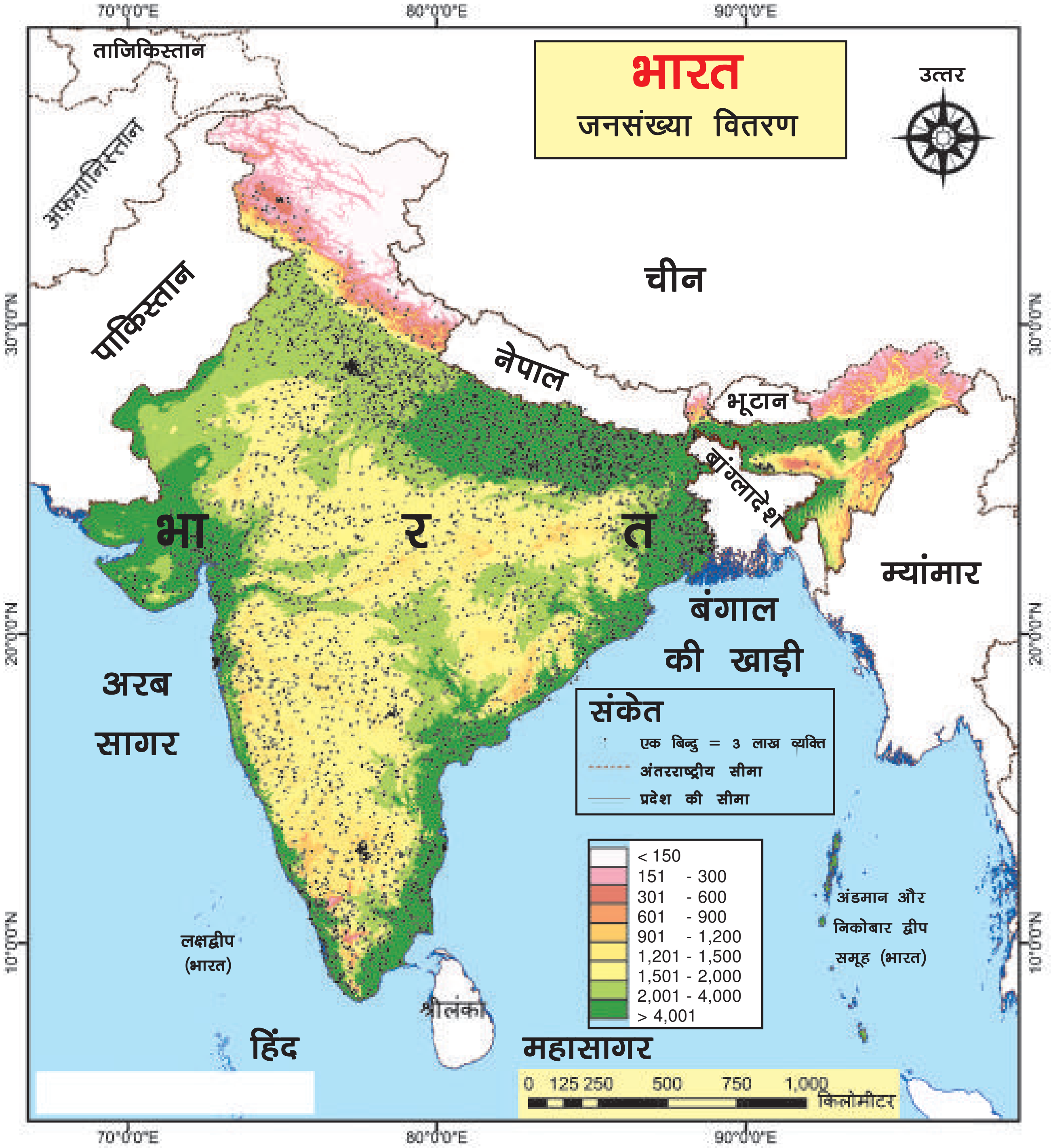
भारत
जनसंख्या वितरण
उत्तर
ताजिकिस्तान
अफगानिस्तान
पाकिस्तान
चीन
नेपाल
भूटान
बांग्लादेश
म्यांमार
भा र त
बंगाल की खाड़ी
अरब सागर
लक्षद्वीप (भारत)
श्रीलंका
हिंद महासागर
अंडमान और निकोबार द्वीप समूह (भारत)
संकेत
एक बिन्दु = 3 लाख व्यक्ति
अंतरराष्ट्रीय सीमा
प्रदेश की सीमा
< 150
151 - 300
301 - 600
601 - 900
901 - 1,200
1,201 - 1,500
1,501 - 2,000
2,001 - 4,000
> 4,001
0 125 250 500 750 1,000 किलोमीटर
70°0'0"E
80°0'0"E
90°0'0"E
30°0'0"N
20°0'0"N
10°0'0"N

मानचित्र – 11

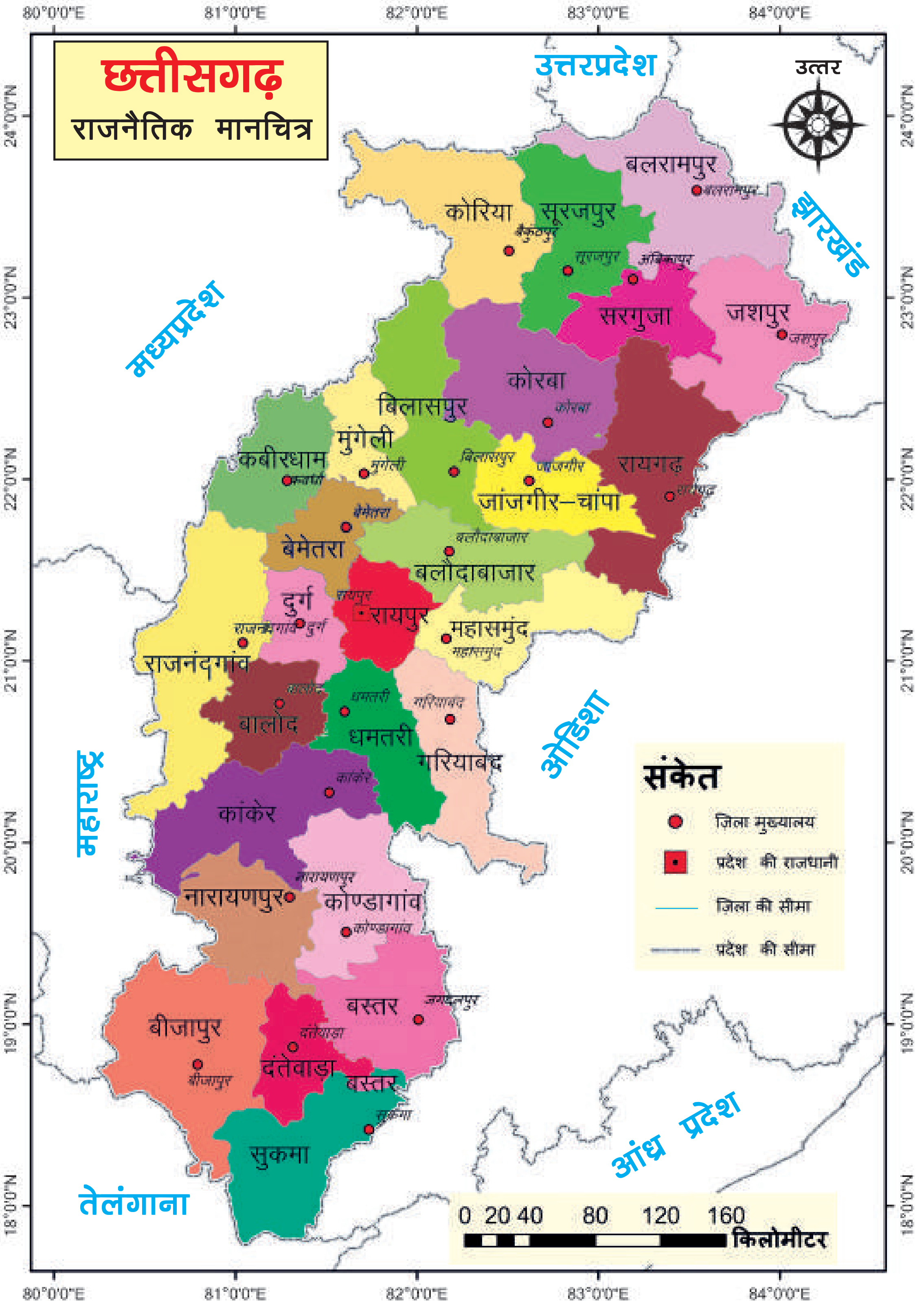
छत्तीसगढ़
राजनैतिक मानचित्र
उत्तरप्रदेश
उत्तर
झारखंड
मध्यप्रदेश
ओडिशा
महाराष्ट्र
तेलंगाना
आंध्र प्रदेश
बलरामपुर
कोरिया
सूरजपुर
सरगुजा
जशपुर
कोरबा
बिलासपुर
मुंगेली
कबीरधाम
जांजगीर–चांपा
रायगढ़
बेमेतरा
बलौदाबाजार
दुर्ग
रायपुर
महासमुंद
राजनंदगांव
बालोद
धमतरी
गरियाबंद
कांकेर
नारायणपुर
कोण्डागांव
बस्तर
बीजापुर
दंतेवाड़ा
सुकमा
संकेत
ज़िला मुख्यालय
प्रदेश की राजधानी
ज़िला की सीमा
प्रदेश की सीमा
0 20 40 80 120 160
किलोमीटर
80°0'0"E
81°0'0"E
82°0'0"E
83°0'0"E
84°0'0"E
24°0'0"N
23°0'0"N
22°0'0"N
21°0'0"N
20°0'0"N
19°0'0"N
18°0'0"N

मानचित्र – 12

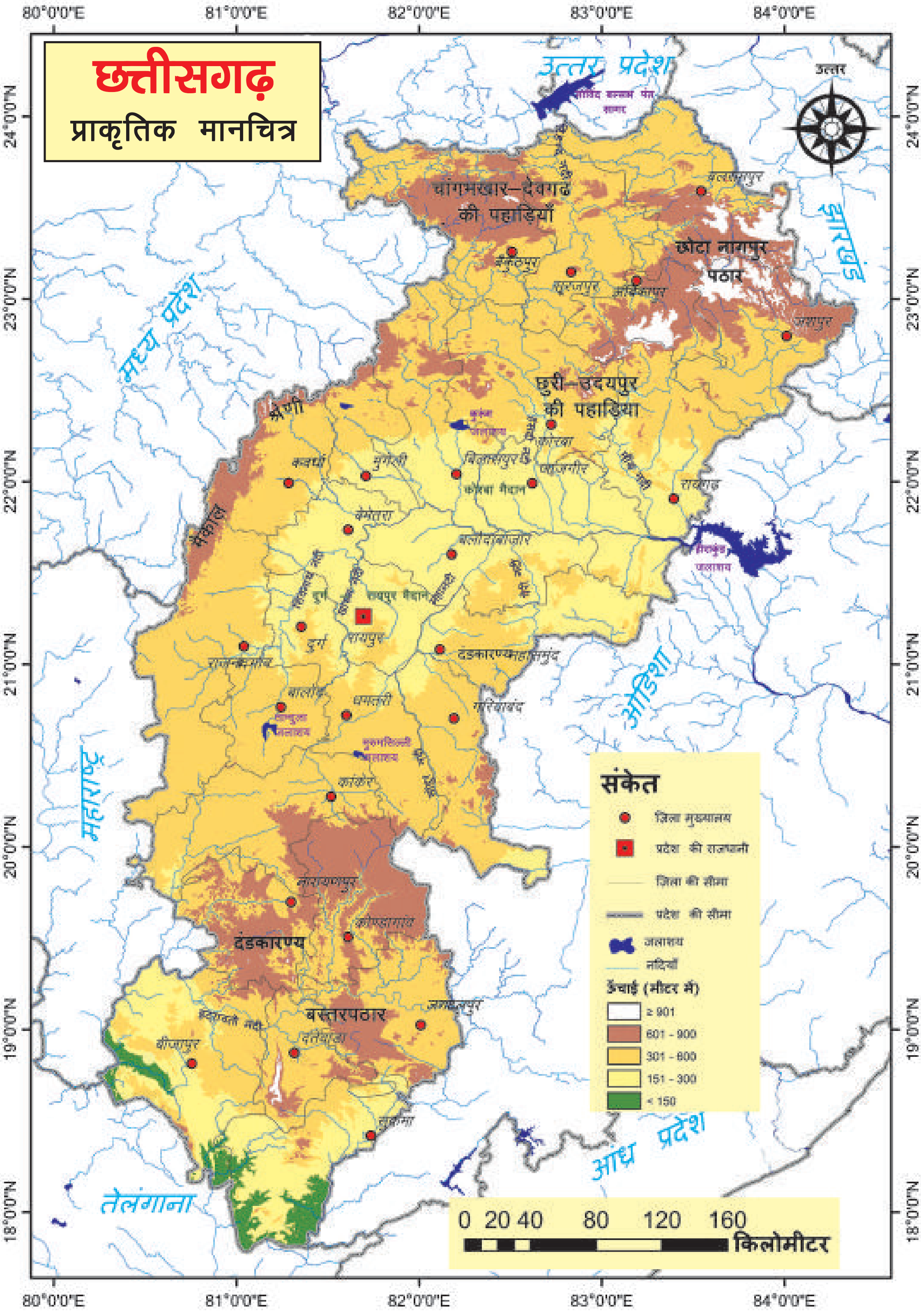

छत्तीसगढ़
प्राकृतिक मानचित्र
80°0'0"E
81°0'0"E
82°0'0"E
83°0'0"E
84°0'0"E
24°0'0"N
23°0'0"N
22°0'0"N
21°0'0"N
20°0'0"N
19°0'0"N
18°0'0"N
उत्तर
उत्तर प्रदेश
झारखंड
मध्य प्रदेश
ओडिशा
महाराष्ट्र
आंध्र प्रदेश
तेलंगाना
चांगभखार–देवगढ़ की पहाड़ियाँ
छोटा नागपुर पठार
छुरी–उदयपुर की पहाड़िया
मैकाल
दंडकारण्य
बस्तरपठार
बलरामपुर
बैकुंठपुर
सूरजपुर
अंबिकापुर
जशपुर
कोरबा
बिलासपुर
जांजगीर
रायगढ़
कवर्धा
मुंगेली
बेमेतरा
बलौदाबाजार
दुर्ग
रायपुर
राजनांदगांव
महासमुंद
गरियाबंद
बालोद
धमतरी
कांकेर
नारायणपुर
कोण्डागांव
जगदलपुर
दंतेवाड़ा
बीजापुर
सुकमा
इंद्रावती नदी
संकेत
जिला मुख्यालय
प्रदेश की राजधानी
जिला की सीमा
प्रदेश की सीमा
जलाशय
नदियाँ
ऊँचाई (मीटर में)
≥ 901
601 - 900
301 - 600
151 - 300
< 150
0 20 40 80 120 160
किलोमीटर

मानचित्र – 13

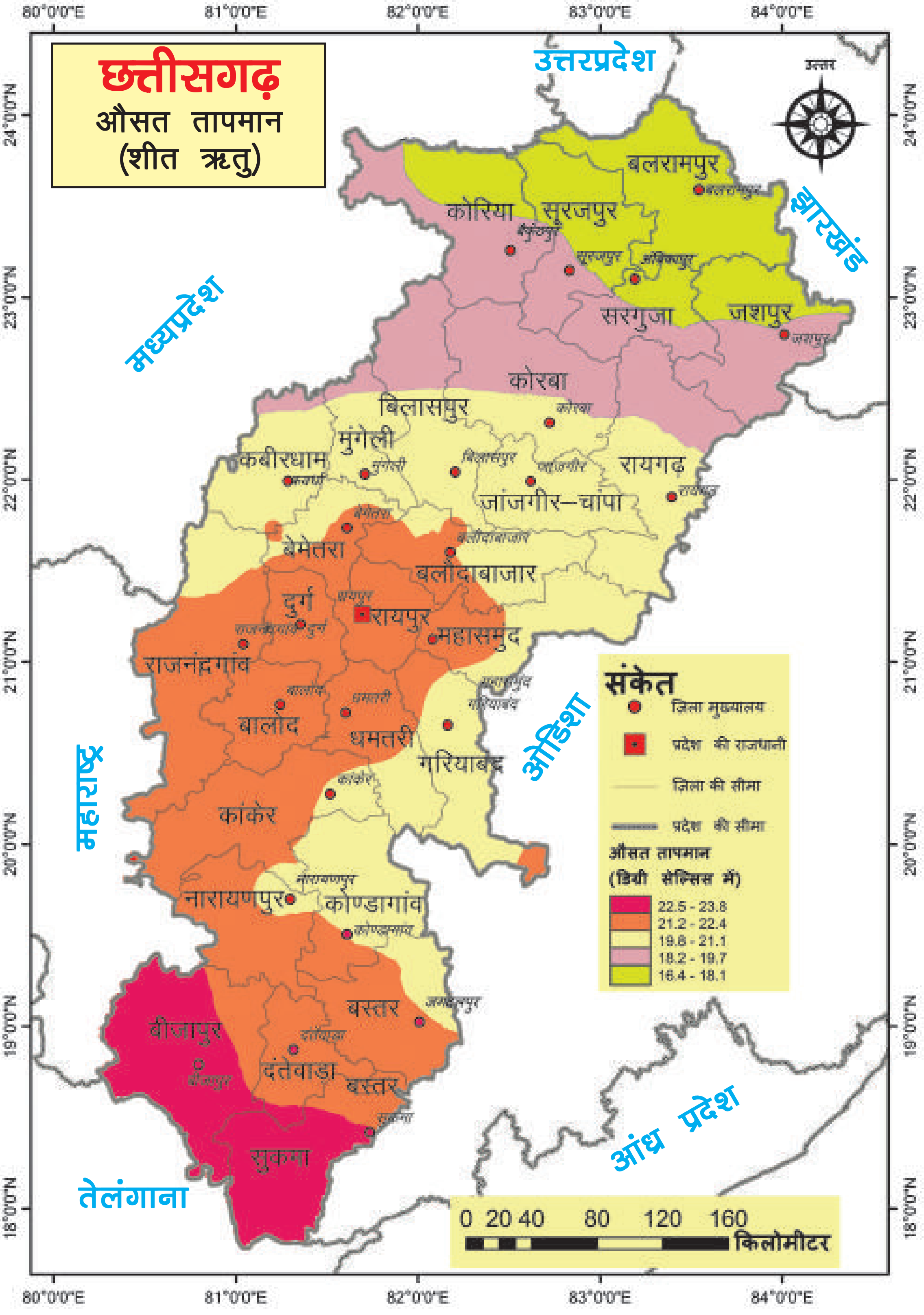

छत्तीसगढ़
औसत तापमान
(शीत ऋतु)
उत्तर
उत्तरप्रदेश
झारखंड
मध्यप्रदेश
महाराष्ट्र
तेलंगाना
ओडिशा
आंध्र प्रदेश
बलरामपुर
कोरिया
सूरजपुर
सरगुजा
जशपुर
कोरबा
बिलासपुर
मुंगेली
कबीरधाम
रायगढ़
जांजगीर–चांपा
बेमेतरा
बलौदाबाजार
दुर्ग
रायपुर
महासमुंद
राजनांदगांव
बालोद
धमतरी
गरियाबंद
कांकेर
नारायणपुर
कोण्डागांव
बस्तर
बीजापुर
दंतेवाड़ा
सुकमा
संकेत
जिला मुख्यालय
प्रदेश की राजधानी
जिला की सीमा
प्रदेश की सीमा
औसत तापमान
(डिग्री सेल्सियस में)
22.5 - 23.8
21.2 - 22.4
19.8 - 21.1
18.2 - 19.7
16.4 - 18.1
0 20 40 80 120 160
किलोमीटर
80°0'0"E
81°0'0"E
82°0'0"E
83°0'0"E
84°0'0"E
24°0'0"N
23°0'0"N
22°0'0"N
21°0'0"N
20°0'0"N
19°0'0"N
18°0'0"N

मानचित्र – 14

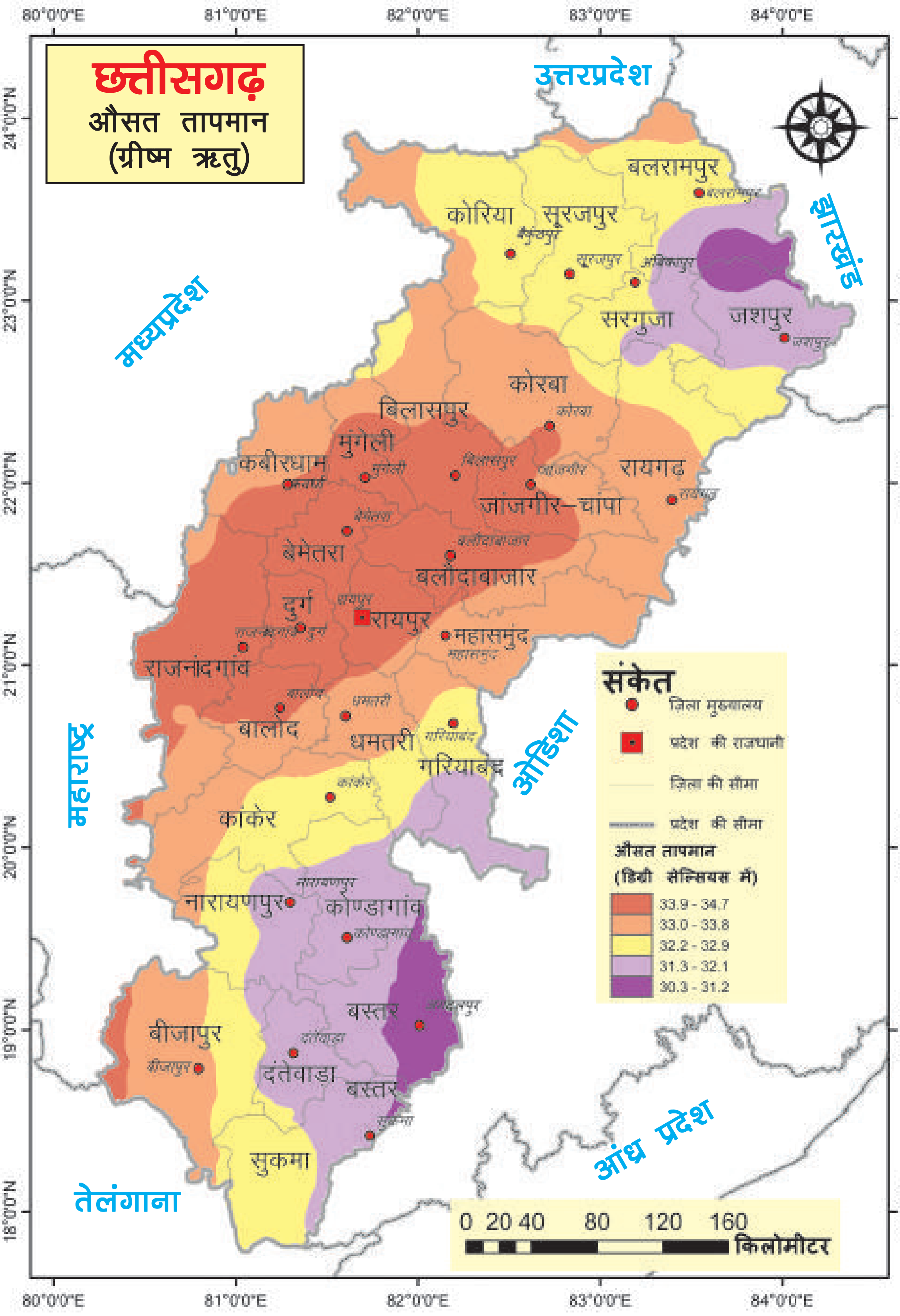
छत्तीसगढ़
औसत तापमान
(ग्रीष्म ऋतु)
80°0'0"E
81°0'0"E
82°0'0"E
83°0'0"E
84°0'0"E
24°0'0"N
23°0'0"N
22°0'0"N
21°0'0"N
20°0'0"N
19°0'0"N
18°0'0"N
उत्तरप्रदेश
झारखंड
मध्यप्रदेश
महाराष्ट्र
ओडिशा
आंध्र प्रदेश
तेलंगाना
बलरामपुर
कोरिया
सूरजपुर
सरगुजा
जशपुर
कोरबा
बिलासपुर
मुंगेली
कबीरधाम
रायगढ़
जांजगीर–चांपा
बेमेतरा
बलौदाबाजार
दुर्ग
रायपुर
महासमुंद
राजनांदगांव
बालोद
धमतरी
गरियाबंद
कांकेर
नारायणपुर
कोण्डागांव
बस्तर
बीजापुर
दंतेवाड़ा
सुकमा
संकेत
ज़िला मुख्यालय
प्रदेश की राजधानी
ज़िला की सीमा
प्रदेश की सीमा
औसत तापमान
(डिग्री सेल्सियस में)
33.9 - 34.7
33.0 - 33.8
32.2 - 32.9
31.3 - 32.1
30.3 - 31.2
0 20 40 80 120 160
किलोमीटर

मानचित्र – 15

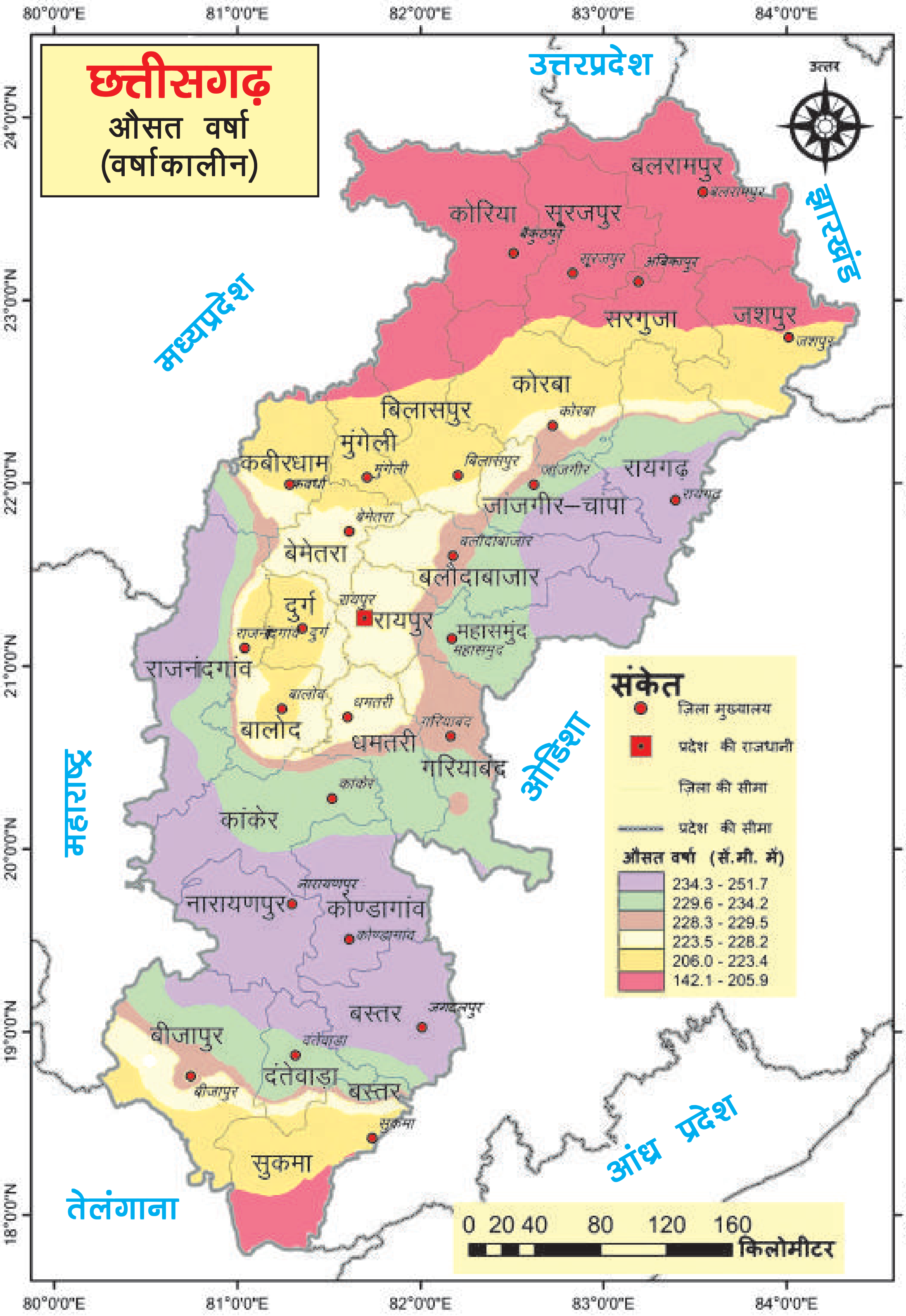
छत्तीसगढ़
औसत वर्षा
(वर्षाकालीन)
उत्तरप्रदेश
उत्तर
झारखंड
मध्यप्रदेश
महाराष्ट्र
ओड़िशा
आंध्र प्रदेश
तेलंगाना
बलरामपुर
कोरिया
सूरजपुर
सरगुजा
जशपुर
कोरबा
बिलासपुर
मुंगेली
कबीरधाम
रायगढ़
जांजगीर–चापा
बेमेतरा
बलौदाबाजार
दुर्ग
रायपुर
महासमुंद
राजनांदगांव
बालोद
धमतरी
गरियाबंद
कांकेर
नारायणपुर
कोण्डागांव
बस्तर
बीजापुर
दंतेवाड़ा
सुकमा
संकेत
ज़िला मुख्यालय
प्रदेश की राजधानी
ज़िला की सीमा
प्रदेश की सीमा
औसत वर्षा (सं.मी. में)
234.3 - 251.7
229.6 - 234.2
228.3 - 229.5
223.5 - 228.2
206.0 - 223.4
142.1 - 205.9
0 20 40 80 120 160
किलोमीटर
80°0'0"E
81°0'0"E
82°0'0"E
83°0'0"E
84°0'0"E
24°0'0"N
23°0'0"N
22°0'0"N
21°0'0"N
20°0'0"N
19°0'0"N
18°0'0"N

मानचित्र – 16

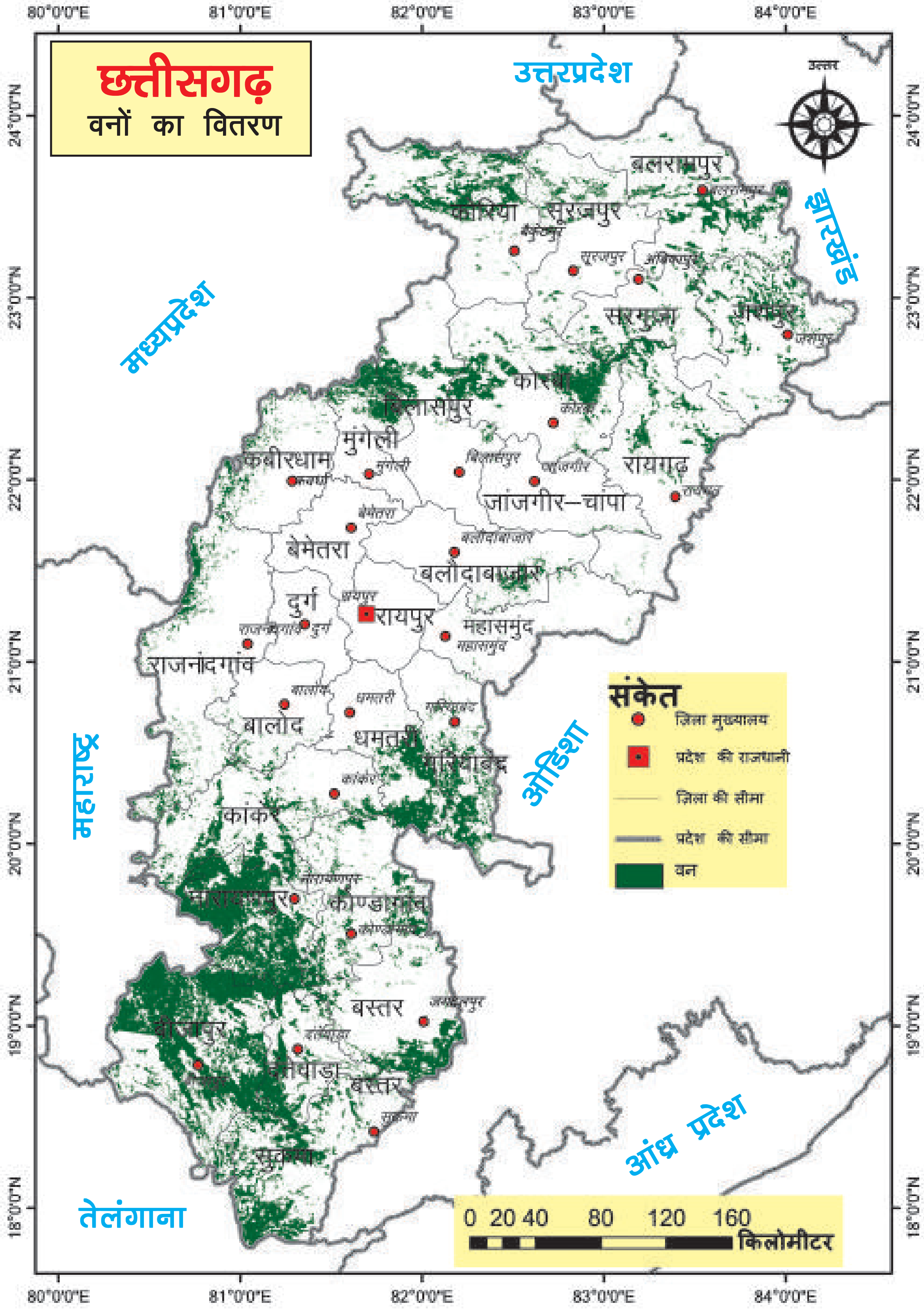

छत्तीसगढ़
वनों का वितरण
उत्तर
उत्तरप्रदेश
झारखंड
मध्यप्रदेश
महाराष्ट्र
ओडिशा
तेलंगाना
आंध्र प्रदेश
कोरिया
सूरजपुर
सरगुजा
जशपुर
कोरबा
बिलासपुर
मुंगेली
कबीरधाम
रायगढ़
जांजगीर–चांपा
बेमेतरा
दुर्ग
रायपुर
महासमुंद
राजनांदगांव
बालोद
धमतरी
कांकेर
बस्तर
संकेत
ज़िला मुख्यालय
प्रदेश की राजधानी
ज़िला की सीमा
प्रदेश की सीमा
वन
0 20 40 80 120 160
किलोमीटर
80°0'0"E
81°0'0"E
82°0'0"E
83°0'0"E
84°0'0"E
24°0'0"N
23°0'0"N
22°0'0"N
21°0'0"N
20°0'0"N
19°0'0"N
18°0'0"N

यूरोप राजनीतिक
आर्कटिक महासागर
अटलांटिक महासागर
उत्तरी सागर
बाल्टिक सागर
कालासागर
भूमध्य सागर
रूस
फिनलैंड
स्वीडन
नॉर्वे
आईसलैंड
एस्टोनिया
लातविया
लिथुएनिया
बेलारूस
यूक्रेन
पोलैंड
जर्मनी
डेनमार्क
चैक
ऑस्ट्रिया
हंगरी
रोमानिया
बुल्गारिया
ग्रीस
तुर्की
जॉर्जिया
अजरबैजान
इटली
स्विट्जरलैंड
फ्रांस
स्पेन
पुर्तगाल
यूनाइटेड किंगडम
आयरलैंड
सार्डिनिया (इटली)

संसार का मानचित्र

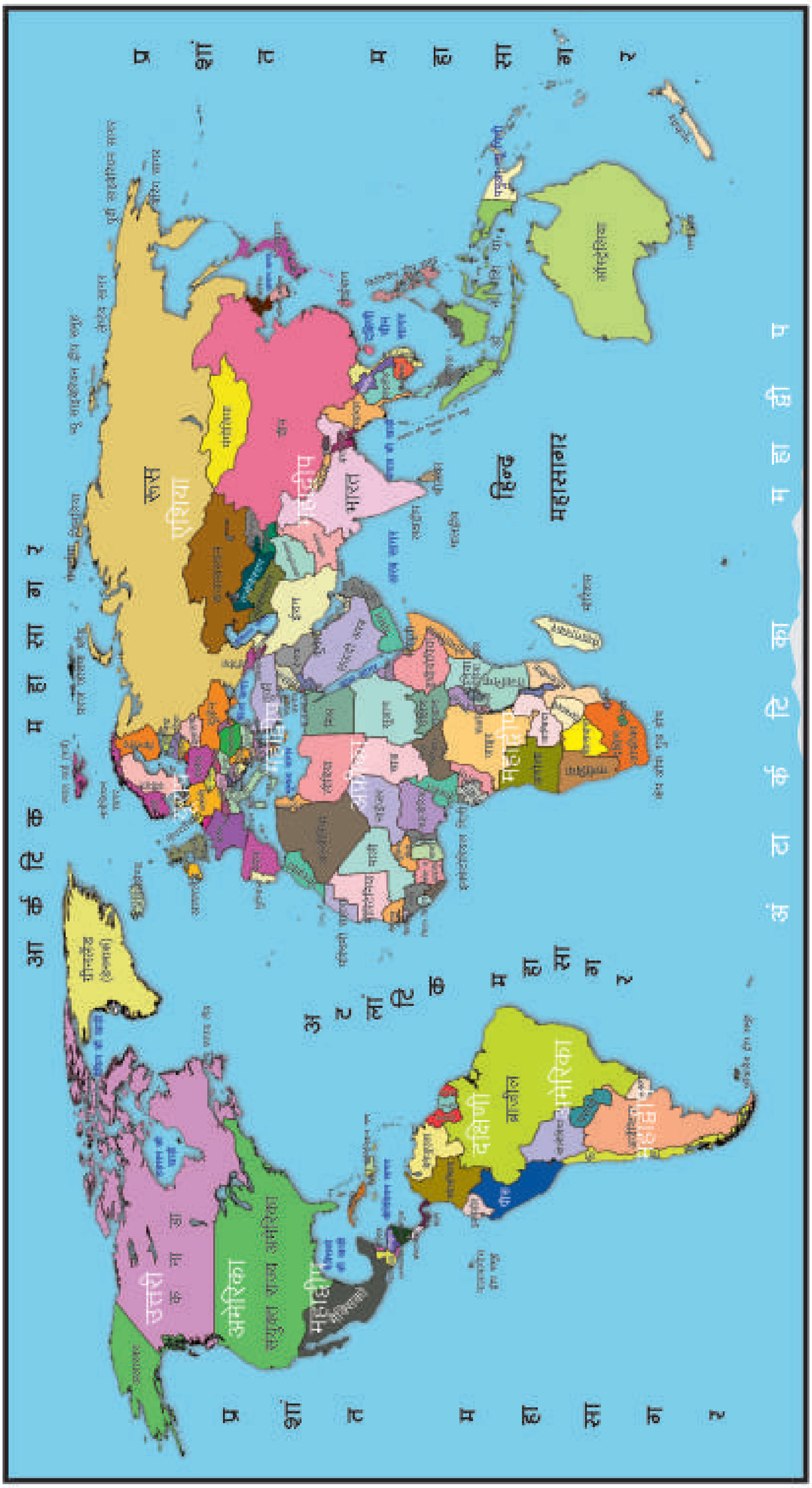

प्रशांत महासागर
आर्कटिक महासागर
अटलांटिक महासागर
हिन्द महासागर
अंटार्कटिका महाद्वीप
एशिया महाद्वीप
रूस
चीन
भारत
ऑस्ट्रेलिया
उत्तरी अमेरिका महाद्वीप
कनाडा
संयुक्त राज्य अमेरिका
दक्षिणी अमेरिका महाद्वीप
ब्राजील
अफ्रीका महाद्वीप